प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५५
मूल्य
अढाई रुपये

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

प्रकाशकीय

ससार की सभी महत्त्वपूर्ण भाषाओं मे जिन गिने-चुने भारतीय ग्रथों ने असाधारण लोकप्रियता प्राप्त की है, उनमे प जवाहरलाल नेहरू की 'मेरी कहानी' एक है। अनेक भाषाओ मे उसके अनुवाद हुए है और लाखो प्रतियो की खपत हुई है।

इस लोकप्रियता का सबसे बडा कारण यह है कि वह एक व्यक्ति की जीवनी होने के साथ-साथ स्वतत्रता के लिए तडपते और जूझते एक महान देश की कहानी है।

इसमे सदेह नही कि नेहरूजी का जीवन एक विलक्षण सेनानी का जीवन रहा है। इसलिए उसका छोटी-बडी अनगिनत घटनाओ और त्यागो से परिपूर्ण होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त नेहरूजी भारत के स्वाधीनता-सग्राम के साथ इतने घुले-मिले रहे है कि स्वतत्रता-सबधी सारे आदोलन तथा प्रवृत्तिया उनके साथ जुड गई है। यही कारण है कि उनकी जीवनी उपन्यास की भांति रोचक और इतिहास की भाति तथ्य एव घटनाओ से पूर्ण है।

हिन्दी मे बड़ी जीवनी ८६४ पृष्ठो मे निकली है। प्रत्येक पाठक को इसे पढना चाहिए। लेकिन युवक, विशेषकर विद्यार्थी भी इस पुस्तक से लाभ उठा सके, इस दृष्टि से इसके सक्षिप्त सस्करण की माग बहुत दिनो से हो रही थी। हमे प्रसन्नता है कि वैसा सस्करण पाठको के हाथो मे पहुच रहा है। बडी सावधानी से बडी पुस्तक को सक्षिप्त करके इस पुस्तक की सामग्री का चुनाव किया गया है और इस बात का विशेष रूप से ध्यान रक्खा है कि कोई भी महत्त्व की घटना छूटने न पावे। इसे सक्षिप्त रूप देने मे श्री ज्ञानचद जैन तथा श्री शोभालाल गुप्त से हमे जो सहायता मिली है उसके लिए हम उनके आभारी है।

हमे विश्वास है कि शिक्षा-सस्थाए इसका अधिक-से-अधिक उपयोग करेंगी और हर युवक, जिसपर देश के नव-निर्माण की जिम्मेदारी है, इस पुस्तक से प्रेरणा प्राप्त करेगा।

—मत्री

प्रस्तावना

इस किताब के लिखने का खास मकसद यह था कि मै किसी निश्चित काम मे लग जाऊ, जो कि जेल-जीवन की तहनाई के पहाड-से दिन काटने के लिए बहुत जरूरी होता है। साथ ही मै पिछले दिनो की हिन्दुस्तान की उन घटनाओ का ऊहापोह भी कर लेना चाहता था, जिनसे भारत का ताल्लुक रहा है, ताकि उनके बारे मे मै स्पष्टता के साथ सोच सकू। आत्म-जिज्ञासा के भाव से मैंने इसे शुरू किया और बहुत हद तक, यही क्रम बराबर जारी रक्खा है।

मुझे उम्मीद है कि पाठक इसे पढते हुए इस बात का ख्याल रखेगे कि यह किताब ऐसे समय मे लिखी गई है, जो मेरी जिन्दगी का खास तौर पर कष्टपूर्ण समय था। इसमे यह असर साफ तौर पर झलकता है। अगर इसके बजाय और किसी मामूली वक्त मे लिखी गई होती तो यह कुछ और ही तरह लिखी जाती, . मगर मैंने यही मुनासिब समझा कि यह जैसी है, वैसे ही इसे रहने दू, क्योकि दूसरो को शायद वही रूप ज्यादा पसद हो, जिससे उन भावो का ठीक-ठीक परिचय मिलता हो, जो किताब को लिखते वक्त मेरे दिमाग मे उठते थे।

जवाहरलाल नेहरू

विषय-सूची

संक्षिप्त

मेरी कहानी

मेरी कहानी

(संक्षिप्त सस्करण)

: १ :

कश्मीरी घराना

"अपने बारे मे खुद लिखना मुश्किल भी है और दिलचस्प भी, क्योकि अपनी बुराई या निन्दा लिखना खुद हमे बुरा मालूम होता है, और अगर अपनी तारीफ करे तो पाठको को उसे सुनना नागवार मालूम होता है।"

—अब्राहम काउली

हम लोग कश्मीरी है। दो सौ बरस से ज्यादा हुए होंगे, अठारहवी सदी के शुरू मे हमारे पुरखे यश और धन कमाने के इरादे से कश्मीर की सुन्दर तराइयों से नीचे के उपजाऊ मैदानो मे आये। वे मुगल साम्राज्य के पतन के दिन थे। औरंगजेब मर चुका था और फर्रुखसियर बादशाह था। हमारे जो पुरखा सबसे पहले आये, उनका नाम था राजकौल। कश्मीर के संस्कृत और फारसी के विद्वानो मे उनका बडा नाम था। फर्रुखसियर जब कश्मीर गया, तो उसकी नजर उनपर पड़ी और शायद उसीके कहने से उनका परिवार दिल्ली आया, जो कि उस समय मुगलों की राजधानी थी। यह सन् १७१६ के आसपास की बात है। राजकौल को एक मकान और कुछ जागीर दी गई। मकान नहर के किनारे था, इसीसे उनका नाम नेहरू पड गया। कौल जो उनका कौटुम्बिक नाम था बदल कर कौल-नेहरू हो गया और आगे चलकर, कौल तो गायब हो गया और हम महज नेहरू रह गये।

उसके बाद ऐसा डांवाडोल जमाना आया कि हमारे कुटुम्ब

के वैभव का अन्त हो गया और वह जागीर भी तहस-नहस हो गई। मेरे परदादा लक्ष्मीनारायण नेहरू, दिल्ली के बादशाह के नाममात्र के दरबार मे कम्पनी-सरकार के पहले वकील हुए। मेरे दादा गगाधर नेहरू, १८५७ के गदर के कुछ पहले तक दिल्ली के कोतवाल थे। १८६१ मे चौतीस साल की भरी जवानी मे ही वह मर गये।

१८५७ के गदर की वजह से हमारे परिवार का सब सिल-सिला टूट गया। हमारे खानदान के तमाम कागज-पत्र और दस्ता-वेज तहस-नहस हो गये। इस तरह अपना सब-कुछ खो चुकने पर हमारा परिवार दिल्ली छोडने वाले और कई लोगो के साथ वहा से चल पड़ा और आगरा जाकर बस गया।

कुछ बरसो तक वे लोग आगरा रहे और वही ६ मई १८६१ को पिताजी का जन्म हुआ।[१] मगर वह पैदा हुए थे मेरे दादा के मरने के तीन महीने बाद। मेरे दादा की एक छोटी तस्वीर हमारे यहा है, जिसमे वह मुगलो का दरबारी लिबास पहने और हाथ मे एक टेढी तलवार लिये हुए है। उसमे वह एक मुगल सरदार-जैसे लगते है, हालाकि सूरत-शकल उनकी कश्मीरियो की-सी ही थी।

तब हमारे परिवार के भरण-पोषण की जिम्मेदारी मेरे दो चाचाओ पर आ पडी, जो कि उम्र मे मेरे पिताजी से काफी बडे थे। बडे चाचा बंसीधर नेहरू थोड़े ही दिन बाद ब्रिटिश सरकार के न्याय-विभाग मे नौकर हो गये। जगह-जगह उनका तबादला होता रहा, जिससे वह परिवार के और लोगो से बहुत कुछ जुदा पड़ गये। मेरे छोटे चाचा नन्दलाल नेहरू राजपूताना की एक छोटी-सी रियासत, खेतडी, के दीवान हुए और वहा दस बरस तक रहे। बाद मे उन्होंने कानून का अध्ययन किया और आगरे मे वकालत शुरू

---

[१] एक विचित्र संयोग है कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी उसी दिन, उसी महीने और उसी साल पैदा हुए थे।

की। मेरे पिता भी उन्हीके साथ रहे और उन्हीकी छत्रछाया मे उनका लालन-पालन हुआ। दोनो का आपस मे बड़ा प्रेम था और उसमे बधु-प्रेम, पितृ-प्रेम और वात्सल्य का अनोखा मिश्रण था। मेरे पिताजी सबसे छोटे होने के कारण स्वभावत मेरी दादी के बहुत लाड़ले थे। वह बूढी थी और बडी दबग भी। किसी की ताब नही थी कि उनकी बात को टाले।

मेरे चाचाजी नये हाईकोर्ट मे जाया करते थे और जब वह हाईकोर्ट इलाहाबाद चला गया तो हमारे परिवार के लोग भी वहा जा बसे। तबसे इलाहाबाद ही हमारा घर बन गया और वही, बहुत साल बाद, मेरा जन्म हुआ। चाचाजी की वकालत धीरे-धीरे बढती गई और वह इलाहाबाद के बड़े वकीलों मे गिने जाने लगे।

: २ :

मेरे पिताजी

मेरे पिताजी कानपुर के स्कूल और इलाहाबाद के कालेज मे शिक्षा पाते रहे। शुरू-शुरू मे उन्होने महज फारसी और अरबी की तालीम पाई थी। उनकी अग्रेजी शिक्षा वारह-तेरह वर्ष की उम्र के वाद शुरू हुई। मगर उस उम्र मे भी वह फारसी के अच्छे जानकार समझे जाते थे और अरबी मे भी कुछ दखल रखते थे। इसी कारण उनसे उम्र मे बहुत बड़े लोग भी उनके साथ इज्जत से पेश आते थे। छोटी उम्र मे इतनी लियाकत हो जाने पर भी स्कूल और कालेज मे वह ज्यादातर हसी-खेल और धीगामुश्ती के लिए मशहूर थे। उन्हे सजीदा विद्यार्थी किसी तरह नही कह सकते थे। पढ़ने-लिखने की बनिस्बत खेल-कूद और शरारत का शौक बहुत था। कालेज मे सरकश लडको के अगुआ समझे जाते थे। उनका झुकाव पश्चिमी लिवास की तरफ हो गया था और सो भी उस वक्त जबकि हिन्दुस्तान मे कलकत्ता और वम्वई जैसे

बड़े शहरों को छोड़कर कही इसका चलन नही हुआ था। वह तेज-मिजाज और अक्खड़ थे, तो भी उनके अंग्रेज प्रोफेसर उनको बहुत चाहते थे और अक्सर मुश्किलों से बचा लिया करते थे। वह उनकी स्पिरिट को पसंद करते थे। उनकी बुद्धि तेज थी और कभी-कभी एकाएक जोर लगाकर वह क्लास मे भी अपना काम ठीक चला लेते थे।

कालेज की परीक्षाओ मे वह पास होते चले गये। मगर कोई खास नामवरी उन्होने हासिल नही की। आखिर को बी० ए० के इम्तिहान मे बैठे। मगर उसके लिए उन्होने कुछ मेहनत या तैयारी नही की थी, और जो पहला पर्चा किया तो उससे उन्हे बिलकुल सन्तोष नही हुआ। उन्होने सोचा, जब पहला ही पर्चा बिगड़ गया है तो अब पास होने की क्या उम्मीद? उन्होने बाकी पर्चे किये ही नही और जाकर ताजमहल की सैर करने लगे। (उन दिनो विश्वविद्यालय की परीक्षाए आगरा मे हुआ करती थी)। मगर बाद मे उनके प्रोफेसर ने उन्हे बुलाया और बहुत बिगड़े। उनका कहना था कि पहला पर्चा तुमने ठीक-ठीक किया है और बडी बेव-कूफी की, जो आगे के पर्चे नही किये। खैर, इस तरह पिताजी की कालेज की शिक्षा हमेशा के लिए खतम हो गई और बी० ए० पास करना आखिर रही गया।

अब उन्हे काम-धंधा जमाने की फिक्र हुई। सहज ही उनकी निगाह वकालत की ओर गई, क्योकि उस समय वही एक पेशा ऐसा था जिसम बुद्धिमान और होशियार आदमियो के लिए काम की गुजाइश थी और जिसकी चल जाती उसके पौ-बारह होते थे। अपने भाई की मिसाल उनके सामने थी ही। बस हाईकोर्ट-वका-लत के इम्तिहान मे बैठे और उनका नम्बर सबसे पहला रहा। उन्हे एक स्वर्ण-पदक भी मिला। कानून का विषय उन्हे दिल से पसन्द था और उसमे सफलता पाने का उन्होने निश्चय कर लिया था।

उन्होने कानपुर की जिला अदालतों मे वकालत शुरू की, और चूकि वह सफलता पाने के लिए बहुत लालायित थे, इसलिए जी-तोड मेहनत की। फिर क्या था, उनकी वकालत अच्छी चमक उठी। मगर हा, हंसी-खेल और मौज-मजा उनका उसी तरह जारी रहा और तब भी उनका कुछ वक्त उसमे चला जाता था। उन्हे कुश्ती और दगल का खास शौक था। उन दिनों कानपुर कुश्तियो और दगलो के लिए मशहूर था।

तीन साल तक कानपुर मे उम्मीदवार के तौर पर काम करने के बाद पिताजी इलाहाबाद आये और हाईकोर्ट मे काम करने लगे। इधर चाचाजी (पण्डित नन्दलाल) एकाएक गुजर गये। इससे पिताजी को जबरदस्त धक्का लगा। वह उनके लिए भाई ही नही, पिता के समान थे और उन दोनों मे बड़ा प्रेम था। उनके गुजर जाने से परिवार का मुखिया, जिसपर सारी आमदनी का दारोमदार था, उठ गया। परिवार की और पिताजी की यह बहुत बड़ी हानि थी। अब इतने बड़े कुनबे के भरण-पोषण का प्रायः सारा भार उनके तरुण कन्धो पर आ पड़ा।

वह अपने पेशे मे जुट पड़े। सफलता पर तो तुले हुए थे ही। इसलिए कई महीनो तक दूसरी सब बातो से जी हटाकर इसीमे लगे रहे। चाचाजी के करीब-करीब सब मुकदमे उन्हे मिल गये और उनमे अच्छी कामयाबी भी मिली। इससे अपने पेशे मे भी उन्हे बहुत जल्दी कामयावी मिलती चली गई। मुकदमे धड़ाधड़ आने लगे और रुपया खूब मिलने लगा। छोटी उम्र मे ही उन्होने वकालती पेशे मे नामवरी हासिल कर ली; परन्तु उसकी कीमत उन्हे यह देनी पड़ी कि वकालत-देवी के ही मानो वह अधीन हो गये। उनके पास न सार्वजनिक और न घरू कामों के लिए वक्त रहता था--यहा तक कि छुट्टियो के दिन भी वह वकालत के काम मे ही लगाते थे। कांग्रेस उन दिनों मध्यम श्रेणी के अंग्रेजी पढ़े लोगो का ध्यान अपनी तरफ खीचने लगी थी। वह उसकी शुरू

की कुछ बैठकों मे गये भी थे और, जहा तक विचारो से सबध है, वह काग्रेसवादी रहे भी, पर उसके कामो मे कोई खास दिलचस्पी नही लेते थे। अपने पेशे मे ही इतने डूबे रहते थे कि उसके लिए उन्हे वक्त नही था।

साधारण अर्थ मे वह जरूर ही राष्ट्रवादी थे। मगर वह अंग्रेजों और उनके तौर-तरीको के कद्रदा भी थे। उनका यह खयाल बन गया था कि हमारे देशवासी ही नीचे गिर गये है और वे जिस हालत मे है, बहुत कुछ उसीके लायक भी है। जो राजनैतिक लोग बाते-ही-बाते करते है, करते-धरते कुछ नही, उनसे वह मन-ही-मन कुछ नफरत-सी करते थे, हालाकि वह यह नही जानते थे कि इससे ज्यादा और वे कर ही क्या सकते थे? हा, एक और खयाल भी उनके दिमाग मे था, जो कि उनकी कामयाबी के नशे से पैदा हुआ था। वह यह कि जो राजनीति मे पडे है, उनमे ज्यादा-तर—सब नही—वे लोग है, जो अपने जीवन मे नाकामयाब हो चुके है।

पिताजी की आमदनी दिन-दिन बढती जाती थी, जिससे हमारे रहन-सहन मे बहुत परिवर्तन हो गया था। आमदनी बढी नही कि खर्च भी उसके साथ बढा नही। रुपया जमा करना पिताजी को ऐसा मालूम पड़ता था मानो जब और जितना चाहे रुपया कमाने की अपनी शक्ति पर तोहमत लगाना है। खिलाडी की भावना और हर तरह से बढी-चढी रहन-सहन के शौकीन तो वह थे ही, जो कुछ कमाते थे, सब खर्च कर देते थे। नतीजा यह हुआ कि हमारा रहन-सहन धीरे-धीरे पश्चिमी साचे मे ढलता गया।

मेरे बचपन मे[1] हमारे घर का यह हाल था।

---

[1] १४ नवम्बर १८८९, मार्गशीर्ष बदी सप्तमी, संवत् १९४६ को इलाहाबाद में मेरा जन्म हुआ था।

: ३ :

मेरा बचपन

मा-बाप धनी-मानी और बेटा इकलौता हो तो अक्सर वह बिगड जाता है —फिर, हिन्दुस्तान में तो और भी ज्यादा। और जब लड़का ऐसा हो जो ग्यारह साल की उम्र तक अपने मां-बाप का इकलौता रहा हो ,तो फिर दुलार की खराबी से उसके बचने की आशा और भी कम रह जाती है। मेरी दो बहने उम्र मे मुझसे बहुत ही छोटी है और हम हरएक के बीच काफी साल का फर्क है। इस तरह अपने बचपन मे मैं बहुत कुछ अकेला ही रहा।

मगर हमारे घर मे किसी तरह का अकेलापन नही था। हमारा परिवार बहुत बड़ा था, जिसमे चचेरे भाई वगैरा और दूसरे पास के रिश्तेदार बहुत थे, जैसाकि हिन्दू परिवारो मे आम तौर पर हुआ करता है। मगर मुश्किल यह थी कि मेरे तमाम चचेरे भाई उम्र मे मुझसे बहुत बड़े थे और वे सब हाईस्कूल या कालेज मे पढते थे। उनकी नजर मे मैं उनके कामो या खेलो मे शरीक होने लायक नही था। इस तरह इतने बड़े परिवार मे मैं और भी अकेला लगता था और ज्यादातर अपने ही खयालों और खेलों मे मुझे अकेले अपना वक्त काटना पड़ता था।

मैं अपने चचेरे भाइयो की बाते सुनता, मगर हमेशा सबकी सब मेरी समझ मे आ जाती हो सो बात नही। अक्सर ये बाते अंग्रेज और यूरेशियन लोगों के ऐंठू स्वभाव और हिन्दुस्तानियों के साथ अपमानजनक व्यवहारों के बारे मे हुआ करती थी और इस बात पर भी चर्चा हुआ करती थी कि प्रत्येक हिन्दुस्तानी का फर्ज होना चाहिए कि वह इस हालत का मुकाबला करे और इसे हरगिज बर्दाश्त न करे। हाकिमों और लोगो मे टक्करे होती रहती थी और उनके समाचार आये दिन सुनाई पड़ते थे। उसपर भी खूब चर्चा होती थी। यह एक आम बात थी कि जब कोई अंग्रेज

किसी हिन्दुस्तानी को कत्ल कर देता तो अंग्रेजों के जूरी उसको बरी कर देते। यह बात सबको खटकती थी। रेलगाडियो मे यूरोपियनों के लिए डिब्बे रिजर्व रहते थे और गाड़ी मे चाहे कितनी भी भीड हो—और जबरदस्त भीड़ रहा ही करती थी—कोई हिन्दुस्तानी उसमे सफर नही कर सकता था, भले ही वे खाली पड़े रहे। जो डिब्बे रिजर्व नही होते थे उनपर भी अंग्रेज लोग अपना कब्जा जमा लेते थे और किसी हिन्दुस्तानी को घुसने नही देते थे। सार्वजनिक बगीचो और दूसरी जगहो मे भी बेचे और कुर्सिया रिजर्व रखी जाती थी। विदेशी हाकिमो के इस बर्ताव को देखकर मुझे बड़ा रंज होता और जब कभी कोई हिन्दुस्तानी उलट कर वार करता तो मुझे बड़ी खुशी होती। कभी-कभी मेरे चचेरे भाइयों मे से कोई या उनके कोई दोस्त खुद भी ऐसे झगडो मे उलझ जाते, तब हम लोगों मे बड़ा जोश फैल जाता। हमारे परिवार मे मेरे चचेरे भाई बड़े दबग थे। उन्हे अक्सर अंग्रेजो से, ज्यादातर यूरेशियनो से झगड़ा मोल लेने का बडा शौक था। यूरेशियन तो अपने को शासको की जाति का बताने के लिए अंग्रेज अफसरो और व्यापारियो से भी ज्यादा बुरी तरह पेश आते थे। ऐसे झगड़े खासकर रेल के सफर मे हुआ करते थे।

शाम को रोज कई मित्र पिताजी से मिलने आया करते थे। पिताजी आराम से पड़ जाते और उनके बीच दिन भर की थकान मिटाते। उनकी जबरदस्त हसी से सारा घर भर जाता था। इलाहाबाद मे उनकी हसी एक मशहूर बात हो गई थी। कभी-कभी मै परदे की ओट से उनकी और उनके दोस्तो की ओर झाकता और यह जानने की कोशिश करता कि ये बडे लोग इकट्ठे होकर आपस मे क्या-क्या बाते किया करते है। मगर जब कभी ऐसा करते हुए मै पकडा जाता, तो खीच कर बाहर लाया जाता और सहमा हुआ कुछ देर तक पिताजी की गोदी मे बैठाया जाता।

मै पिताजी की बहुत इज्जत करता था। मै उन्हे बल, साहस

और होशियारी की मूर्ति समझता था और दूसरों के मुकाबले इन बातो मे बहुत ही ऊँचा और वढा-चढा पाता था। मै अपने दिल मे मसूबे बाधा करता था कि बड़ा होने पर पिताजी की तरह होऊगा। पर जहा मै उनकी इज्जत करता था और उन्हे बहुत चाहता था वहा मै उनसे डरता भी बहुत था। नौकर-चाकरों पर और दूसरों पर बिगड़ते हुए मैने उन्हे देखा था। उस समय वह बड़े भयकर मालूम होते थे और मै मारे डर के कापने लगता था। नौकरो के साथ उनका जो यह बर्ताव होता था, उससे मेरे मन मे उनपर कभी-कभी गुस्सा आ जाया करता था। उनका स्वभाव दरअसल भयंकर था और उनकी उम्र के ढलते दिनो मे भी उनका-सा गुस्सा मुझे किसी दूसरे मे देखने को नही मिला। लेकिन खशकिस्मती से उनमे हसी-मजाक का माद्दा भी बडे जोर का था और वह इरादे के बड़े पक्के थे। इससे आम-तौर पर अपने-आप पर जब्त रख सकते थे। ज्यो-ज्यो उनकी उम्र बढती गई उनकी सयम-शक्ति बढती गई; और फिर शायद ही कभी वह ऐसा भीषण स्वरूप धारण करते थे।

उनकी तेज-मिजाजी की एक घटना मुझे याद है, क्योकि बचपन ही मे मै उसका शिकार हो गया था। कोई ५-६ वर्ष की मेरी उम्र रही होगी। एक रोज मैने पिताजी की मेज पर दो फाउण्टेन-पेन पड़े देखे। मेरा जी ललचाया। मैने दिल मे कहा—पिताजी एक साथ दो पेनों का क्या करेगे ? एक मैने अपनी जेब मे डाल लिया। बाद मे बडी जोरो की तलाश हुई कि पेन कहां चला गया ? तब तो मै घबराया। मगर मैने वताया नही। पेन मिल गया और मै गुनाहगार करार दिया गया। पिताजी बहुत नाराज हुए और मेरी खूब मरम्मत की। मै दर्द व अपमान से अपना-सा मुह लिये मा की गोद मे दौड़ा गया और कई दिन तक मेरे दर्द करते हुए छोटे-से बदन पर क्रीम और मरहम लगाये गये।

लकिन मुझे याद नही पड़ता कि इस सजा के कारण पिताजी

को मैने कोसा हो। मै समझता हू, मेरे दिल ने यही कहा होगा कि सजा तो तुझे वाजिब ही मिली है; मगर थी जरूरत से ज्यादा! लेकिन पिताजी के लिए मेरे दिल मे वैसी ही इज्जत और मुहब्बत बनी रही—हा, अब एक डर उसमे शामिल हो गया था। मगर मा के बारे मे ऐसा न था। उससे मै बिलकुल नही डरता था, क्योकि मै जानता था कि वह मेरे सब किये-धरे को माफ कर देगी और उसके इस ज्यादा और बेहद प्रेम के कारण मै उसपर थोड़ा-बहुत हावी होने की भी कोशिश करता था। पिताजी की बनिस्बत मै मा को ज़्यादा पहचान सका था और वह मुझे पिताजी से अपने ज्यादा नजदीक मालूम होती थी। मै जितने भरोसे के साथ माताजी से अपनी बात कह सकता था, उतने भरोसे के साथ पिताजी से कहने का स्वप्न मे भी खयाल नही कर सकता था। वह सुडौल, कद मे छोटी और नाटी थी और मै जल्द ही करीब-क़रीब उनके बराबर ऊंचा हो गया था और अपने को उनके बराबर समझने लगा था। वह बहुत सुन्दर थी। उनका सुन्दर चेहरा और छोटे-छोटे खूबसूरत हाथ-पाव मुझे बहुत भाते थे।

एक और शख्स थे, जिनपर लडकपन मे मै भरोसा करता था। वह थे पिताजी के मुशी मुबारक अली। वह बदायू के रहने वाले थे और उनके घर के लोग खुशहाल थे। मगर १८५७ के गदर ने उनके कुनबे को बरबाद कर दिया और अग्रेजी फौज ने उनको एक हद तक जड़मूल से उखाड़ फेका था। इस मुसीबत ने उन्हे हर एक के प्रति और खासकर बच्चो के प्रति बहुत नम्र और सहनशील बना दिया था। मेरे लिए तो वह, जब कभी मै किसी बात से दुखी होता या तकलीफ़ महसूस करता तो सान्त्वना के निश्चित आधार थे। उनके बढ़िया सफेद दाढ़ी थी और मेरी नौजवान आंखो को वह बहुत पुराने और प्राचीन जानकारी के खजाने मालूम होते थे। मै उनके पास लेटे-लेटे घंटो अलिफ-लैला की और दूसरे किस्से-कहानियां या १८५७ और १८५८ के गदर की बाते सुना करता। बहुत दिन बाद, मेरे बडे होने पर, मुशीजी

मर गये। उनकी प्यारी सुखद स्मृति अब भी मेरे मन मे बसी हुई है।

हिन्दू पुराणो और रामायण-महाभारत की कथाए भी मै सुना करता था। मेरी मा और चाचियां सुनाया करती थी। मेरी एक चाची, पण्डित नन्दलालजी की विधवा पत्नी, पुराने हिन्दू-ग्रन्थों की बहुत जानकारी रखती थी। उनके पास इन कहानियों का तो मानो खजाना ही भरा था। इस कारण हिन्दू पौराणिक कथाओ और गाथाओं की मुझे काफी जानकारी हो गई थी।

धर्म के मामले मे मेरे खयालात बहुत धुधले थे। मुझे वह स्त्रियो से सम्बन्ध रखनेवाला विषय मालूम होता था। पिताजी और बड़े चचेरे भाई धर्म की बात को हंसी मे उडा दिया करते थे और इसको कोई महत्व नही देते थे। हां, हमारे घर की औरते अलबत्ता पूजा-पाठ और व्रत-त्यौहार किया करती थी। हालाकि मै इस मामले मे घर के बड़े-बूढे आदमियो की देखा-देखी उनकी अवहेलना किया करता था, फिर भी कहना होगा कि मुझे उनमे एक लुत्फ आता था। कभी-कभी मै अपनी मा या चाची के साथ गगा नहाने जाया करता और कभी इलाहाबाद या काशी या दूसरी जगह के मन्दिरो मे भी या किसी नामी और बड़े साधु-सन्यासी के दर्शन के लिए भी जाया करता। मगर इन सबका बहुत कम असर मेरे दिल पर हुआ।

फिर त्यौहार के दिन आते थे—होली, जबकि सारे शहर मे रंगरलियो की धूम मच जाती थी और हम लोग एक-दूसरे पर रग की पिचकारिया चलाते थे, दिवाली रोशनी का त्यौहार होता, जबकि सब घरो पर धीमी रोशनी वाले मिट्टी के हजारो दिये जलाये जाते, जन्माष्टमी, जिसमे जेल मे जन्मे श्रीकृष्ण की आधी-रात को वर्षगाठ मनाई जाती (लेकिन उस समय तक जागते रहना हमारे लिए बडा मुश्किल होता था), दशहरा और राम-लीला, जिसमे स्वाग और जलसों के द्वारा रामचन्द्र और लंका-विजय की पुरानी कहानी की नकल की जाती थी और जिन्हे देखने

के लिए लोगो की बडी भारी भीड़ इकट्ठी होती थी। सब बच्चे मुहर्रम का जलूस भी देखने जाते थे, जिसमे रेशमी अलम होते थे और सूदूर अरब मे हसन और हुसैन के साथ हुई घटनाओ की यादगार मे शोकपूर्ण मर्सिये गाये जाते थे। दोनो ईद पर मुशीजी बढिया कपडे पहन कर बडी मस्जिद मे नमाज के लिए जाते और मै उनके घर जाकर मीठी सेवैया और दूसरी बढिया चीजे खाया करता। इनके सिवा रक्षाबन्धन, भैया-दूज वगैरा छोटे त्यौहार भी हम लोग मनाते थे।

कश्मीरियों के कुछ ख़ास त्यौहार भी होते है, जिन्हे उत्तर मे बहुतेरे दूसरे हिन्दू नही मानते। इनमे सबसे बडा नौरोज याने वर्ष-प्रतिपदा का त्यौहार है। इस दिन हम लोग नये कपडे पहन कर बन-ठनकर निकलते और घर के बडे लड़के-लडकियो को हाथ-खर्च के तौर पर कुछ पैसे मिला करते थे।

मगर इन तमाम उत्सवो मे मुझे एक सालाना जलसे मे ज्यादा दिलचस्पी रहती, जिसका ख़ास मुझी से ताल्लुक था——यानी मेरी वर्ष-गाठ का उत्सव। इस दिन मै बड़े उत्साह और रग मे रहता था। सुबह ही मै एक बडी तराजू मे गेहू और दूसरी चीजो के थैलो से तौला जाता और फिर वे चीजे गरीबो को बाट दी जाती और बाद को नये-नये कपड़ो से सजा-धजा कर मुझे भेट और तोहफे नजर किये जाते। फिर शाम को दावत दी जाती। उस दिन का मानो मै राजा ही हो जाता, मगर मुझे इस बात का बडा दु ख होता था कि वर्ष-गाठ साल मे एक बार ही क्यो आती है? और मैने इस बात का आन्दोलन-सा खडा करने की कोशिश की कि वर्ष-गाठ के मौके बरस मे एक बार ही क्यो, और अधिक क्यो न आया करे? उस वक्त मुझे क्या पता था कि एक समय ऐसा भी आयेगा जब ये वर्ष-गाठे हमको अपने बुढापे के आने की दुखदाई याद दिलाया करेगी।

कभी-कभी हम सब घर के लोग अपने किसी भाई या किसी रिश्तेदार या किसी दोस्त की शादी की बरात मे भी जाया करते।

सफर मे बडी धूम रहती। शादी के उत्सवो मे हम बच्चो की तमाम पाबन्दिया ढीली हो जाती थी और हम आजादी से आ-जा सकते थे। शादीखाने मे कई कुटुम्बो के लोग आकर रहते थे और उनमे बहुतेरे लडके और लड़किया भी होती थी। ऐसे मौको पर मुझे अकेलेपनकी शिकायत नही रहती थी और जी भरकर खेलने-कूदने और शरारत करने का मौका मिल जाता था। हा, कभी-कभी बड़े-बूढो की डांट-फटकार भी जरूर पड़ जाती थी।

उन दिनो की एक छोटी-सी घटना मुझे अभी याद है। ६-७ वर्षका रहा होऊँगा। मैरोज घुड़-सवारी केलिए जाया करता था। मेरे साथ घुड-सेना का एक सवार रहता था। एक रोज शाम को मै घोडे से गिर पड़ा और मेरा टट्टू—जो अरबी नस्ल का एक अच्छा जानवर था—खाली घर लौट आया। पिताजी टेनिस खेल रहे थे। काफी घबराहट और हलचल मच गई और वहां जितने लोग थे सब-के-सब जो भी सवारी मिली, उसे लेकर मेरी तलाश मे दौड पड़े। पिताजी उन सबके अगुआ बने हुए थे। वह रास्ते मे मुझे मिले और मेरा इस तरह स्वागत किया मानो मैने कोई बडी बहादुरी का काम किया हो।

: ४ :

थियोसॉफ़ी

जब मै दस साल का था, हम लोग एक नये और काफी बडे मकान मे आ गए, जिसका नाम पिताजी ने 'आनन्द-भवन' रखा था। इस मकान मे एक बड़ा बाग और एक तैरने का बड़ा-सा हौज था और वहा ज्यो-ज्यो नई-नई चीजे दिखाई पड़ती, त्यो-त्यो मेरी तबीयत लहरा उठती। इमारत मे नए-नए हिस्से जोड़े जा रहे थे और बहुत-सा खुदाई और चिनाई का काम हो रहा था। वहां मज़दूरों

को काम करते हुए देखना मुझे अच्छा लगता था।

मै कह चुका हूं कि मकान मे तैरने के लिए एक बडा हौज था। मै तैरना जान गया और पानी के भीतर मुझे जरा भी डर नही मालूम होता था। गर्मी के दिनो मे कई बार मौका-बे-मौका मै उसमे नहाया करता। शाम को पिताजी के कई दोस्त तैरने आया करते थे। वह एक नई चीज थी। वहा तथा मकान मे बिजली की जो बत्तिया लगाई गई थी वे इलाहाबाद मे उन दिनो नई बाते थी। इन नहाने वालो के झुण्ड मे मुझे बड़ा आनन्द आता था और उनमे जो तैरना नही जानते थे उनमे से किसी को आगे धक्का देकर या पीछे खीचकर डराने मे बडा ही मजा आता था।

उन दिनो बोअर-युद्ध हो रहा था। उसमे मेरी दिलचस्पी होने लगी। बोअरो की तरफ मेरी हमदर्दी थी। इस लडाई की खबरो को पढने के लिए मै अखबार लेने लगा।

इसी समय एक घरेलू बात मे मेरा चित्त रम गया। वह थी मेरी एक छोटी बहन का जन्म। मेरे दिल मे एक अर्से से एक रज छिपा रहता था और वह यह कि मेरे कोई भाई या बहन नही है, जबकि और कइयो के है। जब मुझे यह मालूम हुआ कि मेरे भाई या बहन होने वाली है तो मेरी खुशी का पार न रहा। पिताजी उन दिनो यूरोप मे थे। मुझे याद है कि उस वक्त बरामदे मे बैठा-बैठा कितनी उत्सुकता से इस बात की राह देख रहा था। इतने मे एक डाक्टर ने आकर मुझे बहन होने की खबर दी और कहा—शायद मजाक मे—कि तुमको खुश होना चाहिए कि भाई नही हुआ, जो तुम्हारी जायदाद मे हिस्सा बटा लेता। यह बात मुझे बहुत चुभी और मुझे गुस्सा भी आ गया—इस खयाल पर कि कोई मुझे ऐसा कमीना खयाल रखने वाला समझे।

पिताजी की यूरोप-यात्रा ने कश्मीरी ब्राह्मणो मे अन्दर-ही-अन्दर एक तूफान खड़ा कर दिया। योरप से लौटने पर उन्होने किसी किस्म का प्रायश्चित्त करने से इन्कार कर दिया। इससे बडा

तहलका मच गया, ख़ासकर पिताजी की तेजी और अक्खड़पन के कारण। आख़िरकार कितने ही कश्मीरी पिताजी के साथ हो गये और एक तीसरा दल बन गया। थोड़े ही समय के अन्दर जैसे-जैसे खयालात बदलते गये और पुरानी पाबन्दिया हटती गई, कश्मीरी लड़के विदेश जाने लगे। खान-पान का परहेज करीब-करीब सब उठ गया। स्त्रियो ने परदा करना छोड़ दिया। दूसरी बिरादरीवालो के साथ शादी-ब्याह होने लगे। मेरी दोनों बहनों[1] ने गैर-कश्मीरियों के साथ शादी की और हमारे कुटुम्ब का एक युवक हाल ही मे एक हगेरियन लड़की ब्याह लाया है।

जब मै कुल ग्यारह वर्ष का था तो मेरे लिए एक नये शिक्षक आए, जिनका नाम था एफ० टी० ब्रुक्स। वह मेरे साथ ही रहते थे। उनके पिता आयरिश थे और मा फ्रासीसी या बेलजियन थी। वह एक पक्के थियोसॉफिस्ट थे और मिसेज बेसेण्ट की सिफारिश से आये थे। कोई तीन साल तक वह मेरे साथ रहे। कई बातों में मुझपर उनका गहरा असर पड़ा।

एफ० टी० ब्रुक्स की सोहबत से मुझे किताबे पढने का चाव लगा, और मैंने कई अंग्रेजी किताबे पढ़ डाली—अलबत्ता बिना किसी उद्देश्य के। बच्चो और लड़को-सम्बन्धी अच्छा साहित्य मैंने देख लिया था।

ब्रुक्स ने विज्ञान के रहस्यों से भी मेरा परिचय कराया। हमने एक विज्ञान की प्रयोगशाला खड़ी कर ली थी और मैं घटों प्रारम्भिक वस्तु-विज्ञान और रसायन-शास्त्र के प्रयोग किया करता था, जो बड़े दिलचस्प मालूम होते थे।

पुस्तके पढने के अलावा ब्रुक्स साहब ने एक और बात का असर मुझपर डाला, जो कुछ समय तक बडे जोर के साथ रहा। वह थी थियोसॉफी। हर हफ्ते उनके कमरे मे थियोसॉफिस्टो की

---

[1] पं० जवाहरलाल नेहरू की पुत्री इन्दिरा ने भी एक गैर-कश्मीरी से शादी की है।—अनु०

सभा हुआ करती। मै भी उसमे जाया करता और धीरे-धीरे थियो-सॉफी की भाषा और विचार-शैली मुझे हृदयंगम होने लगी।

यही से जिन्दगी मे सबसे पहले मै अपनी तरफ से धर्म और परलोक के बारे मे गम्भीरता से सोचने लगा था। हिन्दूधर्म, खासकर मेरी नजर मे ऊंचा उठ गया था, उसके क्रिया-काण्ड और व्रत-उत्सव नही—बल्कि उसके महान ग्रन्थ, उपनिषद और भगवद्गीता। मै उन्हे समझ तो नही पाता था, परन्तु वे मुझे बहुत विलक्षण जरूर मालूम होते थे।

उन दिनों मिसेज बेसेण्ट इलाहाबाद आई हुई थी और उन्होने थियोसॉफी सम्बन्धी कई विषयो पर भाषण दिये थे। उनके सुन्दर भाषणो से मेरा दिल हिल उठता था और मै चकाचौध होकर घर आता और अपने आपको भूल जाता था, जैसे कि किसी सपने मे हू। मै उस समय तेरह साल का था तो भी मैने थियो-सॉफिकल सोसायटी का मेम्बर बनना तय कर लिया। जब मै पिताजी से इजाजत लेने गया तो उन्होंने हँस कर उडा दिया। वह इस मामले को इधर या उधर कोई महत्त्व नहीं देना चाहते थे। उनकी इस उदासीनता पर मुझे बड़ा दु ख हुआ।

इस तरह मै तेरह वर्ष की उम्र मे थियोसॉफिकल सोसायटी का मेम्बर बना और खुद मिसेज बेसेण्ट ने मुझे प्रारम्भिक दीक्षा दी।

ब्रुक्स साहब के मुझसे अलहदा होते ही थियोसॉफी से भी मेरा सम्पर्क छूट गया, और बहुत थोड़े ही अर्से मे थियोसॉफी मेरी जिन्दगी से बिलकुल हट गई। इसकी कुछ वजह तो यह थी कि मै इग्लैंड पढने चला गया था। मगर [illegible] शक [illegible] ब्रुक्स साहब की सगति का मुझपर अ[illegible] और [illegible] और थियोसॉफी का बहुत ऋणी हूं।

जिस दूसरी मार्के की घटना [illegible] डाला, वह [illegible] पान की [illegible]

मेरा दिल उत्साह से उछलने लगता और रोज मै अखवारों मे ताजी खबरे पढने को उतावला रहता। मैने जापान-सम्बन्धी कई किताबे मगाई और उनमे से थोड़ी-बहुत पढी भी। जापान के इतिहास मे तो मानो मै अपने को गवां बैठा था। पुराने जापान के सरदारो की कहानिया चाव से पढ़ता और लाफ्केडियो हर्न [1] का गद्य मुझे रुचिकर लगता था।

मेरा दिल राष्ट्रीय भावो से भरा रहता था। मै यूरोप के पजे से एशिया और हिन्दुस्तान को आजाद करने के भावो मे डूबा रहता। मै बहादुरी के बड़े-बड़े मनसूबे बाधा करता था कि कैसे हाथ मे तलवार लेकर मै हिन्दुस्तान को आजाद करने के लिए लड़ूगा।

मै चौदह साल का था। हमारे घर मे रद्दोबदल हो रहे थे। मेरे बडे चचेरे भाई अपने-अपने काम-धन्धो मे लग गये थे और अलहदा रहने लगे थे। मेरे मन मे नये-नये विचार और गोल-मोल कल्पनाए मडराया करती थी और स्त्री-जाति मे मेरी कुछ दिलचस्पी बढने लगी थी, लेकिन अब भी मै लड़कियों की बनिस्बत लड़को के साथ मिलना ज्यादा पसन्द करता था और लड़कियों के साथ मिलना-जुलना अपनी शान के खिलाफ समझता था।

मई १९०५ मे, जब मै पन्द्रह साल का था, हम इग्लैड रवाना हुए। पिताजी, मा, मेरी छोटी बहन और मै, चारो साथ गये थे।

: ५ :

हॅरो और केम्ब्रिज

मई के आखिर मे हम लोग लन्दन पहुंचे। हॅरो मे दाखिल होने की दृष्टि से मेरी उम्र कुछ बडी थी, क्योकि मै उन दिनों पन्द्रह बरस का था। इसलिए यह मेरी ख़ुशक़िस्मती ही थी कि मुझे वहा

---

[1] जापानी लेखक, जिसने जापान-जीवन के अनुपम चित्र चित्रित किये है। अनु०

जगह मिल गई। मेरे परिवार के लोग पहले तो यूरोप के दूसरे देशो की यात्रा को चले गये और फिर वहा से कुछ महीनो बाद हिन्दुस्तान लौट गये।

इससे पहले मै अजनबी आदमियों मे बिलकुल अकेला कभी नही रहा था। इसलिए मुझे बडा ही सूना-सूना-सा मालूम पडता और घर की याद सताती थी, लेकिन यह हालत ज्यादा दिनो तक नही रही। कुछ हद तक मै स्कूल की जिन्दगी मे हिल-मिल गया और पढाई तथा खेल-कूद मे लगा रहने लगा, लेकिन मेरा पूरा मेल कभी नही बैठा। हमेशा मेरे दिल मे यह खयाल बना रहता कि मै इन लोगो मे से नही हू और दूसरे लोग भी मेरी बाबत यही ख़याल करते होगे। कुछ हद तक मै सबसे अलग-अकेला ही रहा। लेकिन कुल मिलाकर मै खेलो मे पूरा-पूरा हिस्सा लेता था। खेलो मे मै चमका-चमकाया तो कभी नही, लेकिन मेरा विश्वास है कि लोग यह मानते थे कि मै खेल से पीछे हटने वाला भी न था।

शुरू मे तो मुझे नीचे के दर्जे मे भर्ती किया गया, क्योकि मुझे लैटिन कम आती थी, लेकिन फौरन ही मुझे तरक्की मिल गई। सम्भवत कई बातो मे और ख़ासकर आम बातो की जानकारी मे, मै अपनी उम्र के लड़को से आगे था। इसमे शक नही कि मेरी दिलचस्पी के विषय बहुतेरे थे और मै अपने ज्यादातर सहपाठियो से ज्यादा किताबे और अखबार पढता था। मुझे याद है कि मैने पिताजी को लिखा था कि अग्रेज लडके बड़े मट्ठर होते है, क्योकि वे खेलो के सिवा और किसी विषय पर बात ही नही कर सकते। लेकिन मुझे इसमे अपवाद भी मिले थे, ख़ासतौर पर ऊपर के दर्जो मे।

स्कूल मे अच्छा काम करने के लिए मुझे जी० एम० ट्रैवेलियन की गैरीबाल्डी-सबधी एक पुस्तक इनाम मे मिली थी। इस पुस्तक मे मेरा मन ऐसा लगा कि मैने फौरन ही इस माला की बाकी दो किताबे भी ख़रीद ली और उनमे गैरीबाल्डी की पूरी कहानी बड़े

ध्यान के साथ पढी। हिन्दुस्तान मे भी इसी तरह की घटनाओ की कल्पना मेरे मन मे उठने लगी। मै आजादी की बहादुराना लड़ाई के सपने देखने लगा और मेरे मन मे इटली और हिन्दुस्तान अजीब तरह से मिल-जुल गये। इन खयालों के लिए हॅरो कुछ छोटी और तग जगह मालूम होने लगी और मै विश्वविद्यालय के ज्यादा बड़े क्षेत्र मे जाने की इच्छा करने लगा। इसीलिए मैंने पिताजी को इस बात के लिए राजी कर लिया और मै हॅरो मे सिर्फ दो बरस रहकर वहा से चला गया। यह दो बरस का समय वहा के निश्चित साधारण समय से बहुत कम था।

१९०७ के अक्तूबर के शुरू मे मै केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज मे पहुच गया। उस वक्त मेरी उम्र सत्रह या अठारह बरस के लगभग थी। मुझे इस बात से बेहद खुशी हुई कि अब मै अण्डर ग्रेजुएट हू, स्कूल के मुकाबले यहा मुझे जो चाहू सो करने की काफी आजादी मिलेगी। मै लडकपन के बन्धन से मुक्त हो गया था और यह महसूस करने लगा था कि आखिर मै भी अब बडा होने का दावा कर सकता हू। मै ऐंठ के साथ केम्ब्रिज के विशाल भवनों और उसकी तग गलियो मे चक्कर काटा करता और यदि कोई जान-पहचान वाला मिल जाता तो बहुत खुश होता।

कैम्ब्रिज मे मै तीन साल रहा। ये तीनो साल शातिपूर्वक बीते—धीरे-धीरे, धीमी-धीमी बहनेवाली कैम नदी की तरह। ये साल बडे आनन्द मे बीते। इनमे बहुत-से मित्र मिले, कुछ अध्ययन किया, कुछ खेले और मानसिक क्षितिज धीरे-धीरे बढता रहा। मैंने प्राकृतिक विज्ञान का कोर्स लिया था। मेरे विषय थे रसायन-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र और वनस्पति-शास्त्र। परन्तु मेरी दिलचस्पी इन्ही विषयो तक सीमित न थी। केम्ब्रिज मे या छुट्टियो मे लन्दन मे अथवा दूसरी जगहो मे मुझे जो लोग मिले, उनमे से बहुत-से विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थो के बारे में, साहित्य और इतिहास के बारे मे, राजनीति और अर्थशास्त्र के बारे मे बातचीत करते

थे। पहले-पहल तो ये बढी-चढी बाते मुझे बड़ी मुश्किल मालूम हुई, परन्तु जब मैने कुछ किताबे पढी, तब सब बाते समझने लगा, जिससे मै कम-से-कम अन्त तक बात करते हुए भी इन साधारण विषयो मे से किसी के बारे मे अपना घोर अज्ञान जाहिर नही होने देता था। हम लोग अपने को बड़ा अक्लमन्द समझते थे।

१९०७ से कई साल तक हिन्दुस्तान बेचैनी और कष्टो से मानो उबलता रहा। १८५७ के गदर के बाद पहली मर्तबा हिन्दुस्तान फिर लडने पर आमादा हुआ था। वह विदेशी शासन के सामने चुपचाप सिर झुकाने को तैयार न था। तिलक की हलचलो और उनके कारावास तथा अरविन्द घोष की खबरो से, और बगाल की जनता जिस ढग से स्वदेशी और बहिष्कार की प्रतिज्ञाएं ले रही थी, उनसे इंग्लैण्ड मे रहनेवाले हिन्दुस्तानियो मे खलबली मच जाती थी। हम सब लोग बिना किसी अपवाद के तिलक-दल या गरम-दल के थे। हिन्दुस्तान मे यह नया दल उन दिनो इन्ही नामो से पुकारा जाता था।

कैम्ब्रिज मे जो हिन्दुस्तानी रहते थे उनकी एक 'मजलिस' थी। इसमे हम लोग अक्सर राजनैतिक मामलो पर बहस करते थे, लेकिन ये बहसे कुछ हद तक बेमानी थी। पार्लमेण्ट की अथवा यूनिवर्सिटी-यूनियन की बहस की शैली तथा अदाओ की नकल करने की जितनी कोशिश की जाती थी उतनी विषय को समझने की नही। मै अक्सर मजलिस मे जाया करता था लेकिन तीन साल मे मै वहा शायद ही बोला होऊं। मै अपनी झिझक और हिचकिचाहट दूर नहीं कर सका।

जब मै कैम्ब्रिज मे था तभी यह सवाल उठ खड़ा हुआ था कि मुझे कौन-सा 'कैरियर' चुनना चाहिये? कुछ समय के लिए इडियन सिविल सर्विस की बात भी सोची गई। उन दिनो उसमे एक खास आकर्षण था। परन्तु चूकि न तो पिताजी ही उसके लिए

बहुत उत्सुक थे न मै ही, अत. यह विचार छोड़ दिया गया। शायद इसका मुख्य कारण यह था कि उसके लिए अभी मेरी उम्र कम थी और अगर मै उस इम्तिहान मे बैठना भी चाहता तो मुझे अपनी डिग्री लेने के बाद भी तीन-चार साल और वहां ठहरना पड़ता। मैने कैम्ब्रिज मे जब अपनी डिग्री ली तब मै बीस वर्ष का था और उन दिनो इडियन सिविल सर्विस के लिए उम्र की मियाद बाईस से लेकर चौबीस वर्ष तक थी। इम्तिहान मे कामयाब होने पर इग्लैण्ड मे एक साल और बिताना पड़ता है। मेरे परिवार के लोग मेरे इग्लैण्ड मे इतने दिनो तक रहने के कारण ऊब गये थे और चाहते थे कि मै जल्दी से घर लौट आऊ। पिताजी पर एक बात का और भी असर पड़ा; और वह यह थी कि अगर मै आई० सी० एस० हो जाता तो मुझे घर से दूर-दूर जगहों मे रहना पड़ता। पिताजी और मा दोनों ही यह चाहते थे कि इतने दिनों तक अलग रहने के बाद मै उनके पास ही रहू। बस, पासा पुश्तैनी पेशे के यानी वकालत के पक्ष मे पड़ा और मै इनर टैम्पिल मे भरती हो गया।

१९१० मे अपनी डिग्री लेने के वाद मै केम्ब्रिज से चला आया। ट्राइपस के इम्तिहान मे मुझे मामूली सफलता मिली—दूसरे दर्जे मे सम्मान के साथ पास हुआ। अगले दो साल मै लन्दन के इधर-उधर घूमता रहा। मेरी कानून की पढाई मे बहुत समय नही लगता था और बैरिस्टरी के एक के वात दूसरे इम्तिहान मे मै पास होता रहा। हां, उसमे मुझे न तो सम्मान मिला, न अपमान। वाकी वक्त मैंने यों ही बिताया।

छुट्टियो मे मैने कभी-कभी यूरोप के भिन्न-भिन्न देशो की भी सैर की। १९०९ की गरमी मे जव काउन्ट जैपलिन अपने नये हवाई जहाज मे कौन्स्टैन्स झील पर फ्रीडरिश शैफिन से उडकर बर्लिन आये, तब मै और पिताजी दोनों वही थे।

कोई दो महीने वाद हमने पैरिस मे वह हवाई जहाज देखा

जो उस शहर पर पहले-पहल उडा और जिसने एफिल टावर के पहले-पहल चक्कर लगाये ।

१९१० मे केम्ब्रिज से अपनी डिग्री लेने के बाद फौरन ही जब मै सैर-सपाटे के लिए नार्वे गया था। वहा एक दुर्घटना से बाल-बाल बच गया। हम लोग पहाडी प्रदेश मे पैदल घूम रहे थे। बुरी तरह थके हुए, एक छोटे-से होटल मे अपने मुकाम पर पहुचे और गरमी के कारण नहाने की इच्छा प्रकट की । वहा ऐसी बात पहले किसीने न सुनी थी। होटल मे नहाने के लिए कोई इन्तजाम न था लेकिन हमको यह बता दिया गया कि हम लोग पास की एक नदी मे नहा सकते है । अत छोटे-छोटे तौलियो से, जो होटलवालो ने हमे उदारतापूर्वक दिये थे, सुसज्जित होकर हममे से दो—एक मै और एक नौजवान अग्रेज—पडोस के हिम-सरोवर से निकलती और दहाडती हुई तूफानी धारा मे जा पहुचे। मै पानी मे घुस गया। वह गहरा तो न था लेकिन ठडा इतना था कि हाथ-पाव जमे जाते थे और उसकी जमीन बडी रपटीली थी। मै रपटकर गिर गया। बरफ की तरह ठडे पानी से मेरे हाथ-पैर निर्जीव हो गये। मेरा शरीर और सारे अवयव सुन्न पड गये और पैर जम न सके। तूफानी धारा मुझे तेजी से बहाये ले जा रही थी, परन्तु मेरे अग्रेज साथी ने किसी तरह बाहर निकलकर मेरे साथ भागना शुरू किया और अन्त मे मेरा पैर पकडने मे कामयाब होकर उसने मुझे बाहर खीच लिया। इसके बाद हमे मालूम हुआ कि हम कितने बडे खतरे मे थे, क्योकि हमसे दो-तीन सौ गज की दूरी पर यह पहाड़ी धारा एक विशाल चट्टान के नीचे गिरती थी और वह जल-प्रपात उस जगह की एक दर्शनीय चीज थी।

१९१२ की गर्मी मे मैंने बैरिस्टरी पास कर ली और उसी शरद ऋतु मे मै, कोई सात साल से ज्यादा इग्लैंड मे रहने के बाद, आखिर को हिंदुस्तान लौट आया। इस बीच छुट्टी के

दिनो मे दो बार घर गया था। परन्तु अब मै हमेशा के लिए लौटा। और मुझे लगा कि जब मै बम्बई मे उतरा तो अपने पास कुछ न होते हुए भी अपने बड़प्पन का अभिमान लेकर उतरा था।

: ६ :

देश लौटने पर

१९१२ के अखीर मे राजनैतिक दृष्टि से हिन्दुस्तान बहुत फीका मालूम होता था। तिलक जेल मे थे, गरम दल वाले दबा दिये गए थे। किसी प्रभावशाली नेता के न होने से वे चुपचाप पड़े हुए थे। बग-भग दूर होने पर बगाल मे शाति हो गई थी और सरकार को कौसिलो की मिण्टो-मार्ले योजना के अनुसार माडरेटो को अपनी ओर करने मे कामयाबी मिल गई थी। प्रवासी भारतवासियों की समस्या मे खासतौर पर दक्षिण अफ्रीका मे रहनेवाले भारतीयो की दशा के बारे मे, कुछ दिलचस्पी जरूर ली जाती थी। काग्रेस माडरेटों के हाथ मे थी।

१९१२ की बडे दिनो की छुट्टियों मे मै डेलीगेट की हैसियत से बाकीपुर की काग्रेस मे शामिल हुआ। गोखले, जो हाल ही अफ्रीका से लौटकर आये थे, उसमे उपस्थित थे। उस अधिवेशन के प्रमुख व्यक्ति वही थे। मुझपर उनका अच्छा प्रभाव पडा।

मै हाईकोर्ट मे वकालत करने लगा। कुछ हद तक मुझे अपने काम मे दिलचस्पी आने लगी। यूरोप से लौटने के वाद शुरू-शुरू के महीने बड़े आनन्द के थे। मुझे घर आने और वहां आकर पुरानी मेल-मुलाकाते कायम कर लेने से खुशी हुई। परन्तु धीरे-धीरे अपनी तरह के अधिकाश लोगों के साथ जिस तरह की जिन्दगी वितानी पड़ती थी, उसकी सव ताजगी गायव

होने लगी और मै यह महसूस करने लगा कि मैं बेकार और उद्देश्यहीन जीवन की नीरस खानापूरी मे ही फस रहा हूं। मै समझता हूं कि मेरी दोगली, कम-से-कम खिचड़ी, शिक्षा इस बात के लिए जिम्मेदार थी कि मेरे मन मे अपनी परिस्थितियो से असतोष था। इग्लैड की अपनी सात बरस की जिन्दगी मे मेरी जो आदते और जो भावनाए बन गई थी, वे, जिन चीजों को मै यहा देखता था, उनसे मेल नही खाती थी। तकदीर से मेरे घर का वायु-मडल बहुत अनुकूल था और उससे कुछ शाति भी मिलती थी, परन्तु उतना काफी न था। उसके बाद तो वही बार-लाइब्रेरी, वही क्लब और दोनो मे वही साथी, जो उन्ही पुराने विषयो पर (आमतौर पर कानूनी पेशे-सम्बन्धी बातो पर) ही बार-बार बाते करते थे। निस्सदेह यह वायु-मडल ऐसा न था, जिससे बुद्धि को कुछ गति या स्फूर्ति मिले और मेरे मन मे जीवन के प्रति बिलकुल नीरसपन का भाव घर करने लगा। कहने योग्य विनोद या प्रमोद की बाते भी न थी।

अपने वकालत के पेशे मे मुझे पूरा उत्साह नही था। राजनीति के मानी मेरे मन मे ये थे कि विदेशी शासन के खिलाफ उग्र राष्ट्रीय आन्दोलन हो। लेकिन उस समय की राजनीति मे इसके लिए कोई गुजाइश नही थी। मै काग्रेस मे शरीक हो गया और उसकी बैठको मे जाता रहता। फिजी मे हिदुस्तानी मजदूरों के लिए शर्तबन्दी कुली-प्रथा के खिलाफ या दक्षिण अफ्रीका मे प्रवासी भारतीयो के साथ दुर्व्यवहार किये जाने के खिलाफ या ऐसे ही कोई खास मौको पर जब कभी कोई आन्दोलन उठ खडा होता तो मै अपनी पूरी ताकत से उसमे जुटकर खूब मेहनत करता। लेकिन ये काम तो सिर्फ कुछ समय के लिए ही होते थे।

शिकार-जैसे दूसरे कामों मे मैने अपना जी बहलाना चाहा; लेकिन उसकी तरफ भी मेरा खास लगाव या झुकाव न था। बाहर

जाना और जगल मे घूमना तो मुझे अच्छा लगता था, किंतु इस बात की ओर मै कम ध्यान देता कि कोई जानवर मारू। सच बात तो यह है कि मै जानवरो को मारने के लिए कभी मशहूर नही हुआ, हालाकि एक दिन कश्मीर मे थोडे-बहुत इत्तिफाक से ही एक रीछ के मारने मे मुझे कामयाबी मिल गई थी। शिकार के लिए मेरे मन मे जो थोड़ा-बहुत उत्साह था, वह भी एक छोटे-से बारहसिगे के साथ जो घटना हुई उससे ठडा पड़ गया। यह छोटा-सा निर्दोष अहिसक पशु चोट से मरकर मेरे पैरों पर गिर पड़ा और अपनी आसूभरी बड़ी-बड़ी आंखों से मेरी तरफ देखने लगा। तबसे उन आखों की मुझे अक्सर याद आ जाती है।

उन शुरू के सालों मे श्री गोखले की भारत-सेवक समिति की ओर भी मेरा खिचाव हुआ था। मैंने उसमे शामिल होने की बात तो कभी नही सोची। कुछ तो इसलिए कि उनकी राजनीति मेरे लिए बहुत ही नरम थी, और कुछ इसलिए कि उन दिनों अपना पेशा छोड़ने का मेरा कोई इरादा न था। परन्तु समिति के मेम्बरो के लिए मेरे दिल मे बडी इज्जत थी, क्योकि उन्होंने निर्वाह-मात्र पर अपने को स्वदेश की सेवा मे लगा दिया था। मैंने दिल मे कहा कि कम-से-कम यह एक समिति ऐसी है, जिसके लोग एकाग्र चित्त होकर लगातार काम करते है, फिर चाहे वह काम सोलहो आने ठीक दिशा मे भले ही न हो।

विश्व-व्यापी महायुद्ध शुरू हुआ और उसमे हमारा ध्यान लग गया, हालाकि वह हमसे बहुत दूर हो रहा था। शुरू मे उसका हमारे जीवन पर ऐसा ज्यादा प्रभाव नही पड़ा और हिदुस्तान ने तो उसकी बीभत्सता के पूरे स्वरूप का अनुभव भी नही किया। राजनीति के बरसाती नाले बहते और लोप हो जाते थे। "ब्रिटिश डिफेस आफ रिएलम एक्ट" की तरह जो "भारत-रक्षा कानून" बना था, देश को वह जोर से जकडे हुए

था। लड़ाई के दूसरे साल से ही षड्यन्त्रों और गोलियो से उडाये जाने की ख़बरे आने लगी। उधर पजाब मे रगरूटो की जवरन भरती की खबरे भी सुनाई देती थी।

धीरे-धीरे राजनैतिक जीवन फिर बढने लगा। लोकमान्य तिलक जेल से बाहर आ गये, और उन्होने तथा मिसेज बेसेण्ट ने होमरूल लीगे कायम की। मै दोनो लीगो मे शामिल हुआ। लेकिन काम मैने खासतौर पर मिसेज बेसेण्ट की लीग के लिए ही किया। हिंदुस्तान के राजनैतिक मच पर मिसेज बेसेण्ट दिनो-दिन अधिक भाग लेने लगी। काग्रेस के वार्षिक अधिवेशनो मे कुछ अधिक जोश भर गया और मुस्लिम लीग काग्रेस के साथ साथ चलने लगी। वायु-मडल मे बिजली-सी दौड़ गई और हम-जैसे अधिकाश नवयुवको के दिल फडकने लगे। निकट भविष्य मे हम बडी-बड़ी बाते होने की उम्मीदे करने लगे। मिसेज बेसेण्ट की नजरबन्दी से पढे-लिखे लोगों मे बहुत उत्तेजना बढी और उसने देश भर मे होमरूल-आन्दोलन मे जान डाल दी। होमरूल लीगो मे न सिर्फ वे पुराने गरम दल वाले ही शामिल हुए जो १९०७ से काग्रेस से अलग हो गये थे, बल्कि मध्यम श्रेणी के लोगों मे से नये कार्यकर्त्ता भी आये, लेकिन आम जनता को इन लोगो ने छुआ तक नही।

मिसेज बेसेण्ट की नजरबन्दी का नतीजा यह हुआ कि पिताजी तथा दूसरे माडरेट लीडर होम-रूल लीग मे शामिल हो गये। कुछ महीने वाद ज्यादातर माडरेट नेताओ ने लीग से इस्तीफा दे दिया। पिताजी उसके मेम्बर बने रहे और उसकी इलाहाबाद-शाखा के सभापति भी बन गये।

: ७ :

मेरा पहला भाषण

लड़ाई के शुरू के सालों मे मेरे अपने राजनैतिक और

सार्वजनिक कार्य साधारण ही थे और मै आम सभाओ मे व्याख्यान देने से बचा रहा। अभी तक मुझे जनता मे व्याख्यान देने मे डर व झिझक मालूम होती थी। कुछ हद तक इसकी वजह यह भी थी कि मै यह महसूस करता था कि सार्वजनिक व्याख्यान अग्रेजी मे तो होने नही चाहिए और हिदुस्तानी मे देर तक बोलने की अपनी योग्यता मे मुझे सदेह था। मुझे वह छोटी-सी घटना याद है, जो उस समय हुई जब मुझे इस बात के लिए मजबूर कर दिया गया कि मै पहले-पहल इलाहाबाद मे सार्वजनिक भाषण दू। सम्भवत यह १९१५ मे हुआ। तारीख के बारे मे मै ठीक-ठीक नही कह सकता। इसके अलावा पहले क्या हुआ और फिर क्या, यह तरतीब भी मुझे साफ-साफ याद नही है। प्रेस का मुह बन्द करने वाले एक कानून के विरोध मे सभा होने वाली थी और उसमे मुझे यह मौका मिला था। मै बहुत थोडा बोला, सो भी अग्रेजी मे। ज्योही मीटिंग खत्म हुई, मुझे इस बात से बडी सकुच हुई कि डाक्टर तेजबहादुर सप्रू ने मच पर पब्लिक के सामने मुझे छाती से लगाकर प्यार से चूमा। मैने जो कुछ या जिस तरह कहा उसपर वह खुश हुए हो सो बात नही, बल्कि उनकी इस बेहद खुशी का सबब सिर्फ यह था कि मैने आम सभा मे व्याख्यान दिया और इस तरह सार्वजनिक कार्य के लिए एक नया रगरूट मिल गया। उन दिनो सार्वजनिक काम दरअसल केवल व्याख्यान देना ही था।

उस जमाने मे घर मे राजनैतिक सवाल चर्चा और बहस के लिए शान्तिमय विषय नही था। उसकी चर्चा अक्सर होती थी, लेकिन चर्चा होते ही तनातनी होने लगती थी। गरम दल की तरफ जो मेरा झुकाव था, उसे पिताजी बड़े गौर से देख रहे थे; खास तौर पर बातूनी राजनीति के बारे मे मेरी नुक्ताचीनियों को और कार्य के लिए की जानेवाली मेरी आग्रहपूर्ण माग को। मुझे भी यह बात साफ-साफ नही दिखाई देती थी कि क्या काम होना चाहिए और पिताजी कभी-कभी खयाल करते थे कि मै

थी। उस साल गरमी मे हमने कुछ महीने कश्मीर मे बिताए। मैंने अपने परिवार को तो श्रीनगर की घाटी मे छोड दिया और अपने एक चचेरे भाई के साथ कई हफ्ते तक पहाडो मे घूमता रहा, तथा लद्दाख रोड तक बढता चला गया।

ससार के उच्च प्रदेश मे उन सकडी और निर्जन घाटियो मे, जो तिब्बत के मैदान की तरफ ले जाती है, घूमने का यह मेरा पहला अनुभव था। जोजी-ला घाटी की चोटी से हमने देखा तो हमारी एक तरफ नीचे की ओर पहाडो की घनी हरियाली थी और दूसरी तरफ खाली कडी चट्टान। हम उस घाटी की सकडी तह के ऊपर चढते चले गये, जिसके दोनो ओर पहाड़ है। एक तरफ बर्फ से ढकी हुई चोटिया चमक रही थी और उनमे से छोटे-छोटे ग्लेशियर—हिमसरोवर—हमसे मिलने के लिए, नीचे को रेग रहे थे। हवा ठडी और कटीली थी, लेकिन दिन मे धूप अच्छी पडती थी और हवा इतनी साफ थी कि अक्सर हमे चीजो की दूरी के बारे मे भ्रम हो जाता था। वे दरअसल जितनी दूर होती थी, हम उन्हे उससे बहुत कम दूर समझते थे। धीरे-धीरे सूनापन बढता गया, पेडो और वनस्पतियो तक ने हमारा साथ छोड दिया—सिर्फ नगी चट्टान और बरफ और पाला और कभी-कभी कुछ सुन्दर फूल रह गए। फिर भी प्रकृति के इन जगली और सुनसान स्थानो मे मुझे अजीव सन्तोप मिला। मेरे उत्साह और उमग का ठिकाना न था।

इस यात्रा मे मुझे एक बडा दिल को कपा देनेवाला अनुभव हुआ। जोजी-ला घाटी से आगे सफर करते हुए एक जगह, जो मेरे खयाल मे मटायन कहलाती थी, हमसे कहा गया कि अमरनाथ की गुफा यहा से सिर्फ आठ मील दूर है। यह ठीक था कि बीच मे बुरी तरह हिम से ढका हुआ एक बडा पहाड़ पडता था, जिसे पार करना था। लेकिन उससे क्या? आठ मील होते ही क्या है? जोश खूब था और तजुरबे नदारद। हमने अपने डेरे-

तबू, जो ग्यारह हजार पाच सौ फुट की ऊचाई पर थे, छोड दिये और एक छोटे-से दल के साथ पहाड पर चढने लगे। रास्ता दिखाने के लिए हमारे साथ यहा का एक गडरिया था।

हम लोगो ने रस्सियो की साकल मे एक दूसरे से बधे हुए कई बरफीली-नदियो को पार किया। हमारी मुश्किले बढती गई तथा सास लेने मे भी कठिनाई मालूम होने लगी। हमारे कुछ सामान उठानेवालो के मुह से खून निकलने लगा, हालाकि उनपर बहुत बोझ नही था। इधर बरफ पड़ने लगी और वर्फीली नदिया भयानक रूप से रपटीली हो गई। हम लोग बुरी तरह थक गये और एक-एक कदम आगे बढने के लिए बहुत कोशिश करनी पडती थी। लेकिन फिर भी हम यह मूर्खता करते ही गए। हमने अपना खीमा सुबह चार वजे छोड़ा था और वारह घटे तक लगातार चढते रहने के वाद एक सुविशाल हिम-सरोवर देखने का पुरस्कार मिला। यह दृश्य वहुत ही सुन्दर था। उसके चारो ओर बर्फ से ढकी हुई पर्वत-चोटिया थी, मानो देवताओ का मुकुट अथवा अर्द्धचद्र हो? परन्तु ताजा वर्फ और कुहरे ने शीघ्र ही इस दृश्य को हमारी आखो से ओझल कर दिया। पता नही कि हम कितनी ऊचाई पर थे, लेकिन मेरा ख़याल है कि हम लोग कोई पन्द्रह-सोलह हजार फुट ऊंचाई पर जरूर होगे, क्योकि हम अमरनाथ की गुफा से वहुत ऊचे थे। अव हमे इस हिम-सरोवर को, जो सम्भवत आध मील लम्वा होगा, पार करके दूसरी तरफ नीचे गुफा को जाना था। हम लोगो ने सोचा कि चढाई खत्म होने से हमारी मुश्किले भी खत्म हो गई होगी, इसलिए वहुत थके होने पर भी हम लोगो ने हंसते हुए यात्रा की यह मजिल भी तय करनी शुरू की। इसमे वडा धोखा था, क्योकि वहा दरारे वहुत-सी थी और ताजी गिरनेवाली वरफ खतरनाक दरारो को ढक देती थी। इस नये वर्फ ने ही मेरा करीव-करीव खात्मा कर दिया होता, क्योकि मैने ज्योही उसके ऊपर पैर रखा, वह नीचे को खिसक गई और मै धम्म से मुह वाये हुए एक विशाल

दरार मे जा गिरा। यह दरार बहुत बड़ी थी और कोई भी चीज उसमे बिलकुल नीचे पहुंचकर हजारों वर्ष बाद तक भूगर्भशास्त्रियो की खोज के लिए इतमीनान के साथ सुरक्षित रह सकती थी। लेकिन मेरे हाथ से रस्सी नही छूटी और मै दरार की बाजू को पकड़े रहा और ऊपर खीच लिया गया। इस घटना से हम लोगो के होश तो ढीले हो गये थे, फिर भी हम लोग आगे चलते गये। लेकिन दरारो की तादाद और उनकी चौडाई आगे जाकर और भी बढ़ गई। इनमे से कुछ को पार करने के कोई साधन भी हमारे पास न थे, इसलिए अन्त मे हम लोग थके-मादे हताश ही लौट आये और इस प्रकार अमरनाथ की गुफा अनदेखी ही रह गई।

: ९ :

गांधीजी मैदान में

यूरोपीयन महायुद्ध के अन्त मे हिंदुस्तान मे एक दवा हुआ जोश फैला हुआ था। कल-कारखाने जगह-जगह खडे हो गये थे और पूजीवादी वर्ग धन और सत्ता मे वढ गया था। चोटी पर के मुट्ठीभर लोग मालामाल हो गये थे और उनके जी इस वात के लिए ललचा रहे थे कि वचत की इस दौलत को और भी वढाने के लिए सत्ता और मौके मिले। मगर आम लोग इतने खुशकिस्मत न थे और वे उस वोझ को कम करने की टोह मे थे कि जिसके तले वे कुचले जा रहे थे। मध्यम वर्ग के लोगों मे यह आशा फैल रही थी कि अव शासन-सुधार होगे ही, जिनसे स्वराज के कुछ अधिकार मिलेगे और उनके द्वारा उन्हे अपनी वढती के नये रास्ते मिलेगे। राजनैतिक आन्दोलन, जोकि शान्तिमय और विलकुल वैध था, कामयाव होता हुआ दिखाई देता था और लोग विश्वास के साथ आत्मनिर्णय, स्वशासन और स्वराज की वाते करते थे। इस अशान्ति के कुछ चिह्न जनता मे भी, और खासकर किसानो मे, दिखाई पडते थे।

पजाब के देहाती इलाको मे जबरदस्ती रंगरूट भरती करने की दु खदाई बाते लोग अभी तक बुरी तरह याद करते थे और कोमागाटा-मारू वाले दूसरे लोगो पर षड्यत्र के मुकदमे चलाकर जो दमन किया गया था उसने उनकी चारो ओर फैली हुई नाराजगी को और भी बढा दिया। जगह-जगह लडाई के मैदानों से जो सिपाही लौटे थे वे अब पहले जैसे 'जो हुकुम' नही रह गये थे। उनकी जानकारी और अनुभव बढ़ गया था और उनमे भी बहुत अशान्ति थी।

मुसलमानों मे भी, तुर्किस्तान और खिलाफत के मसले पर अख्तियार किये गये रुख पर, गुस्सा बढ रहा था और आन्दोलन तेज हो रहा था। देश भर मे प्रतीक्षा और आशा की हवा जोरो पर थी; लेकिन उस आशा मे चिन्ता और भय समाये हुए थे। इसके बाद रौलट-बिलो का दौर हुआ, जिसमे कानूनी कार्रवाई के बिना भी गिरफ्तार करने और सजा देने की धाराए रखी गई थी। सारे हिदुस्तान मे चारो ओर उठे हुए क्रोध की लहर ने उनका स्वागत किया, यहा तक कि माडरेट लोगो ने भी अपनी पूरी ताकत से उनका विरोध किया। सच तो यह है कि हिदुस्तान के सब विचार और दल के लोगो ने एक स्वर से उनका विरोध किया था। फिर भी सरकारी अफसरों ने उनको कानून बनवा ही डाला और खास रिआयत केवल इतनी की गई कि उनकी मियाद महज तीन वर्ष की रख दी गई!

रौलट-कानून बन तो गया, मगर जहा तक मै जानता हूं, अपनी तीन वर्ष की जिन्दगी मे वह कभी काम मे नही लाया गया, हालाकि वे तीन साल शान्ति के नही, ऐसे उपद्रव के साल थे, जो १८५७ के गदर के बाद हिदुस्तान ने पहले-पहल देखे थे। इस तरह ब्रिटिश सरकार ने लोकमत के घोर विरोधी हुते हुए एक ऐसा कानून बनाया, जिसका उसने कुछ उपयोग भी नही

किया लेकिन बदले मे एक तूफान पैदा कर लिया। इससे बहुत-कुछ यह खयाल किया जा सकता है कि इस कानून को बनाने का उद्देश्य सिर्फ खलबली मचाना था !

१९१९ के शुरू मे गाधीजी एक सख्त बीमारी से उठे थे। रोग-शैया से उठते ही उन्होने वाइसराय से प्रार्थना की थी कि वह इस बिल को कानून न बनने दे। इस अपील की उन्होने दूसरी अपीलों की तरह कोई परवाह न की और उस हालत मे, गाधीजी को अपनी तबीयत के खिलाफ इस आन्दोलन का अगुआ बनना पड़ा, जो उनके जीवन मे पहला भारत-व्यापी आन्दोलन था। उन्होने सत्याग्रह-सभा शुरू की, जिसके मेम्बरो से यह प्रतिज्ञा कराई गई थीं कि उनपर लागू किये गये जाने पर वे रौलट-कानून को न मानेगे। दूसरे शब्दो मे उन्हे खुल्लमखुला और जान-बूझकर जेल जाने की तैयारी करनी थी।

जब मैने अखबारों मे यह खबर पढी तो मुझे बडा सन्तोष हुआ। आखिर इस उलझन से एक रास्ता मिला तो ? वार करने के लिए एक हथियार तो मिला जो सीधा, खुला और बहुत करके राम-बाण था। मेरे उत्साह का पार न रहा और मै फौरन ही सत्याग्रह-सभा मे सम्मिलित होना चाहता था। लेकिन मैने उसके नतीजे पर—कानून तोडना, जेल जाना वगैरा पर—शायद ही गौर किया हो, और अगर मैने गौर किया भी होता तो मुझे उनकी परवा न होती। मगर एकाएक मेरे सारे उत्साह पर पाला पड़ गया और मैने समझ लिया कि मेरा रास्ता आसान नही है, क्योकि पिताजी इस नए विचार के घोर विरोधी थे। वह नये-नये प्रस्तावो के बहाव मे वह जानेवाले न थे। कोई नया कदम आगे बढाने के पहले वह उसके नतीजे को बहुत अच्छी तरह सोच लिया करते थे और जितना ही ज्यादा उन्होने सत्याग्रह के प्रश्न और उसके प्रोग्राम के बारे मे सोचा, उतना ही कम वह उन्हे जंचा। उन्हे यह बात बहुत बेहूदा मालूम देती थी कि

मै जेल जाऊ। जेल जाने का सिलसिला अभी शुरू नही हुआ था, पर यह खयाल ही उनको बहुत नागवार मालूम होता था। पिताजी अपने बच्चो से बहुत ही मुहब्बत रखते थे। यद्यपि वह प्रेम का दिखावा नही करते थे तो भी उनके अन्दर प्रेम बहुत छिपा रहता था।

बहुत दिनों तक मानसिक सघर्ष चलता रहा और चूकि हम दोनो जानते थे कि यह बडी-बडी बाजियां लगाने का सवाल है, जिसमे हमारे सारे जीवन मे बडी उथल-पुथल होने की संभावना है, दोनो ने इस बात की कोशिश की कि जहा तक हो सके एक-दूसरे की भावनाओं का खयाल रखे। मै चाहता था कि जहां तक हो सके कोशिश करू कि उनको तकलीफ न हो। मगर मुझे अपने दिल मे यकीन हो गया था कि मुझे जाना तो सत्याग्रह के ही रास्ते है। हम दोनो के लिए वह मुसीबत का समय था और कई राते मैने अकेले बडी चिन्ता और बेचैनी मे काटी। बाद को मुझे मालूम हुआ कि पिताजी रात को सचमुच फर्श पर सोने लगे। वह खुद यह अनुभव कर लेना चाहते थे कि जेल मे जमीन पर सोया जा सकेगा या नही।

पिताजी ने गांधीजी को बुलाया और वह इलाहाबाद आये। दोनो की बडी देर तक बाते होती रही। उस समय मै मौजूद न था। इसका नतीजा यह हुआ कि गांधीजी ने मुझे सलाह दी कि जल्दी न करो और ऐसा काम न करो जो पिताजी को असह्य हो। मुझे इससे दु ख ही हुआ; मगर उसी समय देश मे ऐसी घटनाएं घट गई जिनसे सारी हालत ही बदल गई और सत्याग्रह-सभा ने अपनी कार्रवाई बन्द कर दी।

सत्याग्रह-दिवस—सारे हिन्दुस्तान मे हडताले और तमाम काम-काज बन्द—दिल्ली, अमृतसर और अहमदाबाद मे पुलिस और फ़ौज का गोली चलाना और बहुत-से आदमियो का मारा जाना—अमृतसर और अहमदाबाद मे भीड के द्वारा हिसा-काड

हो जाना—जलियावाला-बाग का हत्याकाण्ड—पजाब में फौजी कानून के भीषण, अपमानजनक और दिल दहलाने वाले कारनामे। पजाब मानो दूसरे प्रातो से अलग काट दिया गया हो, उसपर मानो एक दुहेरा परदा पड़ गया था, जिससे बाहरी दुनिया की आखे उसतक नही पहुच पाती थी। वहा से मुश्किल से कोई खबर मिलती थी और कोई न वहा जा सकता था, न वहा से आ ही सकता था।

कोई इक्का-दुक्का, जो किसी तरह उस नरक-कुड से बाहर आ पहुंचता था, इतना भयभीत होता था कि साफ-साफ हाल नही बता सकता था। हम लोग जो बाहर थे, असहाय और असमर्थ थे; छोटी-बडी खबर का इन्तजार करते रहते थे और हमारे दिल मे कटुता भरती जा रही थी। हममे से कुछ लोग फौजी कानून की परवा न करके खुल्लमखुल्ला पजाब के उन हिस्सो मे जाना चाहते थे, लेकिन हमे ऐसा नही करने दिया गया। इसी बीच काग्रेस की तरफ से दुखियो और पीडितो को सहायता पहुचाने तथा जाच करने के लिए एक बड़ा सगठन बनाया गया।

ज्योही खास-खास जगहो से फौजी कानून वापस लिया गया और बाहर वालो को जाने की छुट्टी मिली, मुख्य-मुख्य काग्रेसी और दूसरे लोग पंजाब मे जा पहुंचे और सहायता तथा जाच के काम मे अपनी सेवाए देने लगे। पीडितो की सहायता का काम मुख्यत पडित मदनमोहन मालवीय और स्वामी श्रद्धानन्दजी की देखभाल मे होता था और जांच का काम मुख्यत पिताजी और देशबन्धुदास की देख-रेख मे। गाधीजी उसमे बहुत दिलचस्पी ले रहे थे और दूसरे लोग अक्सर उनसे सलाह-मशवरा लिया करते थे। देशबन्धुदास ने अमृतसर का हिस्सा खास-तौर पर अपनी तरफ लिया था और वहा मै उनके साथ उनकी सहायता के लिए तैनात किया गया था। मुझे उनके साथ और उनके नीचे काम करने का वह पहला मौका था। वह अनुभव मेरे लिए बड़ा कीमती

था और इससे उनके प्रति मेरा आदर बढा। जलियावाला-बाग से और उस भयकर गली से, जिसमे लोगो को पेट के बल रेगाया गया था, सबध रखनेवाले बयान, जो बाद को काग्रेस-जाच-रिपोर्ट मे छपे थे, हमारे सामने लिये गए थे।

उस साल (१९१९) के अखीर मे मै अमृतसर से देहली को रात की गाडी से रवाना हुआ था। जिस डिब्बे मे मै चढा, उसकी तमाम जगहे भरी हुई थी, सिर्फ ऊपर एक बर्थ खाली थी। सब मुसाफिर सो रहे थे। मैने वह खाली बर्थ ले ली। दूसरे दिन सुबह मुझे मालूम हुआ कि वे तमाम मुसाफिर फौजी अफसर थे। वे आपस मे जोर-जोर से बाते कर रहे थे, जो मेरे कानो तक आ ही पहुचती थी। उनमे से एक बड़ी तेजी के साथ, मगर विजय के घमड मे बोल रहा था और फौरन ही मै समझ गया कि यह वही जलियावाला-बाग के 'बहादुर' मि० डायर है। वह अपने अमृतसर के अनुभव सुना रहा था। उसने बताया कि कैसे सारा शहर उसकी दया के भरोसे हो रहा था। उसने सोचा, एक बार इस सारे बागी शहर को खाक मे मिला दू। मगर कहा, फिर मुझे रहम आ गया और मै रुक गया। हण्टर-कमेटी मे अपना बयान देकर वह लाहौर से वापस आ रहा था। उसकी बातचीत और उसकी सगदिली को देखकर मेरे दिल को बड़ा धक्का लगा—वह देहली स्टेशन पर उतरा तो गहरी गुलाबी धारियो वाला पायजामा और ड्रेसिग-गाउन पहने हुए था।

पजाब-जाच के जमाने मे मुझे गाधीजी को बहुत-कुछ समझने का मौका मिला। बहुत बार उनके प्रस्ताव कमेटी को अजीब मालूम होते थे और कमिटी उन्हे पसन्द नही करती थी। मगर करीब-करीब हमेशा अपनी दलीलो से कमेटी को वह समझा लिया करते थे और कमेटी उन्हे मजूर कर लिया करती थी। बाद की घटनाओ से मालूम हुआ कि उनकी सलाह मे दूरदेशी थी। तबसे उनकी राजनैतिक अतर्दृष्टि मे मेरी श्रद्धा

बढती गई।

पजाब की दुर्घटनाओ और उनकी जाच के कार्य का मेरे पिताजी पर जबरदस्त असर हुआ। उनकी तमाम कानूनी और वैधानिक बुनियाद उसके द्वारा हिल गई थी और उनका मन उस परिवर्तन के लिए धीरे-धीरे तैयार हो रहा था, जो एक साल बाद आनेवाला था। अपनी पुरानी माडरेट स्थिति से वह पहले ही बहुत कुछ आगे बढ चुके थे।

१९१९ के बड़े दिनो मे पिताजी अमृतसर-काग्रेस के सभापति हुए। उन्होने माडरेट नेताओ के नाम काग्रेस मे शामिल होने की एक दिल हिला देनेवाली अपील की। मगर उन्होने उसका वैसा जवाब नही दिया जैसा कि वह चाहते थे। वे लोग शामिल नही हुए। उनकी आखे उन नये सुधारों की ओर लगी हुई थी,जो माटेगू-चैम्सफोर्ड सिफारिशो के फल-स्वरूप आनेवाले थे। उनके इकार कर देने से पिताजी के दिल को बडा दु ख पहुचा और इससे उनके और माडरेटो के दिल की खाई और चौड़ी हो गई।

अमृतसर-काग्रेस पहली गाधी-काग्रेस हुई। लोकमान्य तिलक भी आये थे और उन्होने उसकी कार्रवाई मे प्रमुख भाग लिया था। मगर इसमे कुछ शक नही कि प्रतिनिधियो मे अधिकांश और इससे भी ज्यादा बाहर की भीड मे अधिकतर लोग अगुआ बनने के लिए गाधीजी की ओर देख रहे थे। हिन्दुस्तान के राजनैतिक क्षितिज मे 'महात्मा गांधी की जय' की आवाज बुलन्द हो रही थी। अली-बन्धु हाल ही मे नजरबन्दी से छूटे थे और सीधे अमृतसर-काग्रेस मे आये थे। राष्ट्रीय आन्दोलन एक नया रूप धारण कर रहा था और उसकी नई नीति निर्माण हो रही थी।

१९२० मे राजनैतिक और खिलाफत-आन्दोलन दोनो एक ही दिशा मे और एक साथ चले और काग्रेस के द्वारा गाधीजी के अहिंसात्मक असहयोग के मंजूर कर लिये जाने पर आखिर दोनों एक साथ मिल गए। पहले खिलाफत-कमेटी ने उस कार्यक्रम को

अपनाया और १ अगस्त को लडाई जारी करने का दिन मुकर्रर हुआ।

: १० :

मेरा निर्वासन और किसानों में भ्रमण

१९२० मे मुझे इस बात का बिलकुल पता न था कि कारखानो मे या खेतो मे काम करने वाले मजदूरो की हालत क्या है और मेरा राजनैतिक दृष्टिकोण बिलकुल मध्यम वर्ग के जैसा था। फिर भी मै इतना जरूर जानता था कि उनमे गरीबी बहुत है और उनके दु ख भयकर है। मै सोचता था कि राजनैतिक दृष्टि से हिन्दुस्तान आजाद हो जाय तो उसका पहला लक्ष्य यह होगा कि इस गरीबी के मसले को हल करे। मगर मुझे सबसे पहली सीढी तो राजनैतिक आजादी ही दिखाई दी, जिसमे मध्यम वर्ग की प्रधानता हुए बिना नही रह सकती। गाधीजी के चम्पारन (बिहार) और खेड़ (गुजरात) के किसान-आन्दोलन के बाद किसानो के प्रश्न पर मै ज्यादा ध्यान देने लगा। फिर भी मेरा ध्यान तो १९२० मे राजनैतिक बातो मे और असहयोग के आगमन मे लग रहा था, जिसकी चर्चा से राजनैतिक वायुमडल भरा हुआ था।

उन्ही दिनों एक नई बात मे मेरी दिलचस्पी पैदा हो गई, जो आगे चलकर जीवन मे महत्त्वपूर्ण बन गई। मै स्वय प्राय. कोई इच्छा न रखते हुए, किसानो के सम्पर्क मे आ गया और सो भी एक विचित्र रीति से।

मेरी मा और कमला (मेरी पत्नी) दोनो की तन्दुरुस्ती ख़राब थी और मई १९२० के शुरू मे मै उनको मसूरी ले गया। पिताजी उस वक्त एक बड़े राज्य के मामले मे व्यस्त थे, जिसमे दूसरी ओर के वकील देशबन्धु दास थे। हम सेवाय होटल मे ठहरे

थे। उन दिनो अफगान और ब्रिटिश राज्य-प्रतिनिधियो के दर्म्यान मसूरी मे सुलह की बाते हो रही थी (यह १९१९ मे हुए छोटे अफगान-युद्ध के बाद की बात है, जबकि अमानुल्ला तख्त पर बैठा था) और अफगान प्रतिनिधि सेवाय होटल मे ठहरे हुए थे। लेकिन वे एक तरफ ही रहते थे, खाना भी अकेले खाते थे और किसी से मिलते-जुलते न थे। मुझे उनमे कोई खास दिलचस्पी नही थी और इस महीने भर मे मैने उस प्रतिनिधि-मडल के एक भी आदमी को नही देखा और अगर देखा भी हो तो मै किसी को पहचानता न था। लेकिन क्या देखता हू कि एक दिन एकाएक शाम को पुलिस-सुपरिटेडेट वहा आया और मुझे स्थानीय सरकार का खत दिखाया, जिसमे मुझसे यह वादा चाहा गया था कि मै अफगान-प्रतिनिधिमण्डल से कोई सरोकार न रक्खू। मुझे यह एक बडी अजीब बात मालूम हुई, क्योकि इस महीने भर मे मैने उन्हे कभी देखा तक नही और न मुझे उसका मौका मिल सकता था। सुपरिण्टेण्डेण्ट इस बात को जानता था, क्योकि वह प्रतिनिधि-मण्डल की हलचलों पर गौर से निगाह रखता था और वहा दरअसल खुफिया लोगो का एक खासा जमघट लगा रहता था। मगर ऐसा वादा करना मेरे मिजाज के खिलाफ था और मैने उनको ऐसा कह भी दिया। उन्होने मुझे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से, जो कि देहरादून का सुपरिण्टेण्डेण्ट था, मिलने के लिए कहा और उससे मै मिला। चूकि मै बराबर कहता रहा कि मै ऐसा वादा नही कर सकता, मुझे मसूरी से चले जाने का हुक्म मिला, जिसमे कहा गया कि मै २४ घंटे के अन्दर देहरादून जिले के बाहर चला जाऊँ। इसके मानी यही थे कि मै कुछ घटो मे ही मसूरी छोड दू। मुझे यह अच्छा तो नही लगा कि अपनी बीमार मा और पत्नी दोनो को वहा छोडकर जाऊ, लेकिन उस वक्त मुझे उस हुक्म को तोडना मुनासिब नही मालूम हुआ। उस समय सविनय भग तो था नही, इसलिए मै मसूरी से चल दिया।

मसूरी से निकाल दिये जाने के फलस्वरूप मुझे दो हफ्ते

इलाहाबाद रहना पडा और इसी अर्से मे मै किसान-आन्दोलन में जा फंसा और ज्यो-ज्यो दिन बीतते गये, त्यो-त्यो मै उसमे अधिकाधिक फसता गया, जिसने मेरे विचारो और दृष्टिकोण पर काफी असर डाला।

जून १९२० के शुरू मे, जहां तक मुझे याद है, कोई दो सौ किसान प्रतापगढ के देहात से पचास मील पैदल चलकर इलाहाबाद आये—इस इरादे से कि वे अपने दु खो और मुसीबतो की तरफ वहा के ख़ास-ख़ास राजनैतिक पुरुषो का ध्यान आकर्षित करे। बाबा रामचन्द्र नामक उनके एक अगुवा था, जो न तो वहां के रहने वाले ही थे और न खु द किसान ही। मैंने सुना कि किसानों का यह जत्था जमना के घाट पर डेरा डाले हुए है। मै कुछ मित्रों के साथ उनसे मिलने गया। उन्होने बताया कि किस तरह ताल्लुकेदार जोर-जुल्म से वसूली करते है, कैसा उनका अमानुषी व्यवहार है और कैसी उनकी असह्य हालत हो गई है। उन्होने हमसे प्रार्थना की कि हम उनके साथ चलकर उनकी हालत की जांच करे। उनको डर था कि ताल्लुकेदार उनके इलाहाबाद आने पर जरूर बहुत बिगड़ेगे और उसका बदला लिये बिना न रहेगे, इसलिए वे चाहते थे कि उनकी हिफाजत के लिए हम उनके साथ रहे। वे हमारे इकार को मानने के लिए किसी तरह तैयार न थे और सचमुच हमसे बुरी तरह चिपट गए। आख़िर मैंने उनसे वादा किया कि मै एक-दो रोज बाद जरूर आऊगा।

मै कुछ साथियो को लेकर वहा पहुंचा। कोई तीन दिन वहां हम लोग गाव मे रहे।

तीन दिन तक मै गांवों मे घूमता रहा और एक बार इलाहाबाद आकर फिर वापस गया। हम गाव-गांव घूमे—किसानों के साथ खाते, उन्हीके साथ उनके कच्चे झोपड़ो में रहते, घटों उनसे बातचीत करते और कभी-कभी छोटी-बड़ी सभाओ में व्याख्यान भी देते। शुरू में हम एक छोटी मोटर मे गये थे।

किसानों मे इतना उत्साह था कि सैकड़ो ने रात-रात भर काम करके खेतों के रास्ते कच्ची सड़क तैयार की, जिससे मोटर ठेठ दूर-दूर के गावो मे जा सके। अक्सर मोटर अड़ जाती और वीसो आदमी ख़ुशी-ख़ुशी दौड़कर उसे उठाते। आख़िर को हमे मोटर छोड़ देनी पड़ी और ज्यादातर सफर पैदल ही करना पड़ा। जहां-कही हम गये, हमारे साथ पुलिस और ख़ुफिया के लोग, और लखनऊ के डिप्टी कलेक्टर रहते थे। मै समझता हू, खेतो मे हमारे साथ दूर-दूर तक पैदल चलते हुए उनपर एक प्रकार की मुसीवत ही आ गई होगी। वे सव थक गये थे और हमसे और किसानो से विलकुल उकता उठे थे। डिप्टी कलेक्टर थे लखनऊ के एक नाजुकमिजाज नौजवान—पम्प शू पहने हुए। कभी-कभी वे हमसे कहते कि जरा धीरे चले। मै समझता हूं, आख़िर हमारे साथ चलना उन्हे कठिन हो गया और वे रास्ते मे ही कही रह गये।

जून का महीना था, जिसमे सवसे ज्यादा गर्मी पड करती है। वारिश के पहले की तपिश थी। सूरज की तेजी वदन को झुलसाये देती थी और आंखो को अन्धा वना देती थी। मुझे धूप मे चलने की विलकुल आदत न थी और इग्लैंड से लौटने के वाद हर साल गर्मियो मे मै पहाड पर चला जाया करता था, किन्तु इस वार मै दिन भर खुली धूपमे घूमता था और सिर पर धूपसे वचनेके लिए हैट भी न था। सिर्फ एक छोटा तौलिया सिर पर लपेट लिया था। दूसरी वातो मे मै इतना मशगूल था कि धूप का कुछ खयाल भी नही रहा और इलाहावाद लौटने पर जव मैने देखा तो पता चला कि मेरे चेहरे का रग कितना पक्का हो गया था। मुझे याद पड़ा कि सफर मे क्या-क्या वीती; लेकिन इस वात पर मै अपने-आप से भी खुश हुआ, क्योकि मुझे मालूम हो गया कि वड़े-वड़े मजवूत आदमियो के वरावर मै धूप को वर्दाश्त कर सका, और मै जो उससे डरता था उसकी जरूरत नही थी। मैने देख लिया है कि मै कड़ी-से-कड़ी गर्मी और कड़े-से-कड़े जाडे को वर्दाश्त कर सकता हूं। इससे मुझे अपने काम मे तथा जेल-जीवन विताने मे वड़ी

मदद मिली। इसकी वजह यह थी कि मेरा शरीर आम तौर पर मजबूत और काम करने के लायक था और मै हमेशा कसरत किया करता था। इसका सबक मैंने पिताजी से सीखा था, जो थोड़े-बहुत कसरती थे और क़रीब-करीब अपने आखिरी दिनो तक उन्होने रोजाना कसरत जारी रखी थी। उनके सिर पर चादी से सफेद बाल हो गये थे, चेहरे पर झुरिया पड़ गई थी और वह विचार करते-करते बूढे और थके-से दिखाई देते थे। मगर उनका बाकी शरीर मृत्यु के एक-दो साल पहले तक उनसे बीस बरस कम उम्र के आदमी का-सा जान पड़ता था।

जून १९२० मे प्रतापगढ जाने के पहले भी मै गावों से अक्सर गुजरता था। वहा ठहरता था और किसानो से बातचीत भी करता था। बडे-बड़े मेलो के अवसर पर गगा-किनारे हजारो देहातियो को मैंने देखा था और उनमे होमरूल का प्रचार किया था, लेकिन उस समय मै यह अच्छी तरह न जानता था कि दरअसल वे क्या है और हिन्दुस्तान के लिए उनका क्या महत्त्व है। हममे से ज्यादातर लोगों की तरह मै भी उनके बारे मे कोई विचार नही करता था। यह बात मुझे इस प्रतापगढ़ की यात्रा मे मालूम हुई और तब से हिन्दुस्तान का जो चित्र मैंने अपने दिमाग मे बना रखा है, उसमे हमेशा के लिए इस नगी-भूखी जनता का स्थान बन गया है। सम्भवत उस हवा मे एक किस्म की बिजली थी। शायद मेरा दिमाग उसका असर अपने पर पड़ने देने के लिए तैयार था और उस समय जो चित्र मैंने देखे और जो छाप मुझपर पडी, वह मेरे दिल पर हमेशा के लिए अमिट हो गई।

इन किसानो की बदौलत मेरी झेप निकल गई और मै सभाओं मे बोलना सीख गया। तबतक मै शायद ही किसी सभा मे बोला होऊं। अक्सर हमेशा हिन्दुस्तानी मे बोलने की नौबत आती थी और उसके खयाल से मै दहशत खाया करता था, लेकिन मै किसान-सभाओं मे बोलने को कैसे टाल सकता था? और इन

सीधे-सादे गरीब लोगो के सामने बोलने में झेपने की भी क्या बात थी ? मै वक्तृत्व-कला तो जानता न था। इसलिए उनके साथ एकदिल होकर बोलता और मेरे दिल और दिमाग में जो-कुछ होता था वह सब उनसे कह देता था। लोग चाहे थोड़े हो चाहे हजारो की तादाद मे हों, मै हमेशा बातचीत के या जाती ढग से ही उनके सामने बोलता, और मैने देखा कि चाहे कुछ कमी भी उसमे रह जाती हो, लेकिन मेरा काम चल जाता था। मेरे व्याख्यान मे प्रवाह काफी रहता था। मै जो-कुछ कहता था शायद उसका बहुत कुछ हिस्सा उनमे से बहुतेरे समझ नही पाते थे। मेरी भाषा और मेरे विचार इतने सरल न थे कि वे समझ सकते। बहुत लोग तो मेरा भाषण सुन ही नही पाते थे, क्योकि भीड़ तो भारी होती थी और मेरी आवाज दूर तक नही पहुच पाती थी, लेकिन जब वे किसी एक शख्स पर भरोसा और श्रद्धा कर लेते है, तब इन सब बातो की ज्यादा परवा उन्हे नही रहती।

मै अपनी मा और पत्नी से मिलने मसूरी गया तो, मगर मेरे दिमाग मे किसानों की ही बाते भरी थी और मै फिर उनमे जाने के लिए उत्सुक था। ज्योही मै मसूरी से वापस लौटा फिर गावो मे घूमने चला गया, और मैने देखा कि किसान-आन्दोलन बढता जा रहा था। उन पीडित किसानो के अन्दर एक नया आत्म-विश्वास पैदा हो रहा था। वे छाती तानकर और सिर ऊचा करके चलने लगे थे। जमीदारो के कारिन्दो और पुलिस का डर उनके दिल मे कम हो चला था। और यदि किसी का खेत बे-दखल होता था तो कोई दूसरा किसान उसे लेने के लिए आगे नही बढ़ता था। जमीदारो के नौकर जो उन्हे मारा-पीटा करते थे और कानून के खिलाफ उनसे बेगार और लाग लिया करते थे, वह कम हो गया था और जब कभी कोई ज्यादती होती तो फौरन उसकी रिपोर्ट होती और तहकीकात की कोशिश की जाती। इससे जमीदारो के कारिन्दो और पुलिस की ज्यादतियो की कुछ रोक हुई। ताल्लुकेदार घबराये और अपनी रक्षा का उपाय करने लगे और

प्रान्तीय सरकार ने अवध-काश्तकारी-कानून मे सुधार करने का वादा किया।

: ११ :

असहयोग

पजाब और खिलाफत-सम्बन्धी अन्यायो की रोज चर्चा होती थी और असहयोग, जिसके बल पर उन अन्यायो को दूर करने की कोशिश की जाने वाली थी, लोगो की जबान पर यही विषय रहता था। सब लोगो का ध्याान उसी मे लगा हुआ था। अलबत्ता शुरू मे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के बडे प्रश्न, यानी स्वराज्य पर ज्यादा जोर नही दिया जाता था। गाधीजी गोल-मोल और लम्वी-चौड़ी बातो को पसन्द नही करते थे—वह हमेशा किसी खास और निश्चित बात पर सारी ताकत लगाना ज्यादा पसन्द करते थे। फिर भी स्वराज्य की बाते वायुमडल मे और लोगो के दिमागों मे बहुत-कुछ घूमती रहती थी और जगह-जगह जो सभा-सम्मेलन होते थे, उनमे बार-बार उनका जिक्र आया करता था।

पजाब और खिलाफत के, और खासकर असहयोग के प्रश्न पर अपना निर्णय देने के लिए १९२० के सितम्वर मे कलकत्ता मे काग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। लाला लाजपतराय उसके सभापति थे, जो लम्बे अरसे तक देश से बाहर रहने के वाद हाल ही अमरीका से लौटे थे। उन्हे असहयोग की यह नई योजना ना-पसन्द थी और उन्होने उसका विरोध किया था। हिन्दुस्तान की राजनीति मे वह आमतौर पर गरम-दल के माने जाते थे, लेकिन उनकी साधारण जीवन-दृष्टि निश्चित रूप से वैध और माडरेट थी।

इस विरोध मे लाला लाजपतराय अकेले न थे। उनके साथ बड़े-बड़े और प्रभावशाली लोग भी थे। काग्रेस के करीव-करीव सभी पुराने महारथियो ने गाधीजी के असहयोग-प्रस्ताव का

विरोध किया था। देशबन्धु दास उस विरोध के अगुआ थे, इसलिए नही कि वह उसके मूल भाव को नापसन्द करते थे—वह तो उस हद तक वल्कि उससे भी आगे जाने को तैयार थे—वल्कि ख़ासकर इसलिए कि नई कौसिलो के वहिष्कार पर उन्हे ऐतराज था।

पुरानी पीढी के बडे-बड़े नेताओ मे एक मेरे पिताजी ही ऐसे थे, जिन्होने उस समय गाधीजी का साथ दिया। उनके लिए ऐसा करना हसी-खेल न था।

असहयोग के मानी होते थे उनका वकालत छोड देना, जिसके मानी होते थे उनका अपने पुराने जीवन से विलकुल नाता तोड लेना और एक विलकुल नये जीवन मे अपने को ढालना—यह कोई आसान वात नही थी, ख़ासकर उस समय जवकि कोई अपनी साठवी वर्पगांठ मनाने की तैयारी कर रहा हो। पुराने राजनैतिक साथियो से, अपने पेशे से, उस सामाजिक जीवन से जिसके वह अवतक आदी थे, सवसे ताल्लुक तोडना था और कितनी ही खर्चीली आदतो को छोड देना था, जो अवतक पडी हुई थी। फिर रुपये और खर्च-वर्च का सवाल भी कम महत्त्व का न था और यह जाहिर था कि अगर वकालत की आमदनी चली गई तो उन्हे अपने रहन-सहन का स्टैंडर्ड वहुत कम करना होगा। लेकिन उनकी वुद्धि, उनका जवरदस्त स्वाभिमान और उनका गर्व—ये सव मिलाकर उन्हे एक-एक कदम नये आन्दोलन की तरफ ही वढाते गये, यहा तक कि अन्त मे वह सोलहो आना उसमे कूद पडे।

कलकत्ता के विशेप अधिवेशन ने काग्रेस की राजनीति मे गाधीयुग शुरू किया, जो तवसे अवतक कायम है—हा, वीच मे थोड़ा-सा समय (१९२२ से १९२९ तक) जरूर ऐसा गया, जिसमे गाधीजी ने अपने-आपको पीछे रख लिया था और स्व-राज्य-पार्टी को, जिसके नेता देशवन्धु दास और मेरे पिताजी थे, अपना काम करने दिया था। तव से काग्रेस की सारी दृष्टि ही

बदल गई, विलायती कपड़े चले गये और देखते-देखते सिर्फ खादी-ही-खादी दिखाई देने लगी। काग्रेस मे नये किस्म के प्रतिनिधि दिखाई देने लगे, जो खास करके मध्यम वर्ग की निचली श्रेणी के थे। हिन्दुस्तानी, और कभी-कभी तो उस प्रान्त की भाषा जहा अधिवेशन होता था, अधिकाधिक बोली जाने लगी, क्योकि कितने ही प्रतिनिधि अग्रेजी नही जानते थे। राष्ट्रीय कामों में विदेशी भाषा का व्यवहार करने के खिलाफ भी लोगो के भाव तेजी से बढ रहे थे और काग्रेस की सभाओ मे साफ तौर पर एक नई जिन्दगी, नया जोश और सचाई दिखाई देती थी।

अगले तीन मास मे देश भर में असहयोग की लहर बढती चली गई। नई कौसिलो का बहिष्कार करने की जो अपील की गई थी उसमे आश्चर्यजनक सफलता मिली। यह बात नही कि सभी लोग वहा जाने से रुक गये या रुक सकते थे और इस तरह तमाम सीटे खाली रखी जा सकती थी, बल्कि मुट्ठी भर वोटर भी चुनाव कर सकते थे और अविरोध चुनाव भी हो सकता था। लेकिन हा, यह सच है कि अधिकांश वोटर (मतदाता) वोट देने नही गये और वे सब उम्मीदवार जिन्हे देश की पुकार का खयाल था, कौसिलो के लिए खड़े नही हुए।

यद्यपि देशबन्धु दास तथा दूसरे लोगों ने कलकत्ता-अधिवेशन मे बहिष्कार की उपयोगिता पर सन्देह प्रकट किया था तो भी आखीर को उन्होंने काग्रेस के फैसले को माना। चुनाव होजाने के वाद मतभेद भी दूर हो गया और नागपुर-कांग्रेस (१९२०) में फिर वहुत से पुराने कांग्रेसी नेता असहयोग के मच पर आकर मिल गये। उस आन्दोलन की कामयाबी ने वहुतेरे डावाडोल और सन्देह रखने वालो को कायल कर दिया था।

फिर भी, कलकत्ता के वाद कुछ पुराने नेता काग्रेस से पीछे हट गए, जिनमे एक मशहूर और लोकप्रिय नेता थे श्री जिन्ना। सरोजिनी नायडू ने उन्हे 'हिन्दू-मुस्लिम एकता का राजदूत' कहा

था और पिछले दिनो मे उन्हीकी बदौलत मुस्लिम लीग का कांग्रेस के नजदीक आना बहुत-कुछ मुमकिन हुआ था, मगर कांग्रेस ने बाद मे जो रूप धारण किया——असहयोग को तथा अपने नये विधान को अपनाया, जिससे वह ज्यादातर जनता का सगठन बन गई, वह उन्हे कतई नापसन्द था। उनके मतभेद का कारण यों तो राजनैतिक बताया गया था, परन्तु वह मुख्यत. राजनैतिक न था। उस समय की कांग्रेस मे ऐसे बहुत-से लोग थे, जो राजनैतिक विचारों मे जिन्ना साहब से पीछे ही थे, पर बात यह है कि कांग्रेस के इस नये रग-रूप से उनके स्वभाव का मेल नही खाता था। उस खादीधारी भब्भड मे, जो हिन्दुस्तानी मे व्याख्यान देने की माग करता था, वह अपने को बिलकुल बेमेल पाते थे। इस तरह वह कांग्रेस से दूर चले गये और हिन्दुस्तान की राजनीति मे अकेले-से पड़ गये। दु ख की बात है कि आगे जाकर एकता का यह पुराना दूत उन प्रतिगामी लोगो मे मिल गया, जो मुसलमानो मे बहुत ही सम्प्रदायवादी थे।

हममे बहुत से लोग जो कांग्रेस-कार्यक्रम को पूरा करने मे लगे हुए थे, १९२१ मे मानो एक किस्म के नशे मे मतवाले हो रहे थे। हमारे जोश, आशावाद और उछलते हुए उत्साह का ठिकाना न था। हमे वैसा आनन्द और सुख का स्वाद आता था जैसा किसी शुभ काम के लिए धर्म-युद्ध करने वाले को होता है। हमारे मन मे न शंकाओं के लिए जगह थी, न हिचक के लिए। हमे अपना रास्ता अपने सामने बिलकुल साफ दिखाई देता था और हम आगे बढते चले जाते थे, दूसरो के उत्साह से उत्साहित होते तथा औरो को आगे धक्का देते थे। हमने जी-जान लगाकर काम करने मे कोई बात उठा न रखी। इतनी बडी मेहनत हमने कभी न की थी, क्यों-कि हम जानते थे कि सरकार से मुकाबला शीघ्र ही होनेवाला है और सरकार हमे उठाकर अलग कर दे, इससे पहले हम ज्यादा-से-ज्यादा काम कर डालना चाहते थे।

इन सब बातो से बढकर हमारे अन्दर आजादी का और

आजादी के गर्व का भाव आ गया था। यह पुराना भाव कि हम दबे हुए है और हमे कामयाबी नही हो सकती, बिलकुल चला गया था। अब न तो डर से काना-फूसी होती थी और न गोल-मोल कानूनी भाषा इस्तेमाल की जाती थी कि जिससे अधिकारियो के साथ झगडा मोल लेने से अपने को बचाया जा सके। हम वही करते थे जो हम मानते थे और महसूस करते थे और उसे खुल्लम-खुल्ला डके की चोट कहते थे। हमे उसके नतीजे की क्या परवा थी ? जेल ? उसकी हम राह ही देख रहे थे। उससे तो हमारे उद्देश्य-सिद्धि मे मदद ही पहुँचने वाली थी। बेशुमार भेदिया और खुफिया पुलिस के लोग हमे घेरे रहते थे और हम जहा जाते वहाँ साथ रहते थे। उनकी हालत दयाजनक हो गई थी, क्योकि हमारे पास उनके पता लगाने के लिए कोई छिपी बात ही न थी। हमारी सारी बाजी खुली थी।

हमको इस बात का ही सिर्फ़ सन्तोष न था कि हम एक सफल राजनैतिक काम कर रहे है, जिससे हमारी आंखों के सामने भारत की तसवीर बदलती जा रही है और जैसा कि हमारा विश्वास था, हिन्दुस्तान की आजादी बहुत नजदीक आ रही है, बल्कि हमारे अन्दर एक नैतिक उच्चता का भाव भी पैदा हो गया था कि हमारे साध्य और साधन दोनों हमारे विरोधियो के मुकाबले मे अच्छे और ऊँचे है। हमे अपने नेता पर और उसके बताये अप्रतिम उपाय पर गर्व था और कभी-कभी हम अपने को सत्पुरुष मानने का दावा करने लगते थे। लड़ाई के बीच और स्वयं उसमे लिप्त होते हुए और उसे बढ़ावा देते हुए एक आन्तरिक शान्ति का अनुभव होता था।

ज्यों-ज्यों हमारा नैतिक तेज, हमारा सत्य बढता गया, त्यों-त्यो सरकार का तेज घटता गया। उसकी समझ मे नही आता कि यह हो क्या रहा है। ऐसा जान पडता था कि हिन्दुस्तान मे उसकी परिचित पुरानी दुनिया एकाएक ढही जा रही है। दूर-दूर तक

एक नया आक्रामक भाव, आत्मावलम्बन और निर्भयता के भाव फैल रहे है और भारत मे ब्रिटिश हुकूमत का बहुत बड़ा सहारा—रौब—स्पष्टतया दूर होता जा रहा है। थोड़ा-थोड़ा दमन करने से आन्दोलन उलटा बढता जाता था और सरकार बहुत देर तक बड़े-बड़े नेताओ पर हाथ डालने से हिचकती ही रही। वह नहीं जानती थी कि इसका नतीजा आखिर क्या होगा। हिन्दुस्तानी फ़ौज पर भरोसा रखा जा सकता है या नही? पुलिस हमारे हुक्मो पर अमल करेगी या नही? दिसम्बर १९२१ मे लार्ड रीडिग ने तो कही दिया था कि हम 'हैरान और परेशान' हो रहे है।

: १२ :

मेरी पहली जेल-यात्रा

असहयोग-आन्दोलन ने मुझे वह चीज दी, जो मै चाहता था—कौमी आजादी का ध्येय और (जैसा मैने समझा) निचले दर्जे के लोगो के शोषण का अन्त कर देना, और ऐसे साधन जो मेरे नैतिक भावो के अनुकूल थे और जिन्होने मुझे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का भान कराया। यह व्यक्तिगत सन्तोष मुझे इतना ज्यादा मिला कि नाकामयाबी के अन्देशे की भी मै ज्यादा परवा न करता था, क्योकि ऐसी असफलता तो थोड़े समय के लिए ही हो सकती थी। भगवद्गीता के आध्यात्मिक भाग को मैने न तो समझा था और न उसकी तरफ मेरा खिचाव ही हुआ था, लेकिन हां, उन श्लोको को पढ़ना पसन्द करता था, जो शाम को गांधीजी के आश्रम में प्रार्थना के समय पढ़े जाते थे, और जिनमें यह बतलाया गया है कि मनुष्य को कैसा होना चाहिए, शान्त, स्थिर, गम्भीर, अनन्य, निष्काम भाव से कर्म करने वाला और फल के

विषय मे अनासक्त । मै खुद बहुत शान्त-स्वभाव का या अनासक्त नही हूँ, इसीलिए शायद यह आदर्श मुझे अच्छ लगा होगा।

मै आन्दोलन मे दिलोजान से जुट पडा और दूसरे बहुत-से लोगों ने भी ऐसा किया। मैंने अपने दूसरे कामकाज और सबंध, पुराने मित्र, पुस्तकें और अखबार तक, सिवा उस हद तक कि जितना उनका चालू काम से ताल्लुक था, सब छोड़ दिये। उस समय तक मेरा सामयिक किताबो का कुछ-कुछ पढना जारी था और ससार में क्या-क्या घटनाए घटती जाती है इसको जानने की कोशिश करता था। मगर अब तो इसके लिए वक्त ही नही था। हालाकि पारिवारिक मोह जबरदस्त था, मगर मै अपने परिवार, अपनी पत्नी, अपनी बेटी, सबको क़रीब-क़रीब भूल ही गया था। बहुत अरसे के बाद मुझे मालूम हुआ कि उन दिनो मैं उनकी कितनी कठिनाई और कितने कष्टो का कारण बन गया था और मेरी पत्नी ने मेरे प्रति कितने विलक्षण धीरज और सहनशीलता का परिचय दिया था। दफ्तर और कमिटी की मीटिगे और लोगो की भीड़ ही मानो मेरा घर बन गया था। "गांवो मे जाओ" यही सबकी आवाज थी, और हम कोसो खेतो मे चलकर जाते थे, दूर-दूर के गावो में पहुचते थे और किसानो की सभाओ मे भाषण देते थे। मैं रोम-रोम में जनता की सामूहिक भावना का और जनता को प्रभावित करने की शक्ति का अनुभव करता था। मैं कुछ-कुछ भीड़ की मनोभावना व शहर की जनता और किसानो के फर्क को समझने लगा और मुझे धूल और तकलीफो और बडे-बड़े मजमो के धक्कम-धक्को मे मजा आने लगा, हालाकि उनमे अनुशासन न होने से मै अक्सर चिढ जाता था। उसके बाद कभी-कभी मुझे ऐसे विरोधी और क्रुद्ध जन-समूहो के सामने भी जाना पडा है, जिनकी उग्रता इतनी बढी हुई थी कि एक चिनगारी भी उन्हे भड़का सकती थी, पर शुरू के तजुर्बे से और उससे उत्पन्न आत्म-

विश्वास से मुझे बड़ी मदद मिली। मै हमेशा विश्वास के साथ सीधा भीड़ मे घुस जाता। अभी तक तो उसने मेरे प्रति सद्व्यवहार और गुण-ग्राहकता का ही परिचय दिया है, चाहे मेरी बात उनके गले उतरी न हो।

१९२१ भर काग्रेस-कार्यकर्त्ताओं की व्यक्तिगत गिरफ़्तारियां और सजाए होती रही, मगर सामूहिक गिरफ्तारियाँ नही हुईं। अली-बन्धुओ को हिदुस्तानी फौज मे असतोप पैदा करने के लिए लम्बी-लम्बी सजाएं दी गई थी। जिन शब्दो के लिए उन्हे सजा मिली थी, उनको सैकड़ो मचो से हजारो आदमियो ने दोहराया। अपने कुछ भापणो के कारण राजद्रोह का मुकदमा चलाये जाने की धमकी मुझे गर्मियो मे दी गई थी। मगर उस वक्त ऐसी कोई कार्रवाई नही की गई। साल के अखीर मे मामला बहुत अधिक वढ गया। युवराज हिदुस्तान आने वाले थे और उनके आगमन के संवध मे की जानेवाली तमाम कार्रवाइयो का वहिष्कार करने की घोपणा काग्रेस ने कर दी थी। नवम्वर के अखीर तक वगाल मे कांग्रेस के स्वयं-सेवक गैरकानूनी करार दे दिये गए और फिर युक्तप्रान्त के लिए भी ऐसी ही घोपणा निकल गई। देशवन्धुदास ने वगाल को एक वडा जोशीला सदेश दिया—"मै अनुभव करता हू कि मेरे हाथों में हथकड़ियां पड़ी हुई है और मेरा सारा शरीर लोहे की वजनी जजीरों से जकडा हुआ है। यह है गुलामी की वेदना और यंत्रणा। सारा हिंदुस्तान एक वड़ा जेलखाना हो गया है। कांग्रेस का काम हर हालत में जारी रहना चाहिये—इसकी परवा नहीं कि मैं पकड लिया जाऊ या न पकडा जाऊं, इसकी परवा नहीं कि मैं मर जाऊं या जिन्दा रहू।" यू० पी० मे भी हमने सरकार की चुनौती स्वीकार कर ली। हमने न सिर्फ यही ऐलान किया कि हमारा स्वय-सेवक सगठन कायम रहेगा, बल्कि दैनिक पत्रों में अपने स्वयं-सेवको की नामावलिया भी छपवा दी। पहली

फेहरिस्त में सबसे ऊपर मेरे पिताजी का नाम था। वह स्वयसेवक तो नही थे; मगर सिर्फ सरकारी आज्ञा का उल्लघन करने के लिए ही वह शामिल हो गए थे और उन्होने अपना नाम दे दिया था। दिसम्बर के शुरू मे ही, हमारे प्रान्त मे युवराज के आने के कुछ ही दिन पहले, सामूहिक गिरफ्तारिया शुरू हुई।

हमने जान लिया कि आखिर अब पासा पड़ चुका है और काग्रेस और सरकार का अनिवार्य सघर्ष अब होने ही वाला है। अभी तक जेल एक अपरिचित जगह थी और वहा जाना एक नई बात थी। एक दिन मैं इलाहाबाद के काग्रेस-दफ्तर मे जरा देर तक बकाया काम निपटा रहा था। इतने ही मे एक क्लर्क जरा उत्तेजित होता हुआ आया और उसने कहा कि पुलिस तलाशी का वारट लेकर आई है और दफ्तर की इमारत को घेर रही है। नि सदेह मै भी थोड़ा उत्तेजित तो हो गया, क्योंकि मेरे लिए भी इस तरह की यह पहली ही बात थी, मगर दृढ़, शान्त और निश्चित प्रतीत होने तथा पुलिस के आने और जाने से प्रभावित न होने की अभिलाषा प्रबल थी। इसलिए मैंने एक क्लर्क से कहा कि जब पुलिस-अफसर दफ्तर के कमरों मे तलाशी ले तो तुम उसके साथ-साथ रहो और बाकी कर्मचारियो से अपना-अपना काम सदा की तरह करने और पुलिस की तरफ ध्यान न देने के लिए कहा। कुछ देर के बाद एक मित्र व साथी कार्यकर्त्ता, जो दफ्तर के बाहर ही गिरफ्तार कर लिये गए थे, एक पुलिस-मैन के साथ मेरे पास मुझसे विदा लेने आए। मुझे इन नई घटनाओं को मामूली घटनाए समझना चाहिए, यह अभिमान मुझमे इतना भर गया था कि मै अपने साथी कार्यकर्त्ता के साथ बिलकुल रुखाई से पेश आया। उनसे और पुलिस-मैन से मैंने कहा कि मै जबतक अपनी चिट्ठी पूरी न कर लू, तबतक जरा ठहरे रहे। जल्दी ही शहर मे और भी लोगो के गिरफ्तार होने की खबर आई। आखिरकार मैंने यह तय किया कि मै घर जाऊ और

देखूं कि वहा क्या हो रहा है। वहा भी पुलिस के दर्शन हुए। वह हमारे उस लम्बे-चौडे घर के एक हिस्से की तलाशी ले रही थी और मालूम हुआ कि पिताजी और मुझे दोनो को गिरफ़्तार करने आई है।

युवराज के आगमन के बहिष्कार-सम्बन्धी कार्यक्रम के लिए हमारा और कोई कार्य इतना उपयुक्त न होता। युवराज जहां-जहां गए, वहा-वहां उन्हे हडताले और सूनी सड़क ही मिली। जब वह इलाहाबाद आये तो वह एक सुनसान शहर मालूम पडा। कुछ दिनो बाद कलकत्ता ने भी कुछ समय के लिए अचानक अपना सारा कारोबार बन्द कर दिया। युवराज के लिए यह सब एक मुसीबत थी। मगर उनका कोई कसूर न था और न उनके खिलाफ कोई दुर्भावना थी। हा, हिंदुस्तान की सरकार ने अलबत्ता उनके व्यक्तित्व का बेजा फायदा उठाने की कोशिश की थी, इसलिए कि अपनी गिरती हुई प्रतिष्ठा को बनाये रख सके।

मुझे और पिताजी को अलग-अलग जुर्मो मे अलग-अलग अदालतो ने ६-६ महीने की सजाए दी थी। मुकदमे महज तमाशे थे और अपने रिवाज के मुताबिक हम लोगो ने उनमें कोई हिस्सा नही लिया था। इसमे कोई शक नही कि हमारे सब व्याख्यानो मे और दूसरी हलचलो मे सजा दिलाने के लिए काफी मसाला ढूढ निकालना बहुत आसान था, लेकिन सजा दिलाने के लिए जो मसाला दरअसल पसद किया गया वह बडा मजेदार था। पिताजी पर एक गैर-कानूनी जमात का मेम्बर—काग्रेस-स्वयसेवक—होने के जुर्म मे मुकदमा चलाया गया था और इस जुर्म को साबित करने के लिए एक फार्म पेश किया गया, जिसमे हिन्दी मे उनके दस्तखत दिखाये गए थे। बेशक दस्तखत उन्हीके थे, लेकिन असल मे हुआ यह कि इससे पहले उन्होने प्राय कभी हिन्दी मे दस्तख्त किये ही नही थे। इसलिए बहुत ही कम लोग उनके हिन्दी के दस्तखत पहचान सकते थे। लेकिन अदालत मे एक फटे-हाल महाशय पेश

किये गए, जिन्होने हलफिया बयान दिया कि वे दस्तखत मोतीलालजी के ही है। वह महाशय बिलकुल अपढ थे और जब उन्होने दस्तखतो को देखा तब वह फार्म को उलटा पकड़े हुए थे।

मेरा जुर्म यह था कि मैंने हडताल कराने के लिए नोटिसे बाटी थी। उन दिनों यह कोई जुर्म न था—यद्यपि मेरा खयाल है कि इस वक्त ऐसा करना जुर्म है, क्योक हम बड़ी तेजी के साथ डोमीनियन स्टेटस (औपनिवेशिक स्वराज्य) की तरफ बढते जा रहे थे—फिर भी मुझे सजा दे दी गई! तीन महीने बाद जब मै पिताजी तथा दूसरे लोगो के साथ जेल मे था तब मुझे इत्तला मिली कि मुकदमो पर पुनर्विचार करने वाले कोई अफसर इस नतीजे पर पहुचे है कि मुझे जो सजा दी गई है वह गलत है और इसलिए मुझे छोडा जायगा। मुझे इस बात से बडा अचरज हुआ, क्योकि मेरे मुकदमे पर पुनर्विचार कराने के लिए मेरी तरफ से किसीने कोई कार्रवाइ नही की थी। ऐसा मालूम पड़ता है कि सत्याग्रह[1] स्थगित हो जाने पर जजो मे मुकदमो पर पुनर्विचार

---

१ फरवरी १९२२ में चौरीचौरा-कांड के बाद ही गाधीजी ने सत्याग्रह-संग्राम स्थगित कर दिया। पंडितजी ने इस घटना पर अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दो में व्यक्त की है—

"अचानक १९२२ की फरवरी के शुरू में ही सारा दृश्य बदल गया और जेल में ही हमने बड़े आश्चर्य और भय के साथ सुना कि गांधीजी ने सविनय-भंग की लड़ाई रोक दी और सत्याग्रह स्थगित कर दिया है। हमने पढा कि यह इसलिए किया गया कि चौरी-चौरा नामक गांव के पास लोगो की एक भीड़ ने बदले में पुलिस-स्टेशन में आग लगा दी थी और उसमें करीब आधे दर्जन पुलिस वालो को जला डाला था।

"जब हमें मालूम हुआ कि ऐसे वक्त में, जब कि हम अपनी स्थिति मजबूत करते जा रहे थे और सभी मोर्चों पर आगे बढ़ रहे थे, हमारी लड़ाई बन्द कर दी गई है तो हम बहुत बिगडे। मगर हम जेलवालो की मायसी और नाराजगी से क्या हो सकता था? सत्याग्रह बन्द हो गया और उसके साथ ही असहयोग भी जाता रहा। कई महीनो की दिक्कत और

करने का जोश एकाएक उमड आया हो। मुझ पिताजी को जेल मे छोड़ कर बाहर जाने मे बहुत दु ख हुआ।

मैने तय कर लिया था कि अब फौरन ही अहमदाबाद जाकर गाधीजी से मिलूगा, लेकिन मेरे वहा पहुचने से पहले वह गिरफ्तार हो चुके थे। इसलिए उनसे मै साबरमती-जेल मे ही जाकर मिल सका। उनके मुकदमे के वक्त मै अदालत मे मौजूद था। वह एक हमेशा याद रखने लायक प्रसग था और हममे से जो लोग उस वक्त वहा मौजूद थे, वे शायद उसे कभी भूल नही सकते। जज एक अग्रेज था। उसने अपने व्यवहार मे काफी शराफत और सद्-भावना दिखाई। अदालत मे गाधीजी ने जो बयान दिया वह दिलो पर बहुत असर डालने वाला था। हम लोग वहा से जब लौटे तब हमारे दिल हिलोरे ले रहे थे और उनके ज्वलत वाक्यो और उनके चमत्कारी भावो और विचारो की गहरी छाप हमारे मन पर पडी हुई थी।

मै इलाहाबाद लौट आया। मुझे एक ऐसे वक्त पर जेल से बाहर रहना बहुत सुनसान और दु खप्रद मालूम हुआ, जब कि मेरे इतने दोस्त और साथी जेल के सीखचों के अन्दर बन्द थे। बाहर आकर मैने देखा कि काग्रेस का सगठन ठीक-ठीक काम नही कर रहा है और मैने उसे ठीक करने की कोशिश की। खास-तौर पर मैने विलायती कपडे के बहिष्कार मे दिलचस्पी ली। सत्याग्रह के वापस ले लिये जाने पर भी हमारे कार्यक्रम का वह हिस्सा अब भी चालू था। इलाहाबाद के कपडे के करीब-करीब तमाम व्यापारियो ने यह वायदा किया था कि वे न तो विलायती कपड़ हिन्दुस्तान मे ही किसीसे खरीदेगे न विलायत से ही मंग-

---

परेशानी के बाद सरकार को आराम की सास मिली, और पहली बार उसे अपनी तरफ से हमला शुरू करने का मौका मिला। कुछ हफ्तो बाद उसने गांधीजी को गिरफ़्तार कर लिया और उन्हें लम्बी कैद की सजा दे दी।—"
—संपादक

वायंगे। इस मतलब के लिए उन्होंने एक मंडल भी क़ायम कर लिया था। मडल के कायदो मे यह लिखा हुआ था कि जो अपना वायदा तोड़ेगा उसे जुर्माने की सजा दी जायगी। मैंने देखा कि कपड़े के कई बड़े-बड़े व्यापारियों ने अपना वादा तोड़ दिया है और वे विदेशो से विलायती कपडा मगा रहे हैं। यह उन लोगों के साथ बहुत बड़ी बेइसाफी थी, जो अपने वादे पर डटे हुए थे। हम लोगों ने कहा-सुनी की, लेकिन कुछ नतीजा न निकला और कपड़े के दूकानदारों का मडल किसी कारगर काम के लिए बिलकुल बेकार साबित हुआ। इसलिए हम लोगों ने तय किया कि वादा तोड़ने-वाले दूकानदारो की दुकानो पर धरना दिया जाय। हमारे काम के लिए धरने का इशारा भर काफी था। बस, जुर्माने दे दिये गए और नये सिरे से फिर वादे कर लिये गए। जुर्मानो से जो रुपया आया वह दूकानदारों के मडल के पास गया।

दो-तीन दिन बाद अपने कई साथियों के साथ मुझे गिरफ्तार कर लिया गया। ये साथी वे लोग थे, जिन्होंने दूकानदारो के साथ बातचीत करने मे हिस्सा लिया था। हमारे ऊपर जबरदस्ती रुपया ऐंठने और लोगो को डराने का जुर्म लगाया गया। मेरे ऊपर राजद्रोह सहित कुछ और भी जुर्म लगाए गए। मैंने अपनी कोई सफाई नही दी, अदालत मे सिर्फ एक लम्बा बयान दिया। मुझे कम-से-कम तीन जुर्मो मे सजा दी गई, जिनमे जबरदस्ती रुपया ऐंठने, लोगो को दबाने के जुर्म भी शामिल थे। लेकिन राजद्रोहवाला मामला नही चलाया गया, क्योंकि सम्भवत यह सोचा गया कि मुझे जितनी सजा मिलनी चाहिए थी वह पहले ही मिल चुकी है। जहा तक मुझे याद है, मुझे तीन सजाए दी गई, जिनमे दो अठारह-अठारह महीने की थी और वे एक-साथ चलने को थी। मेरा ख़याल है कि कुल मिलाकर मुझे एक साल नौ महीने की सजा दी गई थी। यह मेरी दूसरी सजा थी। मै हफ्ते के करीब जेल से बाहर रहकर फिर वही चला गया।

: १३ :

लखनऊ-जेल

१९२१ मे हिन्दुस्तान मे राजनैतिक अपराधो के लिए जेल जाना कोई नई बात नही थी। खासकर बग-भग आन्दोलन के वक्त से बराबर ऐसे लोगो का ताता लगा रहा, जो जेल जाते थे और उनको अक्सर लम्बी-लम्बी सजाए होती थी। बगैर मुकदमा चलाये नजरबन्दिया भी होती थी। लोकमान्य तिलक को, जो अपने समय के हिन्दुस्तान के सबसे बडे नेता थे, उनकी ढलती हुई उम्र मे छह साल कैद की सजा दी गई थी।

मगर फिर भी १९२१ मे जेलखाना करीब-करीब एक अज्ञात जगह थी और बहुत कम लोग जानते थे कि नये सजायाफ्ता आदमियो को अपने अन्दर निगल जानेवाले डरावने फाटक के भीतर क्या होता है ? अन्दाज से हम कुछ-कुछ ऐसा समझते थे कि जेल के अन्दर बड़े-बडे खतरनाक जीव होगे, जिनके लिए कुछ भी कर गुजरना बाये हाथ का खेल होगा।। हमारे ख़याल से जेल एकान्त, बेइज्जती और कष्टो की जगह थी और सबसे बड़ी बात यह थी कि उसके साथ अनजानी जगह होने का ख़ौफ लगा हुआ था।

हमारे साथ के ज्यादातर कैदी जेल के भीतरी चक्कर की बडी-बडी बैरको मे रक्खे जाते थे। हममे से अठारह को, जिन्हे मेरे अनुमान से अच्छे बर्ताव के लिए चुना गया था, एक पुराने वीविंग-शेड में रक्खा गया था, जिसके साथ एक बडी खुली हुई जगह थी। मेरे पिताजी, मेरे दो चचेरे भाई और मेरे लिए एक अलग सायबान था,जो करीब-करीब २० × १६फुट का था। हमे एक वैरक से दूसरी वैरक मे आने-जाने की काफी आजादी थी। वाहर के रिश्तेदारो से काफी मुलाकाते करने की इजाजत थी। अखवार आते थे और नई गिरफ्तारियो और हमारी लडाई की वढती की ताजी घटनाओं

की रोजाना खबरो से जोश का वातावरण रहता था। आपसी बात-चीत और बहस मे बहुत वक्त जाता था और मै पढना या दूसरा ठोस काम कुछ नही कर पाता था। मै सुबह का वक्त अपने सायबान को अच्छी तरह साफ करने और धोने मे, पिताजी के और अपने कपडे धोने मे और चर्खा कातने मे गुजारा करता था। वे जाडे के दिन थे, जोकि उत्तर हिंदुस्तान का सबसे अच्छा मौसम है। शुरू के कुछ हफ्तो मे हमे अपने स्वयसेवको के लिए, या उनमे जो अपढ थे उनके लिए, हिन्दी, उर्दू और दूसरे प्रारम्भिक विषय पढाने के लिए क्लास खोलने की इजाजत मिल गई थी। तीसरे पहर हम वाली-वाल खेला करते थे।

धीरे-धीरे बन्धन बढने लगे। हमे अपने अहाते से बाहर जाने और जेल के उस हिस्से मे, जहा हमारे ज्यादातर स्वयसेवक रक्खे गये थे, पहुचने से रोक दिया गया। तब पढाई के क्लास अपने-आप बन्द हो गये। क़रीब-करीब उसी वक्त मै जेल से छोड़ दिया गया।

मै शुरू मार्च मे बाहर निकला और छ या सात हफ्ते बाद, अप्रैल मे फिर जेल लौट आया। तब क्या देखता हू कि हालत बदल गई है। पिताजी को बदलकर नैनीताल-जेल मे भेज दिया गया था, और उनके जाने के बाद फौरन ही नये कायदे लागू कर दिये गए थे। बडे वीविग-शेड के, जहा पहले मै रखा गया था सारे कैदी भीतरी जेल मे बदल दिये गए थे और वहा बैरको में रख दिये गए थे। हरएक बैरक करीब-करीब जेल के अन्दर दूसरी जेल ही थी। दूसरी बैरको से मिलने-जुलने या बात-चीत करने की इजाजत नही थी। मुलाकात और खत अब कम किये जाकर महीने भर मे एक कर दिये गए। खाना बहुत मामूली कर दिया गया, हालाकि हमे बाहर से खाने की चीजे मगाने की इजाजत थी।

जिस बैरक मे मै रखा गया था, उसमे क़रीब पचास

आदमी रहते होगे। हम सबको एक साथ ठूस दिया गया, हमारे बिस्तरे एक-दूसरे से तीन-चार फुट के फासले पर थे। खुशकिस्मती से उस बैरक का करीब-करीब हरएक आदमी मेरा जाना हुआ था और कई मेरे दोस्त भी थे। मगर दिन-रात एकान्त का बिलकुल न मिलना नागवार होता गया। हमेशा उसी झुड को देखना, वही छोटे-छोटे झगडे-टटे चलते रहना और इन सबसे बचकर शान्ति का कोई कोना भी बिलकुल न मिलना! हम सबके सामने नहाते, सबके सामने कपडे धोते, कसरत के लिए बैरको के चारों तरफ चक्कर लगा कर दौडते और बात-चीत इस हद तक करते कि दिमाग थक जाता और सोच-समझकर बात भी करने की ताक़त न रह जाती थी। यह कौटुम्बिक जीवन का एक नीरस——सौगुना नीरस दृश्य था, जिसमे उसका आनन्द, उसकी शोभा और सुख-सुविधा का अश बहुत कम था और फिर ऐसे लोगो का साथ, जो भिन्न-भिन्न तरह के स्वभाव और रुचियो के थे। हम सबके मन मे इस बात का बड उद्वेग रहता था और मै तो अक्सर अकेला रहने के लिए तरसता रहता था। कुछ सालो के बाद तो जेल मे मुझे खूब एकान्त और अकेलापन मिल गया। ——ऐसा कि महीनो तक लगातार मुझे किसी जेल-अधिकारी के सिवा और किसी की सूरत भी दिखाई न देती। तब फिर मेरे मन मे उद्वेग रहने लगा——और इस बार अच्छे साथियो की जरूरत महसूस करता था। अब मै कभी-कभी १९२२ मे लखनऊ जिला-जेल मे इकट्ठा रहने के दिनो की रश्क के साथ याद करता था। फिर भी मै खूब अच्छी तरह जानता था कि दोनों हालतो मे से मुझे अकेलापन ही ज्यादा पसन्द आया है, बशर्ते कि मुझे पढने और लिखने की सुविधा हो।

फिर भी मुझे कहना होगा कि उस वक्त के साथी निहायत अच्छे और खुश-मिजाज थे और हम सबकी अच्छी बनी। मगर मेरा खयाल है कि हम सभी कभी-कभी एक-दूसरे-से तग से आ जाते थे और अलहदा होकर कुछ एकान्त मे रहना चाहते थे।

ज्यादा-से-ज्यादा एकान्त जो मैं पा सकता था वह यही था कि बैरक छोड़कर अहाते के खुले हिस्से में आ बैठता था। उन दिनों बारिश का मौसम था और बादल होने के कारण बाहर बैठा जा सकता था। मैं गरमी और कभी-कभी बूदा-बांदी सहन कर लेता था, और ज्यादा-से-ज्यादा वक्त बैरक के बाहर बिताया करता था।

खुले हिस्से मे लेटकर मैं आकाश तथा बादलों को निहारा करता था और अनुभव करता था कि बादलो के नित-नये रंग कितने सुन्दर होते है ! यह सौंदर्य मैंने पहले नही देखा था।

"अहो ! मेघमालाओ का यह
पल-पल रूप पलटना ,
कितना मधुर स्वप्न है लेटे-
लेटे इन्हे निरखना !"†

लेकिन वह समय मेरे लिए सुख और आनन्द का न था, वह तो मेरे लिए भार-स्वरूप था। मगर जो वक्त मै इन सतत नये रूप धारण करने वाले बरसाती बादलो को देखने मे बिताता था वह आनन्द से भरा रहता था और मुझे राहत मालूम होती थी। मुझे ऐसा आनन्द होता मानो मैंने कोई आविष्कार किया हो और ऐसी भावना पैदा होती मानो मैं कैद से छुटकारा पा गया हूं। मैं नही जानता कि खास उसी वर्षा-ऋतु ने मुझपर इतना असर क्यों डाला, इससे पहले या बाद के किसी साल की भी वर्षा-ऋतु ने इस तरह प्रभावित क्यो नही किया ! मैंने कई बार पहाडों पर और समुद्र पर सूर्योदय और सूर्यास्त के मनोरम दृश्य देखे थे, उनकी शोभा की सराहना की थी, उस समय का आनन्द लूटा था तथा उनकी महान् भव्यता और सुन्दरता से अभिभूत हो उठा था। मगर मै उनको देखकर यही खयाल कर लेता कि ये तो रोज की बाते है और दूसरी बातों की तरफ ध्यान देने लगता। मगर जेल मे तो सूर्योदय और सूर्यास्त दिखाई नहीं

---

† अंग्रेजी कविता का भावानुवाद।

देते थे। क्षितिज हमसे छिपा हुआ था और प्रात काल तप्त सूर्य हमारी रक्षक दीवारो के ऊपर देर से निकलता था। कही चित्र-विचित्र रग का नामो-निशान नही था और हमारी आँखे सदा उन्ही मटमेली दीवारो और बैरको का दृश्य देखते-देखते पथरा गई थी। वे तरह-तरह के प्रकाश, छाया और रगो को देखने के लिए भूखी हो रही थी और जब बरसाती बादल अठखेलियाँ करते हुए, तरह-तरह की शकले बनाते हुए, भिन्न-भिन्न प्रकार के रग धारण करते हुए हवा मे थिरकने लगते तो मै पागलो की तरह आश्चर्य और आह्लाद से उन्हे निहारा करता। कभी-कभी बादलों का ताता टूट जाता और इस प्रकार जो छिद्र हो जाता उसके भीतर से वर्षा-ऋतु का एक अद्भुत दृश्य दिखाई देता था। उस छिद्र मे से अत्यन्त गहरा नीला आसमान नजर आता था, जो अनन्त का ही एक हिस्सा मालूम होता था।

हमारे ऊपर सख्तियाँ धीरे-धीरे बढने लगी और ज्यादा-से-ज्यादा सख्त कायदे लागू किये जाने लगे। सरकार ने हमारे आन्दोलन की नाप-जोख कर ली थी, और वह हमे यह महसूस करा देना चाहती थी कि हमारे मुकाबला करने की हिम्मत करने के सबब से वह हमपर किस कदर नाराज है। नये कायदो के चालू करने या उनके अमल मे लाने के तरीको से जेल-अधिकारियो और राजनैतिक कैदियो के बीच झगडे होने लगे। कई महीनो तक करीब-करीब हम सबने—हम लोगो की सख्या उसी जेल मे कई सौ थी—विरोध के तौर पर मुलाकाते करना छोड़ दिया था। जाहिर है कि यह खयाल किया गया कि हममे से कुछ झगडा कराने वाले है, इसलिए सात आदमियो को जेल के एक दूसरे हिस्से मे बदल दिया गया, जो खास बैरको से बिलकुल अलहदा था। इस तरह जिन लोगो को अलग किया गया, उनमे मै, पुरुषोत्तमदास टण्डन, महादेव देसाई, जार्ज जोसफ, बालकृष्ण शर्मा और देवदास गाधी थे।

हम एक छोटे से अहाते में भेजा गया और वहां रहने मे कुछ तकलीफे भी थी। मगर कुल मिलाकर मुझे तो इस तबदीली से खुशी ही हुई। यहा भीड-भाड नही थी, हम ज्यादा शान्ति और ज़्यादा एकान्त से रह सकते थे। पढने या दूसरे काम के लिए वक्त ज्यादा मिलता था। हम जेल के दूसरे हिस्सो के अपने साथी कैदियों से अलहदा कर दिये गए और बाहरी दुनिया से भी अलहदा कर दिये गए, क्योकि अब सब राजनैतिक कैदियो के लिए अख़बार भी बन्द कर दिये गए थे।

हमारे पास अखबार नही आते थे, मगर बाहर से कोई-कोई खबर अन्दर टपक आती थी, जैसे कि जेलो मे अक्सर टपका करती है। हमारी माहवारी मुलाक़ातो और खेतो से भी हमे बाज-बाज ऐसी-वैसी खबरें मिल जाती थी। हमको पता लगा कि हमारा आन्दोलन बाहर कमजोर हो रहा है। वह चमत्कारिक युग गुजर गया था और कामयाबी धुधले भविष्य मे दूर जाती हुई मालूम हुई। बाहर, काग्रेस मे दो दल हो गये थे—परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी। पहला दल, जिसके नेता देशबन्धुदास और मेरे पिताजी थे, चाहता था कि काग्रेस अगले केन्द्रीय और प्रान्तीय कौंसिलो के चुनावो मे हिस्सा ले और हो सके तो इन कौंसिलो पर कब्जा कर ले। दूसरा दल, जिसके नेता राजगोपालाचार्य थे, असहयोग के पुराने कार्यक्रम मे कोई परिवर्तन किये जाने के विरुद्ध था। उस समय गाधीजी तो जेल मे ही थे।

हम रोजाना कुछ काम और कसरत करने मे जुट पडते। कसरत के लिए हम उस छोटे-से अहाते के चारो तरफ दौड़कर चक्कर लगाया करते थे, या दो बैलो की तरह से दो-दो आदमी मिलकर अपने सहन के कुएँ से एक बडा चमड़े का डोल खींचा करते थे। इस तरह हम अपने अहाते के एक छोटे-से साग-सब्जी के खेत मे पानी देते थे। हममे से ज्यादातर लोग रोजाना थोडा-थोड़ा सूत भी कातते थे। मगर उन जाड़े के दिनो और लम्बी रातो

मे पढना ही मेरा खास काम था। करीब-करीब हमेशा जब-जब सुपरिण्टेण्डेण्ट आता तो वह मुझे पढता हुआ देखता था। यह पढते रहने की आदत शायद उसे खटकी और उसने इसपर एक बार कुछ कहा भी। उसने यह भी कहा कि मैंने तो अपना साधारण पढ़ना बारह साल की उम्र मे ही खत्म कर दिया था! बेशक, पढ़ना छोड़ देने से उस बहादुर अग्रेज कर्नल को यह फायदा ही हुआ कि उसे बेचैनी पैदा करने वाले विचार आये ही नही।

जाड़े की लम्बी रातों और हिंदुस्तान के साफ आसमान ने हमारा ध्यान तारों की तरफ खीचा और कुछ नक्शो की मदद से हमने कई तारे पहचान लिये। हर रात हम उनके उगने का इन्तजार करते थे और मानो अपने पुराने परिचितो के दर्शन करते हों, इस आनन्द से उनका स्वागत करते थे।

इस तरह हम अपना वक्त गुजारते थे। दिन गुजरते-गुजरते हफ़्ते हो जाते और हफ्ते महीने हो जाते। हम अपनी रोजमर्रा की रहन-सहन के आदी हो गये। मगर बाहर की दुनिया मे असली बोझ तो हमारे महिला-वर्ग पर—हमारी माताओं, पत्नियों और बहनो, पर पड़ा। वे इन्तज़ार करते-करते थक गई और जब उनके प्रिय जन जेल की सीखचो मे बन्द थे, उन्हे अपने को आज़ाद रखना बहुत खटकता था।

दिसम्बर १९२१ मे हमारी पहली गिरफ्तारी के बाद ही इलाहाबाद के हमारे मकान, आनन्द-भवन, मे पुलिसवालो ने अक्सर आना-जाना शुरू किया। वे उन जुर्मानों को वसूल करने आते थे, जो पिताजी पर और मुझपर किये गए थे। काग्रेस की नीति यह थी कि जुर्माना न दिया जाय। इसलिए पुलिस रोज-रोज़ आती और कुछ-न-कुछ फर्नीचर कुर्क करके उठा ले जाती। मेरी चार साल की छोटी लड़की इन्दिरा इस बार-बार की लगातार लूट से बहुत नाराज होती थी। उसने पुलिस का विरोध किया और अपनी सख्त नाराजगी जाहिर की। मुझे आशका है

कि पुलिस-दल के बारे मे उसके ये बचपन के भाव उसके भावी विचारो पर असर डाले बिना न रहेंगे।

जेल मे पूरी कोशिश की जाती थी कि हमे मामूली गैर-राजनैतिक कैदियो से अलग रक्खा जाय। आम तौर पर राजनैतिक कैदियो के लिए अलग जेले मुकर्रर कर दी जाती थी। मगर पूरी तरह अलहदा किया जाना तो नामुमकिन था और हम उन कैदियो से अक्सर मिल लेते थे, और उनसे तथा खुद तजुर्बे से हमने जान लिया कि उन दिनो वास्तव मे जेल की जिन्दगी कैसी होती थी। उसे मार-पीट और जोर की रिश्वतखोरी और भ्रष्टता की एक कहानी ही समझना चाहिए। खाना अजीव तौर पर ख़राब था। मैंने कई मर्तबा उसे खाने की कोशिश की, मगर विलकुल न खाये जाने लायक पाया। कर्मचारी आम तौर पर विलकुल अयोग्य थे और उन्हे बहुत कम तनख्वाहे मिलती थी। मगर उनके लिए कैदियो या कैदियो के रितेश्दारो से हर मुमकिन मौके पर रुपया एठकर अपनी आमदनी वढ़ाने का रास्ता पूरी तरह खुला था।

ज्यादातर राजनैतिक कैदियो के साथ मामूली कैदियो के समान ही व्यवहार किया गया। उन्हे कोई विशेष अधिकार या व्यवहार नही मिला, मगर दूसरो से ज्यादा तेज-तर्रार और समझदार होने के कारण उनसे आसानी से कोई वेजा फायदा नही उठा सकता था, न उनसे रुपया ऐठा जा सकता था। इस सबव से आप ही कर्मचारी उन्हे पसन्द नही करते थे और जव मौका आता तो उनमे से किसीको भी जेल के कायदे टूटने पर सख्त सजा दी जाती।

ऐसे ही कायदे तोड़ने के लिए एक छोटे लडके को, जिसकी उम्र १५ या १६ साल की थी और जो अपने को 'आजाद' कहता था, वेत की सजा दी गई। वह नंगा किया गया और वेत की टिकटी से वाध दिया गया, और जैसे-जैसे वेत उस पर पड़ते थे और उसकी चमड़ी उधेड़ डालते थे, वह 'महात्मा गांधी की जय'

चिल्लाता था। हर बेत के साथ वह लड़का तबतक यही नारा लगाता रहा, जबतक बेहोश न हो गया। बाद मे वही लड़का उत्तर-भारत के आतंककारी कार्यों के दल का एक नेता बना।

: १४ :

फिर बाहर

जनवरी १९२३ के आखरी दिन लखनऊ-जेल के हम सब राजनैतिक कैदी छोड़ दिये गए। उस समय लखनऊ मे एक सौ और दो सौ के बीच, स्पेशल क्लास, के कैदी होंगे। दिसम्बर १९२१ या १९२२ के शुरू मे जिन लोगो को एक साल या कम की सजा मिली थी, वे सब तो अपनी सजा पूरी करके चले गये थे। सिर्फ वे जिनकी लम्बी सजाए थी, या जो दोबारा आ गये थे, रह गये थे।

जेल के फाटक से बाहर निकलने मे हमेशा एक सतोष का भाव और आनदोल्लास रहता है। ताजी हवा और खुले मैदान, सडकों पर के चलते हुए दृश्य और पुराने मित्रों से मिलना-जुलना, ये सब दिमाग मे एक खुमारी लाते है और कुछ-कुछ दीवाना-सा बना देते है। बाहर की दुनिया को देखने से पहले-पहल जो असर होता है उसमें कुछ पागलो का-सा एक आनन्द छाया रहता है। हमारा दिल उछलने लगा, मगर यह भाव थोड़ी देर के लिए ही रहा, क्योकि काग्रेसी-राजनीति की दशा काफी निराशाजनक थी। ऊंचे आदर्शो की जगह षड्यंत्र होने लगे थे और कई गुट उन सामान्य तरीको से काग्रेस-तन्त्र पर कब्जा करने की कोशिश करने लगे थे।

मेरे मन का झुकाव तो कौसिल-प्रवेश के बिलकुल खिलाफ था, क्योंकि इसका ज़रूरी नतीजा यह मालूम होता था कि समझौता करने की चाले करनी पडेगी और अपना लक्ष्य हमेशा नीचा करना पड़ेगा। मगर सच पूछो तो देश के सामने कोई दूसरा राज-

नैतिक प्रोग्राम भी नही था। अपरिवर्तनवादी, रचनात्मक कार्यक्रम पर जोर देते थे, जो कि दर असल सामाजिक सुधार का कार्यक्रम था और जिसका मुख्य गुण यह था कि उससे हमारे कार्यकर्ताओ का जनता से सम्पर्क पैदा हो जाय। मगर इससे उन लोगो को तसल्ली नही हो सकती थी जो राजनैतिक कार्य मे विश्वास करते थे। और यह कुछ अनिवार्य ही था कि सीधे सघर्ष की लहर के बाद, जो कामयाब न हुई हो, कौसिल-सम्बन्धी कार्यक्रम आगे आवे। यह कार्यक्रम भी देशबन्धुदास और मेरे पिताजी ने, जो कि इस नये आन्दोलन के नेता थे, सहयोग और रचना के लिए नही, बल्कि बाधा डालने और मुकाबला करने की दृष्टि से सोचा था।

देशबन्धुदास कौसिल मे भी राष्ट्रीय सग्राम को जारी रखने के उद्देश्य से वहा जाने के पक्ष मे हमेशा रहे थे। मेरे पिताजी का भी लगभग यही दृष्टिकोण था। १९२० मे जो उन्होंने कौसिल का बहिष्कार मजूर किया था, वह कुछ अशों मे अपने दृष्टिकोण को गाधीजी के दृष्टिकोण के अधीन कर देने के रूप मे था। वह लड़ाई मे पूरी तरह शामिल होजाना चाहते थे और उस समय ऐसा करने का एक ही रास्ता था कि गांधीजी के नुस्खे को सोलहो आना आजमाया जाय।

जेल से छूटने पर कुछ दूसरे लोगों के साथ मैंने भी कोशिश की कि परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी दलों मे कुछ समझौता हो जाय, किंतु हमे कुछ भी सफलता न मिली और मै इन झगड़ों से ऊब उठा। तब मै तो सयुक्तप्रान्तीय काग्रेस-कमेटी के मन्त्री की हैसियत से काग्रेस को संगठित करने के काम मे लग गया। पिछले साल के धक्को से बहुत छिन्न-भिन्नता आ गई थी और उसे दूर करने के लिए काम बहुत था। मैंने बहुत मेहनत की, मगर उसका कोई नतीजा न निकला। असल मे मुझे कुछ सूझ नहीं पड़ रहा था। मगर जल्दी ही मेरे सामने एक नई तरह का काम आ

खड़ा हुआ। मेरी रिहाई के कुछ हफ्तो के अन्दर ही मै इलाहाबाद म्युनिसिपैलिटी के प्रधान-पद पर बैठा दिया गया । यह चुनाव इतना अचानक हुआ कि घटना के पैतालीस मिनट पहले तक इस बाबत किसीने भी मेरे नाम का जिक्र नही किया था बल्कि मेरा खयाल तक नही किया था। मगर अन्तिम घडी मे काग्रेस-पक्ष ने यह अनुभव किया कि मै ही उनके दल मे एक ऐसा आदमी हू जिसका कामयाब होना निश्चित था।

उस साल ऐसा हुआ कि देशभर मे बडे-बडे काग्रेसवाले ही म्युनिसिपैलिटियो के प्रेसिडेट बन गये। देशबन्धुदास कलकत्ता के पहले मेयर बने, विट्ठलभाई पटेल बम्बई-कार्पोरेशन के प्रेसिडेट बने, सरदार वल्लभभाई अहमदाबाद के बने । युक्तप्रान्त मे ज्यादातर बड़ी म्युनिसिपैलिटियो मे काग्रेसी ही चेयरमैन थे।

अब तो मुझे म्युनिसिपैलिटी के विविध कामो मे दिलचस्पी पैदा होने लगी और मै उसमे ज्यादा-से-ज्यादा वक्त देने लगा। उसके कई सवालो ने तो मुझे लुभा ही लिया। मैने इस विषय का खूब अध्ययन किया और म्युनिसिपैलिटी का सुधार करने के मैने बहुत बड़े-बडे मनसूबे बाधे। बाद मे मुझे मालूम हुआ कि आजकल हिदुस्तानी म्युनिसिपैलिटियो की रचना जिस तरह की गई है उसके रहते हुए उनमे बड़े सुधारो या उन्नति के लिए बहुत कम गुजाइश है। फिर भी काम करने के लिए और म्युनिसिपल-तन्त्र को साफ-सूफ करने और सुगम बनाने की गुजाइश तो थी ही और मैने इस वात के लिए काफी मेहनत की।

उन्ही दिनो मेरे पास काग्रेस का काम भी वढ रहा था और प्रान्तीय सेक्रेटरी के अलावा मै अखिल-भारतीय सेक्रेटरी भी बना दिया गया था। इन विविध कामो की वजह से अक्सर मुझे रोजाना पन्द्रह-पन्द्रह घटे तक काम करना पडता था, और दिन खत्म होने पर मै अपने को विलकुल थका हुआ पाता था।

आखिर दो साल के अत मे मैने म्युनिसिपल कमेटी की अध्यक्षता से इस्तीफा दे दिया।

: १५ :

सन्देह और संघर्ष

मै बहुत-से कामो मे लग गया और इस तरह मैने उन प्रश्नो से बचने की कोशिश की, जो मुझे परेशानी मे डाले हुए थे, लेकिन उनसे बचना सभव न था। जो प्रश्न बार-बार मेरे मन मे उठते थे और जिनका कोई सतोषजनक उत्तर मुझे नही मिलता था उनसे मै कहा भाग सकता था? इन दिनों जो काम मै करता था वह सिर्फ इसलिए कि मै अपने अन्तर्द्वन्द्व से बचना चाहता था। बात यह है कि वह १९२०-२१ की तरह मेरी आत्मा का सोलहों आने प्रतिबिम्ब नही था। उस वक्त जो आवरण मुझपर पडा हुआ था अब उससे मै निकल पाया था और अपने चारो तरफ हिंदुस्तान मे और हिंदुस्तान से बाहर जो कुछ हो रहा था, उसपर निगाह डाल रहा था। मैने बहुत-से ऐसे परिवर्तन देखे जिनकी तरफ अभी तक मेरा खयाल ही नही गया था। मैने नये-नये विचार देखे और नये-नये सघर्ष; और मुझे प्रकाश की जगह उलटे बढती हुई अस्पष्टता दिखाई दी। गाधीजी के नेतृत्व मे मेरा विश्वास बना रहा, लेकिन उनके प्रोग्राम के कुछ हिस्सों की मै बारीकी से छान-बीन करने लगा। लेकिन वह जेल मे थे। और हम लोग जब चाहते तब उनसे मिल नही सकते थे और न उनकी सलाह ही ले सकते थे। उन दिनों जो दो पार्टिया—कौंसिल-पार्टी और अपरिवर्तनवादी—काम कर रही थी उनमे से कोई भी मुझे आकर्पित नही कर रही थी। कौंसिल-पार्टी जाहिरा तौर पर सुधारवाद और विधानवाद की तरफ झुक रही थी और मुझे लगा कि यह मार्ग तो हमे एक अंधी गली मे ले जाकर डाल देगा। अपरवर्तनवादी महात्माजी के कट्टर अनुयायी माने जाते थे। लेकिन महान् पुरपो के दूसरे सब अनुयायियो की तरह वे भी उनके उपदेशो के सार को ग्रहण न कर उनके अक्षरो के अनुसार चलते थे। उनमे सजीवता और संचालन-शक्ति नही थी, और व्यवहार

मे उनमे से ज्यादातर लोग लडाकू नही थे बल्कि सीधे-सादे समाज-सुधारक थे। लेकिन उनमे एक गुण था, आम जनता से उन्होने अपना सबध बनाये रखा था, जबकि कौसिलो मे जानेवाले स्वराजी सोलहो आने कौसिलो की पैतरेबाजियो मे ही लगे रहे।

मेरे जेल से छूटते ही देशबन्धुदास ने मुझे स्वराजियो के मत का बनाने की कोशिश की। यद्यपि मुझे दिखाई नही देता था कि मुझे क्या करना चाहिये, और उन्होने अपनी सारी वकालत खर्च कर दी तो भी मेरा दिल उनके अनुकूल न हुआ। यह बात विचित्र किंतु ध्यान देने योग्य थी और इससे मेरे पिताजी के स्वभाव का पता भी लगता था कि उन्होने मुझपर कभी इस बात के लिए जोर या असर डालने की कोशिश नही की कि मै स्वराज पार्टी मे शामिल हो जाऊ। साफ जाहिर है कि अगर मै उनके आन्दोलन मे उनके साथ हो जाता तो उन्हे बडी खुशी होती, लेकिन मेरे भावो के लिए उनके दिल मे इतना ज्यादा खयाल था कि जहा तक इस मामले का ताल्लुक था उन्होने सब-कुछ मेरी मर्जी पर ही छोड़ दिया, मुझसे कभी कुछ नही कहा।

मेरे पिताजी और देशबन्धु यद्यपि कई बातो मे एक-दूसरे से भिन्न थे, फिर भी एक-दूसरे के साथ अच्छा मेल खा गए। पार्टी के नेतृत्व के लिए इन दोनो का मेल बहुत ही उम्दा और कारगर साबित हुआ। इनमे हरेक, कुछ हद तक दूसरे की कमी को पूरा करता था। स्वराज-पार्टी को मजबूती के साथ कायम करने और देश मे उसकी ताकत और धाक जमाने मे इस व्यक्तिगत मित्रता का बहुत-कुछ हाथ था। शुरू से ही इस पार्टी मे फूट फैलाने वाली प्रवृत्तिया थी, क्योकि कौसिलो के जरिये अपनी ज़ाती तरक्की की गुजाइश होने की वजह से बहुत-से अवसर-वादी और ओहदो के भूखे लोग उसमे आ घुसे थे। उनमे कुछ असली माडरेट भी थे, जिनका झुकाव सरकार के साथ सहयोग करने की तरफ ज्यादा था। चुनाव के बाद ज्योही ये प्रवृत्तिया

सामने आने लगी, त्योही पार्टी के नेताओ ने उनकी निन्दा की। मेरे पिताजी ने ऐलान किया कि मै पार्टी के शरीर से सड़े हुए अग को काटने मे न हिचकूगा और उन्होने अपने इसी ऐलान के अनुसार काम भी किया।

१९२३ से आगे अपने पारिवारिक जीवन मे मुझे बहुत सुख व संतोष मिलने लगा, हालांकि मै पारिवारिक जीवन के लिए बिलकुल वक्त न दे सकता था। अपने पारिवारिक सम्बन्धों मे मै बड़ा भाग्यशाली रहा हू। जबरदस्त कशमकश और मुसीबतों के वक्त मे मुझे अपने परिवार मे शाति और सात्वना मिली है। मैने महसूस किया कि इस दिशा मे मै स्वय कितना अपात्र निकला। यह सोचकर मुझे कुछ शर्म भी मालूम होती है। मैने महसूस किया कि १९२० से लेकर मेरी पत्नी ने जो उत्तम व्यवहार किया उसका मै कितना ऋणी हू! स्वाभिमानी और मृदुल स्वभाव की होते हुए भी उसने न सिर्फ मेरी सनको ही को बरदाश्त किया, बल्कि जब-जब मुझे शान्ति और सतोष की सबसे ज्यादा जरूरत थी तब-तब वह उसने मुझे दी।

१९२० से हमारे रहन-सहन के ढग मे कुछ फर्क पड़ गया था। वह बहुत सादा हो गया था और नौकरो की सख्या भी बहुत कम कर दी गई थी। फिर भी उससे किसी आवश्यक आराम मे कोई कमी नही हुई थी। किसी हद तक तो आवश्यक चीजों को अलग करने के लिए, और कुछ हद तक चालू खर्च के लिए रुपया इकट्टा करने के वास्ते बहुत-सी चीजे, घोड़े-गाडिया और घर-गृहस्थी की वे सब चीजे जो हमारे रहन-सहन के नये ढग के लिए उपयुक्त नही थी, बेच दी गई थी। हमारे फ़र्नीचर का कुछ हिस्सा तो पुलिस ने ही जब्त करके बेच दिया था। इस फर्नीचर की और मालियो की कमी से घर की सफाई और ख़ूबसूरती कम हो गई और बाग जगल-सा हो गया। कोई तीन साल तक घर व बाग की तरफ नही के बराबर ध्यान दिया गया था। बहुत

हाथ खोलकर खर्च करने के आदी होने की वजह से पिताजी कई बातो की किफायतशारी पसन्द नही करते थे। इसलिए उन्होने तय किया कि वह, घर बैठे-बैठे लोगो को कानूनी सलाह देकर कुछ पैसा पैदा किया करे।

जो वक्त सार्वजनिक कामो से बचा रहता उसमे, वह यह काम करते थे। वैसे तो उनके पास वक्त ही बहुत कम बचता था, फिर भी वह इस हालत मे भी काफी कमा लेते थे।

खर्च के लिए पिताजी पर अवलम्बित रहने की वजह से मै बहुत ही दु ख और ग्लानि अनुभव करता था। जबसे मैंने वकालत छोडी थी, तबसे असल मे मेरी कोई निजी आमदनी नही रही— सिर्फ उस नगण्य आमदनी को छोडकर जो शेअरो के मुनाफे (डिवीडेड) के रूप मे मिलती थी। मेरा और मेरी पत्नी का खर्च ज्यादा न था। सच बात तो यह है कि मुझे यह देखकर काफी अचरज हुआ कि हम लोग इतने कम खर्च मे अपना काम चला लेते है। इसका पता मुझे १९२१ मे लगा और उससे मुझे बडा सतोष हुआ। खादी के कपड़ो और रेल के तीसरे दर्जे के सफर मे ज्यादा खर्च नही पडता। उन दिनो पिताजी के साथ रहने की वजह से मै पूरी तरह यह अनुभव नही कर सका कि इनके अलावा भी घर-गृहस्थी के ऐसे बहुत बेशुमार ख़र्च है जिनका जोड़ बहुत ज्यादा बैठता है। कुछ भी हो, रुपया न रहने के डर ने मुझे कभी नही सताया। मेरा ख़याल है कि जरूरत पड़ने पर मै काफी कमा सकता हू और हम लोग अपना काम बहुत-कम ख़र्च मे चला सकते हैं।

पिताजी के ऊपर हमारा कोई बहुत बडा बोझ नही था। इतना ही नही, अगर उनको इस बात का इशारा भी मिल जाता कि हम अपने को उनपर एक बोझ समझते है तो उन्हे बडा दु ख होता। फिर भी मैं जिस हालत मे था, उसको पसन्द नही करता था और तीन साल तक मै इस मामले पर सोचता रहा, लेकिन मुझे कोई हल नही मिला। मुझे ऐसा काम ढूढ लेने मे

कोई मुश्किल न थी जिससे मैं कमाई कर लेता, लेकिन ऐसा काम कर लेने के मानी थे कि जो सार्वजनिक काम मैं कर रहा था उसे या तो बन्द कर दू या कम कर दू। इस वक्त तक मैं जितना समय दे सकता था वह सब मैंने काग्रेस और म्युनिसिपैलिटी के काम मे लगाया। मुझे यह बात पसन्द नही आई कि मैं रुपया कमाने के लिए उस काम को छोड़ दू। बड़े-बडे औद्योगिक फर्मो ने मुझे रुपये की दृष्टि से बडे-बड़े लाभदायक काम सुझाए, मगर उनको मैंने नामजूर कर दिया। शायद वे इतना ज्यादा रुपया महज मेरी योग्यता के खयाल से उतना नही देना चाहते थे, जितना कि मेरे नाम का फायदा उठाने की दृष्टि से। मुझे बडे-बड़े उद्योग-धन्धेवालो के साथ इस तरह का सम्वन्ध करने की बात अच्छी नही लगी। मेरे लिए यह बात विलकुल असम्भव थी कि मै फिर से वकालत का पेशा अख्तियार करता, क्योकि वकालत के लिए मेरी अरुचि वढ गई थी और वह वढती ही चली गई।

१९२४ की काग्रेस मे एक बात उठी थी कि प्रधान-मत्रियों को वेतन दिया जाना चाहिए। मै उस समय भी काग्रेस का प्रधान-मन्त्री था और मैंने इस विचार का स्वागत किया था। मुझे यह बात विलकुल गलत मालूम होती थी कि किसीसे एक तरफ तो यह उम्मीद की जाय कि वह अपना पूरा वक्त देकर काम करे और दूसरी तरफ उसे कम-से-कम पेट भरने भर को भी कुछ न दिया जाय। नही तो हमे ऐसे ही आदमियो के भरोसे सार्वजनिक काम छोडना पडेगा, जिनके पास खर्च का निजी इन्तजाम हो। लेकिन इस तरह के फुरसतवाले लोग राजनैतिक दृष्टि से हमेशा वाछनीय नही होते और न आप उनको उनके काम के लिए जिम्मेदार ही ठहरा सकते है। काग्रेस ज्यादा नही दे सकती थी, क्योकि हमारी वेतन की दर वहुत कम थी, लेकिन हिन्दुस्तान मे सार्वजनिक फण्डो से वेतन लेने के खिलाफ एक अजीव और विलकुल अनुचित धारणा फैली हुई है, हालाकि सरकारी नौकरी की वावत यह वात

नही है। पिताजी ने इस बात पर बहुत ऐतराज किया कि मैं काग्रेस से वेतन लू। मेरे सहकारी मत्री को भी रुपयो की सख्त जरूरत थी, लेकिन वह भी काग्रेस से वेतन लेना शान के खिलाफ समझते थे। इसलिए मुझे भी उसके बिना ही रहना पडा, हालाकि मैं उसमे कोई बेइज्जती नही समझता था और वेतन लेने को तैयार था।

सिर्फ एक मर्त्तबा मैंने इस मामले मे पिताजी से बाते छेडी और उनसे कहा कि रुपये के लिए परावलम्बी रहना मुझे कितना नापसन्द है। मैंने यह बात जहा तक हो सकता था, बड़े सकोच से और घुमा-फिरा कर कही,जिससे उन्हे बुरा न लगे। उन्होने मुझसे कहा कि "तुम्हारे लिए अपना सारा या अधिकतर समय पब्लिक के काम के बजाय थोडा-सा रुपया कमाने मे लगाना बडी बेवकूफी होगी, जबकि मै (पिताजी) थोड़े दिनो की मेहनत से आसानी से उतना रुपया कमा सकता हू जितना तुम्हारे और तुम्हारी पत्नी के लिए सालभर काफी होगा।" दलील जोरदार थी, लेकिन उससे मुझे सतोष नही हुआ। फिर भी मै पहले की तरह ही काम करता रहा।

: १६ :

नाभा का नाटक

इसके बाद ही मेरे साथ एक ऐसी घटना हुई, जो वड़ी अजीव थी और जिसकी मुझे कोई उम्मीद नही थी।

सिक्ख, और उनमे से खासकर अकाली, पजाव मे वार-वार सरकार के सघर्ष मे आ रहे थे। उनमे एक सुधार-आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था और यह काम हाथ मे लिया गया था कि बदचलन महन्तो को निकालकर उपासना के स्थानो पर और उनकी सम्पत्ति पर कब्जा करके गुरुद्वारों को इस खरावी से

छुडाया जाय। सरकार ने इसमे दखल दिया और सघर्ष हो गया। गुरुद्वारा-आन्दोलन कुछ-कुछ असहयोग से उत्पन्न हुई जागृति के सबब से पैदा हुआ था और अकालियो के तरीके अहिसात्मक सत्याग्रह जैसे थे। यो संघर्ष कई जगहो पर हुए, मगर सबसे बड़ी लड़ाई गुरु-का-बाग की थी, जहां बीसियों सिक्खों ने, जिनमे कई पहले फौज मे काम किये हुए सिपाही भी थे, जरा भी हाथ उठाये बिना या अपने कर्त्तव्य से पीठ फेरे बिना, पुलिस की बर्बरता-पूर्ण मार का सामना किया। इस दृढ़ता और साहस के अद्भुत दृश्य से सारा हिन्दुस्तान चकित हो उठा। सरकार ने गुरुद्वारा-कमेटी को गैरकानूनी करार दे दिया। यह लड़ाई कुछ बरस तक जारी रही और अन्त मे सिक्ख सफल हुए। सम्भवत· काग्रेस की इसमे हमदर्दी थी।

जिस घटना का मै जिक्र करने वाला हूं उसका इस आम सिक्ख-आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नही था। मगर इसमे शक नही कि वह घटना इस सिक्ख हलचल के सबब से ही हुई। पंजाब की दो सिक्ख रियासतो—पटियाला और नाभा के नरेशो मे बडा गहरा ज़ाती झगडा था, जिसका नतीजा यह हुआ कि भारत-सरकार ने महाराजा नाभा को गद्दी से उतार दिया। नाभा रियासत की हुकूमत चलाने को एक अग्रेज एडमिनिस्ट्रेटर (राज्य-व्यवस्थापक) नियुक्त कर दिया गया। सिक्खो ने महाराजा नाभा के गद्दी से उतारे जाने का विरोध किया और उसके विरुद्ध नाभा मे और बाहर दोनों जगह आन्दोलन उठाया। इस आन्दोलन के बीच मे, जैतो नामक स्थान पर, नये एडमिनिस्ट्रेटर-द्वारा अखण्ड पाठ रोक दिया गया। इसका विरोध करने के लिए और रोके हुए पाठ को जारी रखने के स्पप्ट उद्देश्य से, सिक्खों ने जैतो को जत्थे भेजने शुरू किये। पुलिस इन जत्थो को रोकती, मारती, गिरफ्तार करती और आमतौर पर जगल मे एक बीहड़ जगह मे ले जाकर छोड देती थी। मै समय-समय पर इस मार-पीट का हाल पढा करता था। जब मुझे दिल्ली मे विशेष काग्रेस के बाद

ही मालूम हुआ कि दूसरा जत्था जा रहा है और मुझे वहां चलने और वहा क्या होता है यह देखने का निमन्त्रण मिला तो मैंने खुशी से उसको मजूर कर लिया। काग्रेस के दो मेरे साथी भी—आचार्य गिडवानी और मद्रास के के० सन्तानम्—मेरे साथ गए। ठीक वक्त पर पहुचे और जत्थे के पीछे-पीछे उससे अलग रहते हुए चले। जैतो पहुचने पर जत्थे को पुलिस ने रोक दिया और उसी वक्त मुझे भी एक हुक्म मिला, जिसपर अग्रेज एडमिनिस्ट्रेटर के दस्तखत थे कि मै नाभा-इलाके मे दाखिल न होऊ और अगर मै दाखिल हो गया होऊ तो फौरन वापस चला जाऊ। गिडवानी और सन्तानम् को भी ऐसे ही हुक्म दिये गए। मेरे साथियो ने और मैंने पुलिस-अफसर से कहा कि हम जत्थे मे शामिल नही है, सिर्फ दर्शक की तरह है और नाभा के किसी भी कानून को तोडने का हमारा इरादा नहीं है। इसके सिवा जब हम नाभा के इलाके मे ही थे तो उसमे दाखिल न होने का सवाल ही नही हो सकता था और स्पष्टत हम एकदम अदृश्य होकर तो कही चले नही जा सकते थे। जैतो से दूसरी गाड़ी शायद कई घटे वाद जाती थी। इसलिए हमने उससे कहा कि अभी तो हम यही रहना चाहते है। वस, हम फौरन ही गिरफ्तार कर लिये गए और हवालात मे ले जाकर वन्द कर दिये गए।

सारे दिन हम हवालात म वन्द रखे गए और शाम को हमे कायदे से स्टेशन ले जाया गया। सन्तानम् को और मुझको एक ही हथकडी डाली गई—उनकी वाई कलाई मेरी दाहिनी कलाई से वाध दी गई थी और हथकडी की जजीर हमे ले चलनेवाले पुलिसवाले ने पकड ली। गिडवानी के भी हथकडी डाली गई और वह हमारे पीछे-पीछे चले। जैतो के वाजारो से इस प्रकार जाते हुए मुझे वार-वार कुत्तों के जजीर पकड़कर ले जाने की याद आती थी। आरम्भ मे तो हम झल्ला उठे, मगर फिर हमने सोचा कि यह घटना वडी मजेदार है और हम इसका मजा लेने लगे। इसके वाद की हमारी रात अच्छी नही गुजरी। रात को हमारा कुछ

वक्त तो धीमी चालवाली रेल के तीसरे दर्जे के डिब्बे मे बीता जो ठसाठस भरा हुआ था---आधी रात को रास्ते मे शायद गाड़ी भी बदलनी पड़ी थी और रात का बाकी हिस्सा नाभा की एक हवालात मे गुजरा। इस सारे समय और अगले दिन तीसरे पहर तक, जबकि हम अन्त मे नाभा-जेल मे रख दिये गए, वह हथकड़ी और भारी जजीर हमारे साथ ही रही। हम दोनो मे से कोई भी एक-दूसरे के सहयोग के बिना हिल-डुल नही सकते थे।

नाभा-जेल मे हम तीनो एक बहुत ही रद्दी और गन्दी कोठरी मे रखे गये। वह छोटी-सी और सीलवाली कोठरी थी, जिसकी छत इतनी नीची थी कि उस तक हमारा हाथ करीब-करीब पहुंच जाता था। हम जमीन पर ही सोये और मै बीच-बीच मे एकाएक जाग उठता था और तब मालूम होता कि मेरे मुह पर से कोई चूहा या चुहिया निकल गई है।

दो-तीन दिन बाद पेशी के लिए हमे अदालत ले गये और बहुत ही ऊटपटांग जाब्ते से वहा रोज-रोज कार्रवाई चलने लगी। मजिस्ट्रेट या जज बिलकुल अपढ मालूम पड़ता था। नि सदेह अग्रेजी तो वह जानता ही न था, मगर मुझे शक है कि वह अपनी अदालत की जबान उर्दू लिखना भी शायद ही जानता हो। हम उसे एक हफ्ते से ज्यादा देखते रहे और इस अर्से मे उसने एक भी लाइन नही लिखी। अगर उसे कुछ लिखना होता था तो वह सरिश्तेदार से लिखवाता था। हमने बाकायदा अपनी सफाई नही दी। असहयोग-आन्दोलन मे हमे अपनी पैरवी न करने की इतनी आदत हो गई थी कि जहा पैरवी करने की छुट्टी थी वहा भी हमे सफाई देने का खयाल तक प्राय बुरा लगता था।

हमारा मुकदमा दिन-ब-दिन बढ़ता ही गया.हालांकि वह एक काफी सीधा-सा मामला था। अब अचानक एक नई बात और हुई। एक दिन शाम को, उस रोज की अदालत उठ जाने के बाद भी,हमे उसी इमारत मे बिठा रक्खा और बहुत देर मे,करीब रात

बजे, हमे एक दूसरे कमरे मे ले गए, जहां एक शख्स मेज के सामने बैठा था। वहा और भी कई लोग थे। एक आदमी—वह वही पुलिस-अफसर था जिसने हमे जैतो मे गिरफ्तार किया था—खड़ा हुआ और एक बयान देने लगा। मैंने पूछा कि यह कौन-सी जगह है और यहा क्या हो रहा है? मुझे इत्तला दी गई कि यह अदालत है और हमपर षड्यत्र करने का मुकदमा चलाया जा रहा है। यह कार्रवाई उससे बिलकुल भिन्न थी, जिसको अभी तक हम देखते थे और जो नाभा मे न दाखिल होने के हुक्म की उदूली के सिलसिले मे चल रही थी। जाहिरा यह सोचा गया कि इस हुक्म-उदूली की ज्यादा-से-ज्यादा सजा तो सिर्फ छ. माह ही है इसलिए यह हमारे लिए काफी न होगा, लिहाजा और कुछ ज्यादा संगीन इलजाम लगाना जरूरी है। साफ है कि सिर्फ तीन आदमी षड्यत्र के लिए काफी नही थे, इसलिए एक चौथे शख्स को, जिनका हमसे कोई ताल्लुक न था, गिरफ्तार किया गया और उसपर भी हमारे साथ ही मुकदमा चलाया गया। इस अभागे आदमी को, जो एक सिक्ख था, हम नही जानते थे। हा, हमने उसे जैतो जाते वक्त सिर्फ खेत मे देखा भर था।

मेरे बैरिस्टरपन को यह देखकर बड़ा धक्का लगा कि किस अचानक ढग से एक षड्यन्त्र का मुकदमा चलाया जा रहा है। मामला तो बिलकुल झूठा था ही, मगर शिष्टता के खातिर भी तो कुछ जाब्ते की पाबन्दी होनी चाहिए। मैंने जज से कहा कि हमें इसकी पहले से कुछ भी इत्तिला नही दी गई और हम अपनी सफाई का इन्तजाम भी करना चाहेगे। मगर इसकी उसने कुछ भी चिता न की। यह नाभा का निराला तरीका था। अगर हमे सफाई के लिए कोई वकील करना हो तो वह नाभा का ही होना चाहिए। जब मैंने कहा कि मै बाहर का कोई वकील करना चाहूगा तो मुझे जवाब मिला कि नाभा के कायदों मे इसकी इजाजत नही है। इससे नाभा के जाब्ते की विचित्रताओ का हमे और भी ज्ञान हुआ। हमें

एक तरह की नफरत होगई और हमने जज से कह दिया कि जो उसके जी मे आवे करे, हम लोग इस कार्रवाई मे कोई हिस्सा न लेगे, किन्तु मै इस निर्णय पर पूरी तरह कायम न रह सका। अपने बारे मे अत्यन्त आश्चर्यजनक झूठी बाते सुनकर चुप रहना मुश्किल था और इसलिए कभी-कभी हम गवाहों के बारे मे मुख्तसर तौर पर मौके-मौके से अपनी राय जाहिर करते जाते थे। हमने अदालत को असली वाकयात के बारे मे एक तहरीरी बयान दिया। यह दूसरा जज, जो षड्यन्त्र का मुकदमा चला रहा था, पहले से ज्यादा शिक्षित और समझदार था।

ये दोनो मुकदमे चलते रहे और हम दोनों अदालतों मे जाने का रोज इन्तजार किया करते थे, क्योकि इससे थोड़ी देर के लिए ही सही जेल की गदी कोठरी से छुटकारा तो मिल जाता था। इसीबीच एडमिनिस्ट्रेटर की तरफ से जेल का सुपरिण्टेण्डेण्ट हमारे पास आया और उसने हमसे कहा कि अगर हम अफसोस जाहिर कर दे और नाभा से चले जाने का वचन दे दे तो हमपर से मुकदमा उठा लिया जा सकता है। हमने कहा कि हम किस बात का अफसोस जाहिर करे? हमने कोई ऐसी बात नही की है, बल्कि उल्टे रियासत को हमसे माफी मागनी चाहिए। हम किसी किस्म का वचन देने को भी तैयार नही है।

गिरफ्तारी के करीब दो हफ़्ते बाद आखिर हमारे मुकदमे ख़तम हुए। यह सारा वक्त इस्तगासे मे ही लगा, क्योंकि हम तो अपनी पैरवी कर ही नही रहे थे। ज्यादा वक्त तो देर-देर तक इन्तजार करने मे गया, क्योकि जहा-कही जरासी भी कठिनाई पैदा होती थी, वही कार्रवाई मुल्तवी करदी जाती थी या उसकी बाबत किसी अन्दरूनी अफसर से, जो शायद अंग्रेज एडमिनिस्ट्रेटर ही था, पूछने की जरूरत होती थी। आख़िरी दिन, जबकि इस्तगासे की तरफ से मामला ख़तम किया गया, हमने भी अपने तहरीरी बयान दे दिये। पहले जज ने कार्रवाई ख़त्म कर दी

और यह जानकर हमे बडा ताज्जुब हुआ कि वह थोड़ी ही देर में फिर वापस आ गया और उसके साथ उर्दू मे लिखा हुआ एक बडा भारी फैसला था। यह जाहिर है कि यह भारी फैसला इतने थोड़े अर्से मे नही लिखा जा सकता था। यह फैसला हमारे बयान देने के पहले ही तैयार हो गया था। फैसला पढकर सुनाया नही गया। हमे सिर्फ इतना कह दिया गया कि हमे नाभा इलाके मे से चले जाने के हुक्म की उदूली करने के जुर्म मे छह माह की सजा, जो इस जुर्म की ज्यादा-से-ज्यादा सजा थी, दी गई है।

उसी रोज षड्यन्त्र के मुकदमे मे भी हमे, ठीक-ठीक मै भूल गया हू, या तो अठारह महीने की या दो साल की सजा मिली। यह सजा छह माह की सजा के अलावा हुई। इस तरह हमे कुल दो या ढाई साल की सजा दे दी गई।

मेरे पिताजी को देशी रियासतों का हाल कुछ-कुछ मालूम था, इसलिए वह नाभा मे मेरी एकाएक गिरफ्तारी से बहुत परेशान हुए। उन्हे सिर्फ गिरफ्तारी का वाकया मालूम हुआ, मगर इसके अलावा और कोई खबर बाहर न जा पाई। अपनी परेशानी मे उन्होने मेरे समाचार जानने के लिए वाइसराय को भी तार दे डाला। नाभा मे मुझसे मिलने के बारे मे उनके रास्ते मे बहुत मुश्किले खड़ी कर दी गई। मगर आखिर उन्हे जेल मे मुझसे मुलाकात करने की इजाजत मिल गई, परन्तु वह मेरी कोई मदद नही कर सकते थे, क्योकि मै अपनी सफाई भी पेश नही कर रहा था। मैने उनसे प्रार्थना की कि वह इलाहाबाद वापस चले जाय और कोई चिन्ता न करे। वह लौट गये, लेकिन कपिलदेव मालवीय को जो हमारे एक युवक साथी-वकील है, नाभा मे मुकदमे की कार्रवाई पर ध्यान रखने को छोड़ गए। नाभा की अदालतो को थोडे दिन देखकर कपिलदेव की क़ानून और जाब्ते-सबधी जानकारी मे काफी वृद्धि हुई होगी। पुलिस ने खुली अदालत मे उनके कुछ क़ागजात जबर्दस्ती छीन लेने की भी कोशिश की थी।

इस तरह हमारा मुकदमा खत्म हुआ और हमे सजा हो गई। फैसलो मे क्या लिखा था यह हमे मालूम नही, मगर इस असल बात से कि हमे लम्बी सजा मिली है, हमारी झुझलाहट कुछ कम हुई। हमने फैसलो की नकले मागी, मगर हमे जवाब मिला कि इसके लिए बाकायदा अर्जी दो।

उसी शाम को जेल मे सुपरिण्टेण्डेण्ट ने हमे बुलाया, और उसने हमे जाब्ता-फौजदारी की रू से एडमिनिस्ट्रेटर का एक आदेश दिखाया, जिसमे हमारी सजाए स्थगित कर दी गई थी। उसमे कोई शर्त नही रखी गई थी। इसका कानूनी नतीजा यह था कि जहा तक हमारा ताल्लुक था हमारी सजाए खत्म हो गई। फिर सुपरिण्टेण्डेण्ट ने एक दूसरा हुक्म, जिसका नाम एक्जीक्यूटिव आर्डर था, दिखाया। यह भी एडमिनिस्ट्रेटर का जारी किया हुआ था। उसमे यह आदेश था कि हम नाभा छोड़कर चले जाय और खास इजाजत लिये बिना रियासत मे न लौटे। मैने दोनो हुक्मो की नकले मागी, मगर वे हमे नही दी गई। तब हमे रेलवे स्टेशन भेज दिया गया और हम वहा रिहा कर दिये गए। नाभा मे हम किसीको भी नही जानते थे और रात को शहर के दरवाजे भी बन्द हो गये थे। हमे पता लगा कि अभी अम्बाला को एक गाडी जानेवाली है और हम उसीमे बैठ गए। अम्बाला से मै दिल्ली और वहा से इलाहाबाद चला आया।

हम तीनो—गिडवानी, सन्तानम् और मै— नाभा-जेल की कोठरी से एक दु खदाई साथी अपने साथ ले आये। वह था विषम ज्वर का कीटाणु, क्योकि हम तीनो पर ही विषम ज्वर का हमला हुआ। मेरी बीमारी ज़ोर की थी और शायद खतरनाक भी थी, मगर उसकी मियाद दोनो से कम थी और मै सिर्फ तीन या चार हफ्ते ही बिस्तर पर रहा। मगर बाकी दोनों तो लम्बे अर्से तक बहुत बुरी हालत मे बीमार पड़े रहे।

: १७ :

एक नया अनुभव

जनवरी १९२४ मे इलाहाबाद मे एक नये ढंग का तजरबा हुआ। मै अपनी याददाश्त से यह लिख रहा हूं। मुमकिन है कि तारीखो के सबंध मे कुछ भूल और गडबड़ हो। मै समझता हू वह कुम्भ या अर्द्धकुम्भ के मेले का साल था। लाखो यात्री सगम यानी त्रिवेणी नहाने आते है। गगा-घाट यो कोई एक मील चौडा है, मगर जाडे मे धारा सिकुड़ जाती है और दोनो तरफ बालू का वड़ा मैदान छोड़ देती है जो कि यात्रियो के ठहरने के लिए वडा उपयोगी हो जाता है। अपने इस पाट मे गगा अक्सर अपना बहाव वदलती रहती है। १९२४ मे गगा की धारा इस तरह हो गई थी कि यात्रियो के लिए नहाना अवश्य ही खतरनाक था। कुछ पावन्दिया और अहतियात लगाकर और एक वक्त मे नहाने वालो की तादाद मुकर्रर करके यह खतरा कम किया जा सकता था।

मुझे इस मामले मे किसी किस्म की दिलचस्पी न थी, क्योकि ऐसे पर्वो के अवसर पर गगा नहाकर पुण्य कमाने की मुझे तो चाह न थी, लेकिन मैने अखवारो मे पढा कि इस मामले मे प० मदनमोहन मालवीय और प्रान्तीय सरकार के वीच एक चर्चा छिड गई है, क्योकि प्रान्तीय सरकार ने एक ऐसा फरमान निकाल दिया था कि कोई सगम पर न नहाने पाए। मालवीयजी ने इसपर ऐतराज किया, क्योकि धार्मिक दृष्टि से तो सगम पर नहाने का ही महत्त्व था।

इधर सरकार का अहतियात रखना भी ठीक ही था कि जिससे जान का खतरा न रहे, लेकिन सदा की तरह उसने निहायत ही वेवकूफी और चिढा देने वाले ढग से इस सम्वन्ध मे कार्रवाई की थी।

कुम्भ के दिन सुवह ही मै मेला देखने गया। मेरा कोई इरादा नहाने का न था। गंगा-किनारे पहुचने पर मैने सुना कि मालवीय-

जी ने जिला मजिस्ट्रेट को अपने पत्र मे एक हल्की सी चेतावनी दे दी है, जिसमे त्रिवेणी मे नहाने की इजाजत मागी गई है। मालवीयजी गरम हो रहे थे और वातावरण मे क्षोभ फैला हुआ था। जिला-मजिस्ट्रेट ने इजाजत नही दी तब मालवीयजी ने सत्याग्रह करने का निश्चय किया और कोई दो सौ लोगो को साथ लेकर वह सगम की तरफ वढे। इन घटनाओ से मेरी दिलचस्पी थी और मै उसी वक्त जोश मे आकर सत्याग्रही-दल मे शामिल हो गया। मैदान के उस पार लकडियो का एक जबर्दस्त घेरा वना दिया गया था कि लोग सगम तक पहुचने से बचे। जब हम इस घेरे तक पहुचे तो पुलिस ने हमे रोका और एक सीढी, जो हम साथ लिये हुए थे, छीन ली। हम तो थे अहिसात्मक सत्याग्रही, इसलिए उस घेरे के पास वालू मे शान्ति के साथ बैठ गए। सुबह भर और दोपहर के भी कुछ घटे हम उसी तरह बैठे रहे। एक-एक घटा वीतने लगा। धूप की तेजी वढती जा रही थी। पैदल और घुडसवार पुलिस हमारे दोनो तरफ खडी थी। मै समझता हू कि सरकारी घुड-सेना भी वहा मौजूद थी। हम वहुतेरो का धीरज छूटने लगा और हमने कहा कि अब तो कुछ-न-कुछ फैसला करना ही चाहिए। मै मानता हू कि अधिकारी भी उकता उठे थे और उन्होने कदम आगे वढाने का निश्चय किया। घुड-सेना को कुछ आर्डर दिया। इस समय मुझे लगा (मै नही कह सकता कि वह सही था) कि वे हमपर घोड़े फेकेगे और यो हमको वुरी तरह खदेड़ेगे। घुडसवारो से इस तरह रौदे जाने का खयाल मुझे अच्छा न लगा और वहा वैठे-बैठे मेरा जी भी उकता उठा था। मैने झट से अपने नजदीक वाले को सुझाया कि हम इस घेरे को ही क्यो न फाद जाय? और मै उसपर चढ गया। तुरन्त ही वीसो आदमी उसपर चढ गये और कुछ लोगो ने तो उसकी वल्लिया भी निकाल डाली, जिससे एक खासा रास्ता वन गया। किसी ने मुझे एक राष्ट्रीय झडा दे दिया। जिसे मैने उस घेरे के सिरे पर खोस दिया, जहां कि मै वैठा हुआ था। मै अपने पूरे

रग मे था और खूब मगन हो रहा था और लोगो को उसपर चढते, उसके बीच मे घुसते हुए और घुडसवारो को उन्हे हटाने की कोशिश करते देख रहा था। यहा मुझे यह जरूर कहना चाहिए कि घुडसवारो ने जितना हो सका इस तरह अपना काम किया कि किसी को चोट न पहुचे। वे अपने लकड़ी के डडो को हिलाते थे और लोगो को उनसे धक्का देते थे। मगर किसी को चोट नही पहुचाते थे। उस समय मुझे वलवे के समय के घेरे के दृश्य का कुछ-कुछ स्मरण हो आया।

आखिर मै दूसरी तरफ उतर पडा। इतनी मेहनत के कारण गर्मी बढ गई थी, सो मैने गगा मे गोता लगा लिया। जव वापस आया तो मुझे यह देखकर अचरज हुआ कि मालवीयजी और दूसरे लोग अबतक जहा-के-तहा बैठे हुए है घुडसवार और पैदल पुलिस सत्याग्रहियो और घेरे के बीच कन्धे-से-कन्धा भिडाकर खडी हुई थी। सो मै (जरा टेढे-मेढे रास्ते से निकल कर) फिर मालवीयजी के पास जा बैठा। हम कुछ देर तक बैठे रहे। मैने देखा कि मालवीयजी मन-ही-मन भिन्नाये हुए थे और ऐसा मालूम होता था कि वह अपने मन का आवेश वहुत रोक रहे थे। एकाएक विना किसी को कुछ पता दिये उन पुलिसवालो और घोडो के वीच अद्‌भुत रीति से निकल कर उन्होने गोता लगा लिया। यो तो किसी भी शख्स के लिए इस तरह गोता लगाना आश्चर्य की वात होती, लेकिन मालवीयजी जैसे वूढे और दुर्वल शरीर व्यक्ति के लिए तो ऐसा करना वहुत ही चकित कर देने वाला था। खैर, हम सवने उनका अनुकरण किया। हम सव पानी मे कूद पडे। पुलिस और घुडसेना ने हमे पीछे हटाने की थोडी-वहुत कोशिश की, मगर वाद को रुक गई। थोडी देर वाद वह वहा से हटा ली गई।

हमने सोचा था कि सरकार हमारे खिलाफ कोई कार्रवाई करेगी। मगर ऐसा कुछ नही हुआ। शायद सरकार [illegible]लवी[illegible]जी के खिलाफ कुछ करना नही चाहती थी और [illegible] पी[illegible] छुटभैये भी अपने-आप वच गए।

: १८ :

पिताजी और गांधीजी

१९२४ के शुरू मे यकायक खबर आई कि गाधीजी जेल मे बहुत ज्यादा बीमार हो गए है, जिसकी वजह से वह अस्पताल पहुचा दिये गए है और वहा उनका आपरेशन हुआ है। इस खबर को सुनकर चिन्ता के मारे हिन्दुस्तान सन्न हो गया। हम लोग डर से परेशान थे और दम साधकर खबरो का इन्तजार करते थे। अखीर मे सकट गुजर गया और देश के तमाम हिस्सो से लोगो की टोलिया उन्हे देखने के लिए पूना पहुचने लगी। इस वक्त तक वह अस्पताल मे ही थे। कैदी होने की वजह से उनके ऊपर गारद रहती थी; लेकिन कुछ दोस्तो को उनसे मिलने की इजाजत थी। मै और पिताजी उनसे अस्पताल मे ही मिले।

अस्पताल से वह वापस जेल नही ले जाये गए। जब उनकी कमजोरी दूर हो रही थी तभी सरकार ने उनकी बाकी सजा रद्द करके उन्हे छोड़ दिया। उस वक्त जो छ. साल की सजा उन्हे मिली थी उसमे से करीब-करीब दो साल की वह काट चुके थे। अपनी तन्दुरुस्ती ठीक करने के लिए वह बम्बई के नजदीक समुद्र के किनारे जुहू चले गए।

हमारा परिवार भी जुहू जा पहुचा और वही समुद्र के किनारे एक छोटे-से बगले मे रहने लगा। हम लोगो ने कुछ हफ़्ते वही गुजारे। अर्से के बाद अपने मन के मुताबिक छुट्टी मिली थी, क्योकि मै वहा मजे से तैर सकता था, दौड सकता था और समुद्र-तट की बालू पर घुडदौड कर सकता था। लेकिन हमारे वहा रहने का असली मतलब छुट्टिया मनाना नही था, बल्कि गाधीजी के साथ देश की समस्याओ पर चर्चा करना था। पिताजी चाहते थे कि गाधीजी को यह बता दे कि स्वराजी क्या चाहते है और उन

तरह वह गाधीजी की सक्रिय सहानुभूति नही तो कम-से-कम उनका निष्क्रिय सहयोग जरूर हासिल कर ले। मै भी इस बात से चिंतित था कि जो मसले मुझे परेशान कर रहे है, उनपर कुछ रोशनी पड़ जाय। मै यह जानना चाहता था कि उनका आगे का कार्यक्रम क्या होगा ?

जहा तक स्वराजियो से ताल्लुक है वहा तक उनको जुहू की बातचीत से गाधीजी को अपनी तरफ कर लेने मे या किसी हद तक भी उनपर असर डालने मे कोई कामयाबी नही मिली। यद्यपि बातचीत बडे दोस्ताना ढग से और बहुत ही शराफत के साथ होती थी, लेकिन यह बात तो रही ही कि आपस मे कोई समझौता नही हो सका। यह तय रहा कि उनकी राय एक-दूसरे से नही मिलती और इसी मतलब के बयान अखबारो में छपा दिये गए।

मै भी जुहू से कुछ हद तक निराश होकर लौटा। क्योकि गांधीजी से मेरी एक भी शका का समाधान नही हुआ। अपने मामूली तरीके से उन्होने आगे की बात सोचने या लम्बे अर्से के लिए कोई कार्यक्रम बनाने से इन्कार कर दिया। उनका कहना था कि हमे धीरज के साथ लोगो की सेवा का काम करते रहना चाहिए। काग्रेस के रचनात्मक और समाज-सुधारक कार्यक्रम को पूरा करना चाहिए और लडाकू काम के समय का इतजार करना चाहिए।

लेकिन अखीर मे गाधीजी ने स्वराजियो से अपनी पटरी बैठा ली। उन्होने कौसिलो मे स्वराजियो के काम को लगभग अपना आशीर्वाद दे दिया, लेकिन खुद उससे अलग रहे। यह कहा जाता था कि गाधीजी राजनीति से अलग हो गये है और ब्रिटिश सरकार और उसके अफसर यह समझते थे कि उनकी लोकप्रियता कम हो रही है। और उनमे कुछ दम नही रहा। इस तरह की बाते समय के अनुसार उचित हेर-फेर के साथ बार-

बार दुहराई गई है। लेकिन जबसे गाधीजी हिन्दुस्तान के राजनैतिक मैदान मे आये तबसे उनकी लोकप्रियता बराबर बढ़ती चली गई है। और यह सिलसिला अभी तक ज्यो-का-त्यों जारी है। लोग गाधीजी की इच्छाये पूरी भले ही न कर सके, लेकिन उनके दिलो मे गाधीजी के लिए बराबर आदर बना हुआ है। लेकिन यह बात सच है कि पढे-लिखे लोगो मे गाधीजी की लोकप्रियता घटती-बढ़ती रहती है। जब आगे बढने का जोश आता है तब वे उनके पीछे-पीछे चलते है और जब उसकी लाजिमी प्रतिक्रिया होती है तब वे गांधीजी की नुक्ताचीनी करने लगते है। लेकिन इस हालत मे भी पढे-लिखो की बहुत बड़ी तादाद गाधीजी के आगे सिर झुकाती है। बहुत कुछ हद तक तो इसलिए कि गाधीजी के प्रोग्राम के सिवा देश के सामने और कोई कारगर प्रोग्राम ही नही है।

मेरे पिताजी और गाधीजी मे पुरानी दोस्ती फिर कायम हो गई और वह और भी ज्यादा बढ गई। एक-दूसरे से उनके मत चाहे कितने ही न मिलते हों लेकिन दोनो के दिलो मे एक दूसरे के लिए सद्भाव और आदर था।

पिताजी गाधीजी का आदर इसलिए नही करते कि वह कोई साधु या महात्मा है, बल्कि इसलिए कि वह मर्द है। वह खुद मजबूत तथा कभी न झुकनेवाले थे, इसलिए गाधीजी की आत्म-शक्ति की तारीफ करते थे। क्योकि यह साफ मालूम होता था कि इस दुबले-पतले शरीरवाले छोटे-से आदमी मे इस्पात की-सी मजबूती है, कुछ चट्टान-जैसी दृढ़ता है जो शारीरिक ताकतों के सामने नही झुकती, फिर चाहे ये ताकते कितनी ही बडी क्यो हो। यद्यपि उनकी शक्ल-सूरत, उनका नंगा शरीर, उनकी छोटी धोती ऐसी न थी कि किसी पर बहुत धाक जमे लेकिन उनमे कुछ पुरुषसिहता और ऐसी बादशाहियत जरूर है जो दूसरों को खुशी-खुशी उनका हुक्म बजा लाने को मजबूर कर

देती है। यद्यपि उन्होने जानबूझकर नम्रता और निरभिमानता ग्रहण की थी, फिर भी शक्ति व अधिकार उनमे लवालव भरे हुए थे और वह इस बात को जानते भी थे और कभी-कभी तो वह बादशाह की तरह हुक्म देते थे जिसे पूरा करना ही पडता। उनकी शान्त लेकिन गहरी आखे आदमी को जकड लेती और उसके दिल के भीतर तक की बाते खोज लेती। उनकी साफ-सुथरी आवाज मीठी गूज के साथ दिल के अन्दर घुसकर हमारे भावो को जगाकर अपनी तरफ खीच लेती। उनकी बात सुननेवाला चाहे एक शख्स हो या हजार हो, उनका चुम्बक का-सा आकर्षण उन्हे अपनी तरफ खीचे बिना नही रहता और हरेक सुननेवाला मन्त्र-मुग्ध हो जाता था। इस भावना का दिमाग से बहुत कम ताल्लुक होता था। गाधीजी दिमाग को अपील करने की बिलकुल उपेक्षा करते हो सो बात नही। फिर भी इतना निश्चित है कि दिमाग व तर्क को दूसरा नम्बर मिलता था। मन्त्र-मुग्ध करने का यह जादू न तो बोलने की शक्ति से होता था और न मधुर शब्दरचना के मोहक प्रभाव से। उनकी भाषा हमेशा सरल और अर्थवती होती थी, अनावश्यक शब्दो का व्यवहार शायद ही कभी होता हो। एकमात्र उनकी पारदर्शक सच्चाई और उनका व्यक्तित्व ही दूसरो को जकड लेता है। उनसे मिलने पर यह ख़याल जम जाता है कि उनके भीतर प्रचण्ड आत्मशक्ति का भडार भरा हुआ है। शायद यह भी हो कि उनके चारो तरफ ऐसी परम्परा बन गई है, जो उचित वातावरण पैदा करने मे मदद देती है। हो सकता है कि कोई अजनबी आदमी, जिसे उन परम्पराओ का पता न हो और गाधीजी के आसपास की हालतो से जिसका मेल न खाता हो, उनके जादू के असर मे न आवे या इस हद तक न आवे, लेकिन फिर भी गाधीजी के बारे मे सबसे ज्यादा कमाल की बात यही थी और यही है कि वे अपने विरोधियो को या तो सोलहो आने जीत लेते है या कम-से-कम उनको नि शस्त्र जरूर कर देते है।

यद्यपि गाधीजी प्राकृतिक सौन्दर्य की बहुत तारीफ करते है,

लेकिन मनुष्य की बनाई चीजो मे वह कला या खूबसूरती नही देख सकते। उनके लिए ताजमहल जबरदस्ती ली हुई बेगार की प्रतिमूर्ति के सिवा और कुछ नही। उनमे सूघने की शक्ति की भी बहुत कमी है। फिर भी उन्होने अपने तरीके से जीवन-यापन की कला खोज निकाली है और अपनी जिन्दगी को कलामय बना लिया है। उनका हरेक इशारा सार्थक और खूबी लिये हुए होता है और खूबी यह है कि बनावट का नामोनिशान नही। उनमे न कही नुकीलापन है, न कटीलापन। उनमे उस अशिष्टता या हलकेपन का निशान तक नही, जिसमे दुर्भाग्य से हमारे मध्यमवर्ग के लोग डूबे रहते है। भीतरी शान्ति पाकर वह दूसरो को भी शान्ति देते है। और जिन्दगी के कटीले रास्ते पर मजबूत और निडर कदम रखते हुए चले जाते है।

मगर मेरे पिताजी गाधीजी से कितने भिन्न थे! उनमे भी व्यक्तित्व का बल था और बादशाहियत की मात्रा थी। जिस किसी समाज मे वह जा बैठते उसके केन्द्र वही बन जाते। जैसा कि अग्रेज जज ने पीछे कहा था, वह जहा-कही भी जाकर बैठते वही मुखिया बन जाते। वह न तो नम्र ही थे न मुलायम ही, और गाधीजी के उलटे वह उन लोगो की खबर लिये बिना नही रहते थे जिनकी राय उनके खिलाफ होती थी। उन्हे इस बात का भान रहता था कि उनका मिजाज शाही है। उनके प्रति या तो आकर्षण होता था या तिरस्कार। उनसे कोई शख्स उदासीन या तटस्थ नही रह सकता था। हरेक को या तो उन्हे पसन्द करना पडता था या नापसन्द। चौडा ललाट, चुस्त होठ और सुनिश्चित ठोडी। इटली के अजायबघरो मे रोमन सम्राटो की जो अर्द्ध-मूर्त्तियां है उनसे उनकी शक्ल बहुत काफी मिलती थी। इटली मे बहुत-से मित्रो ने जो उनकी तस्वीर देखी तो उन्होने भी इस साम्य का जिक्र किया था। खास तौर पर उनकी जिन्दगी के पिछले सालो मे जबकि उनका सिर सफेद बालो से भर गया था, उनमे एक खास किस्म की शालीनता और भव्यता आ गई थी जो इस दुनिया मे आजकल

बहुत कम दिखाई देती है। मेरे सिर पर तो बाल नही रहे, पर उनके सिर के बाल अखीर तक बने रहे। मै समझता हू कि शायद मै उनके साथ पक्षपात कर रहा हू, लेकिन इस सकीर्णता और कमजोरी से भरी हुई दुनिया मे उनकी शरीफाना हस्ती की रह-रहकर याद आती है। मै अपने चारों तरफ उनकी-सी अजीब ताकत और उनकी-सी शान-शौकत को खोजता हू, लेकिन बेकार।

असेम्बली का काम पिताजी के स्वभाव के उसी तरह अनुकूल था जिस तरह बतख का पानी मे तैरना। वह काम उनकी कानूनी और विधान-सम्बन्धी तालीम के लिए मौजू था। सत्याग्रह तथा उसकी शाखाओ के खेल के नियम तो वह नही जानते थे; लेकिन इस खेल के नियम-उपनियमो से पूरी तरह वाकिफ थे। उन्होने अपनी पार्टी मे कठोर अनुशासन रक्खा और दूसरे दलो और व्यक्तियो को भी इस बात के लिए राजी कर लिया कि वे स्वराज-पार्टी की मदद करे। लेकिन जल्दी ही उन्हे अपने ही लोगों से मुसीबत का सामना करना पडा। स्वराज-पार्टी को अपने शुरू के दिनो मे काग्रेस मे ही अपरिवर्तनवादियो से लड़ना पडता था और इसलिए काग्रेस के भीतर पार्टी की ताकत बढाने के लिए बहुत से ऐसे-वैसे लोग भर्ती कर लिये गए थे। इसके बाद चुनाव हुआ, जिसके लिए रुपये की जरुरत थी। रुपये पैसे-वालो से ही आ सकते थे, इसलिए इन पैसे वालो को खुश रखना पडता था। उनमे से कुछ को स्वराजी उम्मेदवार होने के लिए भी कहा गया था।

इन सब बातो से पार्टी शुरू से ही कमजोर हो गई थी। कौसिल और असेम्बली के काम मे इस बात की रोज ही जरुरत पडती थी कि दूसरो से, और ज्यादा माडरेट दलो के साथ समझौते किये जाय और इसके फलस्वरुप कोई भी जिहादी भावना या सिद्धान्त कायम नही रह सकते थे। धीरे-धीरे पार्टी का अनुशासन

और रवैया बिगड़ने लगा और उसके कमजोर तथा अवसरवादी मेम्बर मुश्किले पैदा करने लगे। स्वराज-पार्टी खुल्लमखुल्ला यह एलान करके कौंसिलो मे गई थी कि "हम भीतर जाकर मुखालिफत करेगे।" लेकिन इस खेल को तो दूसरे भी खेल सकते थे और सरकार ने स्वराजी मेम्बरों मे फूट व विरोध पैदा करके इस खेल मे अपना हाथ डालने की ठान ली। पार्टी के कमजोर मेम्बरों के रास्ते मे तरह-तरह के तरीको से खास रिआयतो और ऊचे ओहदो के लालच दिये जाने लगे। उन्हे सिर्फ इन चीजो मे से जिसे वे चाहें चुन लेना था। उनकी लियाकत, उनकी विवेकशीलता तथा उनकी राजनीति-चतुरता आदि गुणो की तारीफ होने लगी। उनके चारो तरफ एक आनन्दमय तथा सुखप्रद वातावरण पैदा कर दिया गया, जो खेतो व बाजार की धूल और शोरोगुल से बिलकुल जुदा था।

स्वराजियो का स्वर धीमा पड गया। कोई किसी सूबे मे से तो कोई असेम्बली मे से विरोधी पक्ष की तरफ खिसकने लगे। पिताजी बहुत चिल्लाये और गरजे। उन्होने कहा, मै सडे हुए अग को काट फेकूगा; लेकिन जब सडा हुआ अग खुद ही शरीर छोड़कर चले जाने को उत्सुक हो तब इस धमकी का कोई बडा असर नही हो सकता था। कुछ स्वराजी मिनिस्टर हो गये और कुछ बाद को सूबो मे गवर्नर की कार्यकारिणी के मेम्बर।

दिसम्बर १९२४ मे कांग्रेस का जलसा बेलगांव मे हुआ और गाधीजी उसके सभापति थे। उनके लिए काग्रेस का सभापति होना एक भोंडी-सी बात थी, क्योकि वह तो बहुत अर्से से उसके स्थायी सभापति से भी बढकर थे। उनका प्रधान की हैसियत से दिया हुआ भाषण मुझे पसन्द नही आया। मुझे उसमे ज़रा भी स्फूर्ति नही मिली। जलसा खत्म होते ही, गाधीजी के कहने पर मै फिर अगले साल के लिए अ० भा० काग्रेस कमेटी का कार्यकारी मत्री चुन लिया गया। अपनी इच्छाओ के विरुद्ध धीरे-धीरे

मै काग्रेस का लगभग स्थायी मंत्री वनता जा रहा था।

१९२५ की गर्मियो मे पिताजी बीमार थे। उनका दमा वहुत ज्यादा तकलीफ दे रहा था। वह परिवार के साथ हिमालय मे डलहौजी चले गए। वाद को कुछ अर्से के लिए मै भी उन्हीके पास जा पहुचा। हम लोगो ने हिमालय के भीतर डलहौजी से चम्वा तक का सफर किया। जव हम लोग चम्वा पहुचे तव जून का कोई दिन था और हम लोग पहाडी रास्तों पर सफर करके कुछ थक गये थे। इसी समय एक तार आया, उससे मालूम हुआ कि देशवधु दास गुजर गए। वहुत देर तक पिताजी शोक के भार से झुके वैठे रहे, उनके मुह से एक शब्द तक नही निकला। यह आघात उनके लिए बहुत ही निर्दयतापूर्ण था। मैंने उन्हे इतना दुखी होते हुए कभी नही देखा था। वह व्यक्ति जो उनके लिए दूसरे सव लोगो से ज्यादा घनिष्ट और प्यारा साथी हो गया था, यकायक उन्हे छोडकर चला गया और सारा बोझा उनके कन्धो पर छोड गया। वह बोझा वैसे ही वढ रहा था, वह तथा देशबन्धु दोनो ही उससे तथा लोगो की कमजोरियो से ऊव रहे थे। फरीदपुर-काफ्रेस मे देशबन्धु ने जो आखिरी भाषण दिया वह कुछ थके हुए-से व्यक्ति का भाषण था।

हम दूसरे ही दिन सुवह चम्वा से चल दिये और पहाडो पर चलते-चलते डलहौजी पहुचे, वहा से कार-द्वारा रेलवे स्टेशन पर, फिर इलाहावाद और वहाँ से कलकत्ता।

: १९ :

साम्प्रदायिकता का दौरदौरा

नाभा-जेल से लौटने पर १९२३ के जाडे मे मै वीमार पड गया। मियादी वुखार से यह कुश्ती मेरे लिए एक नया तजरवा था। मुझे शारीरिक कमजोरी से या वुखार से चारपाई पर पडा

रहने या वीमार पडने की आदत न थी। मुझे अपनी तन्दुरुस्ती पर कुछ नाज था और हिन्दुस्तान मे आम तौर पर जो वीमार वने रहने का रिवाज-सा पडा हुआ था उसके मै खिलाफ था। अपनी जवानी और अच्छे शरीर की वजह से मैने बीमारी पर पार पा लिया, लेकिन सकट के टल जाने पर मुझे कमजोरी की हालत मे चारपाई पर पडे रहना पडा और अपनी तन्दुरुस्ती भी धीरे-धीरे हासिल करनी पडी। इन दिनो मै अपने आसपास की चीजो और अपने रोजमर्रा के कामो से अजीव तरह का विराग-सा अनुभव करता था और उन्हे तटस्थता से देखता रहता था। मुझे ऐसा मालूम पडता था कि जगल मे मै पेडो की आड़ मे से बाहर निकल आया हू और अव तमाम जगल को अच्छी तरह देख सकता हू। मेरा दिमाग जितना साफ और ताकतवर इन दिनो था उतना पहले कभी न था। मै समझता हू कि यह तजरबा या इस तरह का कोई दूसरा तजरवा उन सव लोगो को हुआ होगा जिन्हे सख्त वीमारी मे से होकर गुजरना पडा है। लेकिन मेरे लिए तो वह एक तरह का आध्यात्मिक अनुभव-सा हुआ। मै आध्यात्मिक शब्द का इस्तेमाल इसके सकीर्ण धर्म के मानी मे नही करता। इस तजरवे का मुझपर वहुत काफी असर पड़ा। मैने महसूस किया कि मै अपनी राजनीति के भावुकता-मय वायुमण्डल से ऊपर उठ गया हू और जिन ध्येयो तथा शक्तियो ने मुझे कार्य के लिए प्रेरित किया उन्हे ज्यादा तटस्थता के साथ देख सकता हू। इस स्पष्टता के फल-स्वरूप मेरे दिल मे तरह-तरह के तर्क-वितर्क उठने लगे, जिनका कोई ठीक जवाव नही मिलता था, लेकिन मै जीवन और राजनीति को धार्मिक दृष्टि से देखने के दिन-पर-दिन अधिक विरुद्ध होता गया। मै अपने उस तजरवे की वावत ज्यादा नही लिख सकता। वह एक ऐसा ख़याल था जिसे मै आसानी से जाहिर नही कर सकता। यह वात ग्यारह वर्ष पहले हुई थी और अव तो उसकी मेरे मन पर वहुत हलकी छाप रह गई है लेकिन इतनी वात मुझे अच्छी तरह याद है कि मेरे ऊपर और मेरे विचार

करने के तरीके पर उसका टिकाऊ असर पडा और अगले दो या तीन साल मैने अपना काम कुछ हद तक तटस्थता से किया।

हा, बेशक कुछ हद तक तो यह बात उन घटनाओ की वजह से हुई जो बिलकुल मेरी ताकत के बाहर थी और जिनमे मै फिट नहीं होता था। कुछ राजनैतिक परिवर्तनो का जिक्र मै पहले ही कर चुका हू। उससे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात थी हिन्दू-मुसलमानों के सम्बन्धो का दिन-पर-दिन खराब होना, जो खास तौर पर उत्तरी हिन्दुस्तान मे अपना असर दिखा रहा था। बडे-बडे शहरो मे कई दगे हुए, जिनमे हद दर्जे की पशुता और क्रूरता दिखाई दी। शक और गुस्से की आबोहवा ने नये-नये झगडे पैदा कर दिये जिनके नाम भी हममे से ज्यादातर लोगो ने पहले कभी नही सुने थे। इससे पहले झगडा पदा करने वाली वजह थी गो-वध और वह भी खासकर बकरीद के दिन। हिन्दू और मुसलमानो के त्यौहारो के एक साथ आ जाने पर भी तनातनी हो जाती थी। मसलन्, अगर मुहर्रम उन्ही दिनो आ पडता जब रामलीला होती थी तो झगड़े का अन्देशा हो जाता था। मुहर्रम पिछली दु खद घटनाओ की याद दिलाता है जिससे दु ख और आसू पैदा होते थे। रामलीला खुशी का त्यौहार था जिसमे पाप के ऊपर पुण्य की विजय का उत्सव मनाया जाता था। दोनो एक-दूसरे से चस्पा नही हो सकते थे, लेकिन सौभाग्य से यह त्यौहार तीन साल मे सिर्फ एक दफा साथ-साथ पडते थे। रामलीला तो हिन्दू-तिथि के अनुसार नियत आश्विन सुदी दशमी को मनाई जाती है जबकि मुहर्रम मुस्लिम-तारीख के मुताबिक कभी इस महीने मे और कभी उस महीने मे मनाये जाते है।

लेकिन अब तो झगड़े का एक सबब ऐसा पैदा हो गया जो हमेशा मौजूद रहता था और हमेशा खडा हो सकता था। यह था मसजिदो के सामने बाजा बजाने का सवाल। नमाज के वक्त बाजा बजाने या जरा भी आवाज आनेपर मुसलमान एतराज करने लगे। कहते, इससे नमाज मे खलल पडता है। हर शहर मे बहुत-सी

मसजिदे है और उनमे हर रोज पाच मर्तबा नमाज पढी जाती है। और शहरों मे जलूसो की, जिनमे शादी वगैरा के जलूस भी शामिल है तथा दूसरे शोरोगुल की कमी नही। इसलिए झगड़ा होने का अन्देशा हर वक्त मौजूद रहता था। खासतौर पर जब मस्जिद मे शाम को होने वाली नमाज के वक्त जलूस निकलते और बाजो का शोरोगुल होता तब ऐतराज किया जाता था। इत्तिफाक से यही वक्त है जबकि हिन्दुओं के मन्दिर मे शाम की पूजा यानी आरती होती है और शख बजाये जाते है तथा मन्दिरो के घटे बजते है। इसी आरती-नमाज के झगडे ने बहुत बडा रूप धारण कर लिया।

१९२० से लेकर १९२९ तक के बीच के सालो मे आपस मे बातचीत और बहस-मुबाहिसा करके हिन्दू-मुस्लिम मसलो को हल करने की कई कोशिशे की गई। ये कोशिशें एकता-सम्मेलनों के नाम से प्रसिद्ध है। इन सम्मेलनो मे सबसे ज्यादा प्रसिद्ध वह था, जो १९२४ मे मौलाना मुहम्मदअली ने काग्रेस के प्रधान की हैसियत से बुलाया और जो गाधीजी के इक्कीस दिन के अनशन के अवसर पर दिल्ली मे हुआ। इन सम्मेलनो मे बहुत-से भले और सच्चे आदमी शरीक हुए थे और उन्होने समझौता करने की बहुत सख्त कोशिश की, कुछ अच्छे व भले प्रस्ताव भी पास किये; लेकिन असली मसला हल हुए बिना ही रह गया। ये सम्मेलन उस मसले को हल कर ही नही सकते थे। क्योकि समझौता बहुमत से नही हो सकता था, वह तो एक स्वर से ही तय हो सकता है और किसी-न-किसी दल के ऐसे कट्टर लोग हमेशा मौजूद रहते थे जो समझते थे कि समझौता तभी हो सकता है जब सब लोग सोलहो आने हमारी बात मान ले। सचमुच कभी-कभी तो यह शक होने लगता था कि कुछ नामी-नामी साम्प्रदायिक नेता वाकई निपटारा चाहते भी है या नही? उनमे से बहुत-से राजनैतिक मामलो मे प्रगति-विरोधी थे और उनमे तथा उन लोगो मे जो राजनीति मे कायापलट चाहते थे कोई भी बात सामान्य न थी।

१९२५ की बात है। उस साल वसन्त ऋतु मे मेरी पत्नी बहुत बीमार पड़ गई। कई महीनो तक वह लखनऊ के अस्पताल मे पडी रही। उसी साल कानपुर मे काग्रेस हुई थी। मुद्दत तक दु खी दिल के साथ कभी इलाहावाद, कभी कानपुर और कभी लखनऊ तथा वहा से वापस चक्कर लगाने पड़े थे। (मै इन दिनो भी काग्रेस का प्रधान मत्री था।)

डाक्टरो ने सिफारिश की कि कमला का इलाज स्वीजरलैंड मे कराया जाय। मुझे यह वात पसन्द आई, क्योकि मै खुद भी हिन्दुस्तान से वाहर चला जाना चाहता था। मेरा दिमाग साफ नहीं था। कोई साफ रास्ता नही दिखाई देता था। मैने सोचा कि अगर मै हिन्दुस्तान से दूर पहुच जाऊ तो चीजो को और अच्छी दृष्टि से देख सकूगा और अपने दिमाग के अधेरे कोनो मे रोशनी पहुचा सकूगा।

मार्च १९२६ के शुरू मे हम लोग जहाज मे वम्वई से वेनिस के लिए रवाना हुए। मै, मेरी पत्नी और लडकी। उसी जहाज मे हमारे साथ मेरी वहिन सरूप और वहनोई रणजित पडित भी गए। उन लोगो ने अपनी यूरोप-यात्रा का इन्तजाम हम लोगो के यूरोप जाने का सवाल पैदा होने से वहुत पहले ही कर रक्खा था।

: २० :

यूरोप में

मुझे यूरोप छोडे तेरह साल से भी ज्यादा हो चुके थे और ये साल लडाई और क्राति तथा भारी परिवर्तन के साल थे। जिस पुरानी दुनिया को मै जानता था वह लडाई के खून और उसकी भीपणता मे डूव चुकी थी और एक नई दुनिया मेरा रास्ता देख रही थी। मुझे उम्मीद थी कि यूरोप मे छ या सात महीने या ज्यादा से-ज्यादा पूरा साल तक रह जाऊगा। लेकिन दरअसल हम

लोग वहा ठहरे एक साल और नौ महीने।

यह वक्त मेरे शरीर और दिमाग दोनो के लिए चैन व आराम का वक्त था। ज्यादातर हमने यह वक्त स्वीजरलैंड के जिनेवा में और मोटाना के पहाड़ी सेनिटोरियम मे विताया। मेरी छोटी वहिन कृष्णा भी १९२६ की गर्मियो के शुरू मे हिन्दुस्तान से हमारे पास आ गई और जवतक हम लोग यूरोप मे रहे तवतक हमारे साथ रही। मै अपनी पत्नी को ज्यादा अर्से के लिए नहीं छोड़ सकता था, इसलिए दूसरी जगहों मे मै वहुत थोड़े वक्त के लिए ही जा सका। कुछ दिनो बाद जव मेरी पत्नी की तवियत कुछ ठीक हो गई तव हम लोगो ने कुछ दिनों तक फ्रांस, इग्लैंड और जर्मनी की सैर की। जिस पहाड़ी की चोटी पर हम लोग ठहरे थे उसके चारो ओर वर्फ थी। वहा मै यह महसूस करता था कि मै हिन्दुस्तान तथा यूरोप की दुनिया से विलकुल अलहदा हो गया हू। हिन्दुस्तान मे होनेवाली वाते खासतौर पर वहुत दूर मालूम होती थी। मै महज दूर से देखनेवाला एक तमाशवीन वन गया था, जो अखवार पढता था, जो वाते होती थी उन्हे समझ कर उनपर गौर करता था तथा नए यूरोप तथा उसकी राजनीति और उसके अर्थशास्त्र तथा उसके कही ज्यादा आजादाना मानव-सवधो को देखा करता था। जव मै जिनेवा मे था तव स्वभावतः मुझे राष्ट्र-संघ के कामो मे और अन्तर्राष्टीय मजदूर-दफ्तर में भी दिलचस्पी रही थी।

लेकिन जाडा आते ही, जाडे के खेलो मे मेरा मन लग गया। कुछ महीनो तक इन खेलो में ही मेरी खास दिलचस्पी रही और इन्ही मे मै लगा रहा। वरफ पर एक किस्म के फिसल-खडाऊं पहिन कर तो मैं पहले भी चलता था, खिसकता था, लेकिन लकडी के आठ फुट लम्बे और चार इच चौडे फिसल-जोड़े को पैरो से वाध कर वरफ पर चलने का तजरवा मेरे लिए विलकुल नया था और मै उसपर मुग्ध हो गया। वहुत दिनो तक मुझे इन

खेल मे काफी तकलीफ मालूम हुई, लेकिन बार-बार गिरने पर भी मै हिम्मत के साथ जुटा रहा और अखीर मे मुझे खूब मजा आने लगा।

सब मिला कर इन दिनो हमारी जिन्दगी मे कोई खास घटना नही हुई। दिन बीतते गए और धीरे-धीरे मेरी पत्नी ताकत व तन्दुरुस्ती हासिल करती गई। वहा हम लोगों को बहुत कम हिन्दुस्तानियों से मिलने का मौका मिला। सच बात तो यह है कि उस पहाड़ी बस्ती मे रहनेवाले थोड़े से लोगो को छोड़ कर और किसी से हमे मिलने का मौका ही नही मिला। लेकिन हम लोगो ने यूरोप मे जो पौने दो साल बिताये उसमे हमे बहुत-से ऐसे पुराने क्रान्तिकारी और हिन्दुस्तान से निर्वासित भाई मिले जिनके नामों से मै वाकिफ था।

१९२६ के अखीर मे मै इत्तिफाक से बर्लिन मे था और वही मुझे यह मालूम हुआ कि जल्दी ही ब्रसेल्स शहर मे पद-दलित कौमो का एक सम्मेलन होने वाला है। यह खयाल मुझे पसन्द आया और मैंने स्वदेश को लिखा कि राष्ट्रीय काग्रेस को ब्रसेल्स सम्मेलन मे हिस्सा लेना चाहिए। मेरी यह बात पसन्द की गई और मुझे ब्रसेल्स-सम्मेलन के लिए भारत की राष्ट्रीय काग्रेस का प्रतिनिधि बना दिया गया।

ब्रसेल्स मे जावा, हिद-चीन, फिलस्तीन, सीरिया, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका के अरब और अफ्रीका के हब्शी लोगो की राष्ट्रीय संस्थाओं के प्रतिनिधि भी मौजूद थे। इनके अलावा बहुत-से मजदूरों के उग्रदलों ने भी अपने प्रतिनिधि भेजे थे। बहुत-से ऐसे लोग भी, जिन्होने एक युग से मजदूरो की लडाइयो मे खास हिस्सा लिया था, वहा मौजूद थे। कम्यूनिस्ट भी वहां थे। उन्होने काग्रेस की कार्रवाई मे काफी हिस्सा लिया, लेकिन वे वहा कम्यूनिस्टो की हैसियत से न आकर कई मजदूर सघ या वैसी ही संस्थाओं के प्रतिनिधि होकर आये थे।

जार्ज लेन्सबरी उस काग्रेस के सभापति चुने गये और उन्होंने बहुत ही जोरदार भाषण दिया। यह इस बात का सबूत था कि काग्रेस कोई ऐसी-वैसी सभा न थी और न उसने अपना भाग्य ही कम्यूनिस्टो के साथ जोड़ दिया था। लेकिन इस बात मे कोई शक नही कि वहां एकत्र लोग कम्यूनिस्टो के प्रति मित्रभाव रखते थे और यद्यपि उनमे और कम्यूनिस्टो मे कई बातो मे समझौता भले ही न हो सकता हो फिर भी काम करने के लिए कई बाते ऐसी भी थी जिनमे मिलकर काम किया जा सकता था।

वहां जो स्थायी सस्था, साम्राज्यवाद-विरोधी लीग, कायम की गई उसका भी सभापतित्व मि० लेन्सबरी ने स्वीकार कर लिया, लेकिन फौरन ही उन्हे अपनी इस जल्दबाजी पर पछताना पडा या शायद ब्रिटिश मजदूर-दल के उनके साथियो ने उनकी इस बात को पसन्द नही किया। उन दिनों यह मजदूर-दल 'सम्राट का विरोधी दल' था और जल्दी ही बढ कर 'सम्राट-सरकार' बनने को था। तब भला मन्त्रिमडल के भावी सदस्य खतरनाक और क्रातिकारी राजनीति मे कैसे पैर फसा सकते थे? मि० लेन्सबरी ने पहले तो काम मे बहुत व्यस्त रहने का बहाना करके लीग के सभापतित्व से इस्तीफा दे दिया, बाद को उन्होने उसकी मेम्बरी भी छोड दी। मुझे इस बात से बहुत अफसोस हुआ कि जिस व्यक्ति के व्याख्यान की दो-तीन महीने पहले मैंने इतनी तारीफ की थी उसमे यकायक ऐसी तब्दीली हो गई।

कुछ भी हो, काफी प्रतिष्ठित व्यक्ति साम्राज्य-विरोधी लीग के सरक्षक है। उनमे एक तो मि० आइंस्टीन[1] है और दूसरी श्रीमती सनयातसेन[2] और मेरा खयाल है कि रोमां रोला भी। कई महीने बाद आइस्टीन ने इस्तीफा दे दिया, क्योंकि फिलस्तीन में

[1]सुप्रसिद्ध जर्मन वैज्ञानिक, जो यहूदी होने के कारण जर्मनी से निर्वासित कर दिये गये थे। हाल ही में इनका देहान्त हो चुका है।

[2] स्वतन्त्र चीन के प्रथम प्रमुख सनयात सेन की विधवा पत्नी। —अनु०

अरबो और यहूदियो के जो झगड़े हो रहे थे उनमे लीग ने अरबों का पक्ष लिया था और यह बात उन्हे नापसन्द थी।

ब्रसेल्स-सम्मेलन और उसके बाद साम्राज्यवाद-विरोधी लीग की कमेटियो की जो मीटिगे समय-समय पर अलग-अलग जगहो मे हुई इनसे मुझे अधीनस्थ और औपनिवेशिक प्रदेशो की कुछ समस्याओ को समझने मे बडी मदद मिली। उनकी वजह से पश्चिमी ससार मे मजदूरो के जो भीतरी सघर्ष चल रहे है उनकी तह तक पहुचने मे भी मुझे आसानी हुई। उनकी बावत मैने बहुत-कुछ पढ़ा था और कुछ तो मै पहले से ही जानता था; लेकिन मेरे उस ज्ञान के पीछे कोई असलियत नही थी,क्योंकि उनसे मेरा कोई जाती ताल्लुक नही पड़ा था। लेकिन अब मै उनके सम्पर्क में आया और कभी-कभी मुझे उन मसलो का भी सामना करना पडा, जो इन भीतरी सघर्षो से उठते है। दूसरी इटरनेशनल और तीसरी इटरनेशनल[1] नाम की मजदूरो की जो सस्थाए है उनमे मेरी हम-दर्दी तीसरी से थी। लडाई से लेकर अबतक दूसरी इटरनेशनल ने जो कुछ किया उससे मुझे अरुचि हो गई और हमको तो हिन्दुस्तान मे इस इटरनेशनल के सबसे जबरदस्त हिमायती ब्रिटिश मजदूर दल के तरीकों का खुद तजरबा हो चुका था। इसलिए लाजिमी तौर पर कम्यूनिज्म की बाबत मेरा खयाल अच्छा हो गया, क्योकि उसमे कितने भी ऐब क्यो न हों, कम्युनिस्ट कम-से-कम साम्रा-ज्यवादी और पाखडी तो न थे। कम्यूनिज़्म से मेरा यह सबध

---

[1] अखिल यूरोप के श्रमजीवियो के सघ के ये नाम है। पहला सघ, जिसे मार्क्स ने स्थापित किया था, नाममात्र का था। ... १८८९ में स्थापित हुआ। उसमें जोरदार प्रस्ताव होते, ... अमल शायद ही होता। उसने इस आशय के प्रस्ताव किये ... राज्य-तन्त्र में अथवा युद्ध में कभी भाग न लिया जाय। ये ... में यो ही धरे रह गये। तब [illegible]९१९ में बोल्शेविकों ने ... की। इसका प्रधान [illegible] से पूंजीवाद की डिक्टेटरशिप [illegible]।

उसके सिद्धान्तो की वजह से नही था, क्योंकि मै कम्यूनिज्म की कई सूक्ष्म बातो की बाबत ज्यादा नही जानता था। उस वक्त उससे मेरी जान-पहचान सिर्फ उसकी मोटी-मोटी बातो तक ही सीमित थी। ये बाते और वे भारी-भारी परिवर्तन जो रूस मे हो रहे थे मुझे आकर्षित कर रहे थे। लेकिन अक्सर कम्युनिस्टों से मै, उनके डिक्टेटराना ढग तथा उनके नये लडाकू और कुछ हद तक अशिष्ट तरीके से और जो लोग उनसे सहमत न हो उन सबकी बुराई करने की उनकी आदतो की वजह से चिढ जाता था। उनके कहने के मुताबिक तो मेरा यह मनोभाव मेरी बुर्जुआओ की-सी अमीराना तालीम और लालन-पालन की वजह से था।

१९२७ की गर्मियो मे मेरे पिताजी यूरोप आये। मै उनसे वेनिस मे मिला। और उसके बाद कुछ महीनो तक हम लोग अक्सर साथ-साथ रहे। हम सब लोगो ने—मेरे पिताजी, पत्नी, छोटी बहिन और मैने—नवम्बर मे थोडे दिनो के लिए मास्को की यात्रा की। हम लोग मास्को मे बहुत ही थोड़े दिनो के लिए, सिर्फ तीन-चार दिन के लिए ही गये थे, क्योकि हमने यकायक वहा जाना तय किया था। लेकिन हमे इस बात की खुशी है कि हम वहा गये, क्योकि उसकी इतनी-सी झाकी भी काफी थी। इतनी जल्दी मे किया गया वह दौरा हमे नये रूस की बाबत न तो ज्यादा बता ही सकता था न उसने बताया ही, लेकिन उसने हमे अपने अध्ययन के लिए एक बुनियाद दे दी। पिताजी के लिए ये सब सोवियत और समष्टिवादी विचार बिलकुल नये थे। उनकी तमाम तालीम कानूनी और विधान-सबंधी थी और वे उस ढाचे मे से आसानी से नही निकल सकते थे। लेकिन मास्को मे उन्होने जो कुछ देखा उसका उनके ऊपर निश्चित रूप से असर पडा था।

जब पहले-पहल साइमन-कमीशन की बाबत एलान हुआ तब हम लोग मास्को मे ही थे। हमने उसकी बाबत पहले-पहल मास्को के एक अखबार मे पढा। इसके कुछ दिनो बाद पिताजी लन्दन

पडे और मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे सब करीब-करीब एक स्वर से मजूर हो गये। आजादी के प्रस्ताव का तो मिसेज एनी बीसेण्ट ने भी समर्थन किया। इस प्रकार चारों ओर के समर्थन से मुझे बड़ी खुशी हुई। लेकिन मेरे दिल मे यह खयाल बेचैनी पैदा करता था कि या तो लोगो ने इन प्रस्तावो के मेरे आशय को समझा नही है या लोगो ने उनका मनमाना अर्थ लगा लिया है। मेरे ये प्रस्ताव काग्रेस के सामान्य प्रस्तावो से कुछ नया दृष्टिकोण जाहिर करते थे। कुछ काग्रेसियो ने उन्हे पसन्द किया, तो कुछ ने नापसद, किन्तु खुला विरोध नही किया। शायद उन्होने समझा कि ये प्रस्ताव निरे तात्त्विक है और इसलिए उनसे पिण्ड छुडाने का सबसे अच्छा तरीका यही होगा कि उन्हे मजूर कर लिया जाय। इस प्रकार उन दिनो आजादी का प्रस्ताव काग्रेस मे उठने वाली एक सजीव और अदम्य प्रेरणा को व्यक्त न करता था, जैसा कि उसने एक या दो साल बाद किया।

मुझे फिर काग्रेस का मत्री बनना पडा। इसके कुछ व्यक्तिगत कारण थे। उस साल काग्रेस के अध्यक्ष डाक्टर असारी मेरे पुराने और प्रिय दोस्त थे। उन्होने चाहा कि मै मत्री बनू। दूसरे मेरे द्वारा पेश किये अनेक प्रस्ताव मजूर हुए थे, इसलिए मेरा यह कर्तव्य था कि मै उनपर अमल करने की जिम्मेदारी उठाता।

राजनैतिक दृष्टि से भारत मे १९२८ का साल एक भरा-पूरा साल था। देश भर मे तरह-तरह की हलचलो की भरमार थी। ऐसा मालूम पडता था कि एक नई प्रेरणा, एक नई जिन्दगी जो तरह-तरह के सभी समूहो मे एक-सी मौजूद थी, लोगो को आगे की तरफ बढा रही है। जिन दिनो मै देश से बाहर था शायद उन दिनो धीरे-धीरे यह तबदीली हो रही थी और मेरे लौटने पर मुझे वह बहुत बडी तबदीली मालूम हुई। १९२६ के शुरू मे हिन्दुस्तान पहले-जैसा सुप्त और निष्क्रिय बना हुआ था। शायद उस वक्त तक उसकी १९२१-२२ की मेहनत की थकान दूर नही हुई थी। १९२८ मे वह तरोताजा, क्रियाशील और नई शक्ति से पूर्ण हो

गया है, इस वात का सबूत हर जगह मिलता था—कारखानो के मजदूरो मे भी और किसानो मे भी, मध्यम वर्ग के नौजवानों मे भी और आम तौर पर पढे-लिखे लोगो मे भी।

मजदूर-सघो की हलचल वहुत ज्यादा वढ गई थी। सात-आठ साल पहले जो आल इडिया ट्रेड-यूनियन काग्रेस कायम हुई थी वह एक मजवूत और प्रातिनिधिक जमात थी। न सिर्फ उसकी तादाद और उसके सगठन मे ही काफी तरक्की हुई थी, वल्कि उसके विचार भी ज्यादा लडाकू और ज्यादा गरम हो गए थे। अक्सर हडताले होती थी और मजदूरो मे वर्ग-चेतना जोर पकड रही थी। कपड़े की मिलो और रेलो में काम करनेवाले मजदूर सवसे ज्यादा सगठित थे और इनमे से भी सवसे ज्यादा मजवूत और सवसे ज्यादा सगठित सघ थे वम्वई की गिरनी-कामगार यूनियन और जी०आई०पी० रेलवे-यूनियन। मजदूरो के सगठन के वढने के साथ-साथ लाजिमी तौर पर पश्चिम से घरेलू लडाई-झगडो के वीज भी आये। हिन्दुस्तान के मजदूर-सघो को कायम होते देर न हुई कि वे आपस मे होड़ करने और दुश्मनी रखने वाले दलो मे वट गये। कुछ लोग दूसरी इटरनेशनल के हामी थे, कुछ तीसरी इटरनेशनल के कायल। यानी एक दल का दृष्टिकोण नरमी की तरफ यानी सुधार-वादी था और दूसरा दल वह था जो खुल्लम-खुल्ला क्रान्तिकारी था और आमूल परिवर्तन चाहता था। इन दोनो के वीच मे कई किस्म की राये थी, जिनमे मात्रा का भेद था और जैसा कि आम जनता के सगठन मे होता है इसमें अवसरवादी लोग भी आ घुसे थे।

किसान भी करवट वदल रहे थे। उनकी यह जाग्रति सयुक्त-प्रान्त मे और खासतौर पर अवध मे दिखाई देती थी जहा अपने ऊपर होनेवाले अन्यायो का विरोध करने के लिए किसानो की वडी-वडी सभाए आये दिन होने लगी थी। लोग यह महसूस करने लगे थे कि अवध के जोत-सम्वन्धी जिस कानून ने किसानो को हीन-

हयाती हक दिये थे, और जिससे बहुत ज्यादा उम्मीद की जाती थी उससे किसानो की दुखी जिन्दगी मे कोई फर्क नही पडा था। गुजरात के किसानों ने तो एक बड़े पैमाने पर सघर्ष शुरू कर दिया; क्योंकि गवर्नमेंट ने यह चाहा कि मालगुजारी बढा दी जाय। गुजरात मे किसान खुद अपनी जमीन के मालिक है, जहा सरकार सीधे किसानो से ताल्लुक रखती है। यह सघर्ष सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व मे हुआ बारडोली का सत्याग्रह था। इस लड़ाई मे किसानों की बहादुरी के साथ विजय हुई, जिसे देखकर तमाम हिन्दुस्तान वाह-वाह करने लगा। बारडोली के किसानो को बहुत काफी कामयाबी मिली। लेकिन उनकी लडाई की असली कामयाबी तो इस बात मे थी कि उसने हिन्दुस्तान-भर के किसानो पर बडा अच्छा असर डाला। हिन्दुस्तान के किसानो के लिए बारडोली आशा, शक्ति और विजय का प्रतीक हो गई।

१९२८ के हिन्दुस्तान की एक और बहुत ख़ास बात थी नौजवानों के आन्दोलन की बढती। हर जगह युवक-सघ कायम हो रहे थे और युवक कांफ्रेंस की जा रही थी। ये सघ और कांफ्रेंस तरह-तरह के थे। कोई अर्द्ध-धार्मिक थे तो कोई क्रान्तिकारी विचारों और उनके शास्त्रों पर विचार करने वाले। लेकिन उनकी उत्पत्ति कुछ भी हो और उनका नियत्रण किसी के हाथ मे हो, युवको की ऐसी सभाएं हमेशा अपने-आप आजकल की सजीव सामाजिक और आर्थिक समस्याओ पर विचार करने लगती थी और आमतौर पर उनका झुकाव यही था कि एकदम कायापलट कर दी जाय।

महज राजनैतिक विचार से देखा जाय तो यह साल साइमन कमीशन के बहिष्कार के लिए तथा बहिष्कार के रचनात्मक पहलू के नाम से पुकारे जानेवाले सर्वदल-सम्मेलन के लिए मशहूर है। इस बहिष्कार मे नरमदल वालो ने कांग्रेस का साथ दिया और उसमे गजब की कामयाबी हुई। जहा-जहा कमीशन गया

वहां-वहा जन-समूह ने 'साइमन गो वैक' (साइमन लौट जाओ) के नारे लगाकर उसका 'स्वागत' किया। इस तरह हिन्दुस्तान के तमाम लोगो की बहुत बडी तादाद न सिर्फ सर जान साइमन का नाम ही जान गई, बल्कि अग्रेजी के 'गो वैक' ये दो शब्द भी उसे मालूम हो गये।

साइमन कमीशन हिन्दुस्तान मे दौरा कर रहा था और काले झडे लिये हुए 'गो वैक' के नारे लगाने वाली विरोधी भीड हर जगह उसका स्वागत कर रही थी। कभी-कभी भीड़ और पुलिस में मामूली झगड़ा भी हो जाता था। लाहौर मे वात वहुत वढ़ गई और यकायक देश भर मे गुस्से की लहर दौड़ गई। लाहौर में साइमन-विरोधी जो प्रदर्शन हुआ, वह लाला लाजपतराय के नेतृत्व मे हुआ। जव वह सड़क के किनारे हजारों प्रदर्शनकारियो के आगे खडे हुए थे तव एक नौजवान अंग्रेज पुलिस अफसर ने उन पर हमला किया और उनकी छाती पर डंडे लगाये। लालाजी का तो कहना ही क्या, भीड़ की तरफ से किसी किस्म का झगडा खड़ा करने की कोई कोशिश नही हुई थी। फिर भी जव वह एक तरफ शान्ति से खड़े हुए थे तव पुलिस ने उनको और उनके कई साथियो को बहुत बुरी तरह मारा। गलियों मे अथवा सड़को पर होनेवाले आम प्रदर्शनो में हिस्सा लेनेवाले हर शख्स को यह खतरा रहता है कि पुलिस से मुठभेड़ हो जायगी और यद्यपि हमारे प्रदर्शन करीव-करीव हमेशा ही सोलहों आने शान्त होते थे फिर भी लालाजी इस खतरे को जरूर जानते होगे और उन्होने जान-बूझ कर वह ख़तरा उठाया होगा। लेकिन फिर भी जिस ढग से उनपर हमला किया गया उससे और उस हमले के वहशियाने ढग से हिंदु-स्तान के करोडों लोगों को धक्का लगा। उन दिनो हम पुलिस द्वारा लाठियो की मार खाने के आदी न थे। उस वक्त तक इस प्रकार वार-वार होनेवाली पाशविकता के आदी न होने के कारण हम उसे वहुत वुरा मानते थे। हमारे सवसे वडे नेता, पजाव के सवसे वड़े और सवसे ज्यादा लोकप्रिय व्यक्ति के साथ

ऐसे बुरे व्यवहार का होना बिलकुल हैवानियत मालूम पडी और उस व्यवहार को देखकर हिन्दुस्तान-भर मे, खासकर उत्तरी हिन्दुस्तान मे, एक जबर्दस्त गुस्सा फैल गया। हम लोग कितने असहाय और कितने कमजोर है कि हम अपने नेताओ के मान की भी रक्षा नही कर सकते !

लालाजी को शारीरिक चोट भी कम भीषण नही लगी, क्योंकि उनकी छाती पर लाठिया मारी गई थी और वह बहुत दिनो से दिल की बीमारी से पीडित थे। अगर ये चोटे किसी तन्दुरुस्त नौजवान के लगी होती तो इतनी घातक न साबित होती। लेकिन लालाजी न तो नौजवान थे, न तन्दुरुस्त ही। कुछ हफ्ते बाद लालाजी की जो मौत हुई उसपर इन शारीरिक चोटो का क्या असर पडा, निश्चित रूप से यह बताना तो मुमकिन नही है, हालाकि उनके डाक्टरो की यह राय थी कि इन चोटो के कारण उनकी मृत्यु जल्दी हो गई। लेकिन मै समझता हू कि इस बात मे कोई शक नही है कि शारीरिक चोटो से लालाजी को जो मानसिक आघात पहुचा, उसका उनके ऊपर बहुत ज्यादा असर पडा। वह बहुत ही नाराज और सतप्त हो गये—इसलिए नही कि उनका जाती अपमान हुआ था, बल्कि इसलिए कि उनपर किये गये हमले मे राष्ट्रीय अपमान सम्मिलित था।

: २२ :

लाठी-प्रहारों का अनुभव

लाला लाजपतराय पर हमला होने और बाद मे उनकी मृत्यु हो जाने से साइमन-कमीशन के खिलाफ प्रदर्शनो का जोर और भी बढ गया। वह लखनऊ मे आने वाला था और वहा भी कांग्रेस कमेटी ने उसके 'स्वागत' की भारी तैयारियां की थीं। कई दिन पहले से ही बडे-बडे जुलूस, सभाए और प्रदर्शन किये

गए, जो प्रचार के लिए और असली प्रदर्शन से पहले रिहर्सल के तौर पर थे। मैं भी लखनऊ गया और इसमे से कई कार्यों मे मौजूद भी रहा। इन प्रारम्भिक प्रदर्शनो की, जो पूरी तरह से व्यवस्थित और शान्त थे, कामयाबी ने अधिकारियो को झुझला दिया और उन्होने खास-खास जगहो मे जलूसों को रोकने और उनके निकाले जाने के खिलाफ हुक्म देना शुरू किया। इसी सिल-सिले मे मुझे नया अनुभव हुआ और मेरे शरीर पर भी पुलिस के डडो और लाठियो की मार पड़ी।

जलूस, आमद-रफ्त मे रुकावट पड़ने का सबब जाहिर करके, बन्द किये गये थे। हमने फैसला किया कि इस मामले मे शिकायत का कोई मौका न दिया जाय और जहांतक मुझे याद है, सोलह-सोलह आदमियो की छोटी-छोटी टुकड़िया बनाकर उन्हे अलग-अलग रास्तों से सभा की जगह पर भेजने का इन्त-जाम किया। कानून की बारीकी से देखा जाय तो वेशक यह हुक्म का तोडना ही था, क्योकि झडा लेकर सोलह आदमियो का निक-लना एक जुलूस ही था। सोलह आदमियो के एक झुड के आगे-आगे मैं भी था, और एक वडे फासले के वाद ऐसा ही एक और दल आया, जिसके नेता मेरे साथी गोविन्दवल्लभ पन्त थे। वह सड़क सुनसान-सी थी। मेरा दल शायद दो सौ गज ही गया होगा कि हमने अपने पीछे घोडों की टापों की आहट सुनी। जब हमने पीछे मुँह किया तो देखा कि घुडसवारो का एक दल, जिसमे शायद दो या तीन दर्जन सिपाही थे, हमारे ऊपर तेजी से चढा चला आ रहा है। वे फौरन ही हमारे पास आ पहुचे और घोडो की जुडी हुई कतार ने सोलह आदमियो के हमारे छोटे-से झुड को तितर-बितर कर दिया। फिर घुड़सवारो ने हमारे स्वयसेवको को वडे डडो से मारना शुरू किया, इससे स्वयंसेवक सहसा सडक की बाजू की तरफ हटे और कुछ तो छोटी दुकानो मे भी घुस गये। सवारो ने उनका पीछा किया और उन्हे पीट-पीटकर गिरा दिया। जब मैंने घोडो को ऊपर चढ़ते हुए देखा, तब मेरी भी स्वाभाविक वृत्ति ने

मुझे प्रेरित किया कि मै बच जाऊ। वह हिम्मत तोड़ने वाला दृश्य था। मगर फिर, मेरा खयाल है कि, किसी दूसरी स्वाभाविक वृत्ति ने मुझे अपनी जगह पर ही खड़ा रक्खा और मै पहले हमले को वरदाश्त कर गया, जिसे मेरे पीछे के स्वयसेवको ने रोक लिया था। अचानक मैने देखा कि मै सडक के बीच मे अकेला हू, मुझसे कुछ ही गज की दूरी पर सब तरफ पुलिस वाले थे, जो हमारे स्वयसेवकों को पीट गिराते थे। अपने आप ही मै, जरा आड मे हो जाने की खातिर सड़क की बाजू की तरफ धीरे-धीरे चलने लगा। मगर मै फिर रुक गया और मैने अपने दिल मे विचार किया और यह फैसला किया कि हट जाना मेरे लिए अच्छा न होगा। यह सब सिर्फ कुछ ही पलो मे हो गया, मगर मुझे उस समय के विचार-सघर्ष और निर्णय का अच्छी तरह स्मरण है। यह निर्णय मेरी राय मे मेरे उस स्वाभिमान का परिणाम था जो मुझे कायर की तरह काम करते नही देख सकता था। फिर भी कायरता और हिम्मत के बीच की रेखा बहुत बारीक थी और म कायरता की तरफ भी जा सकता था। मैने ऐसा निर्णय किया ही था कि मैने मुड़ कर देखा कि एक घुडसवार मेरे ऊपर घोडा छोडता चला आ रहा है और अपना लम्बा डडा घुमा रहा है। मैने उससे कहा—"लगाओ" और अपना सिर जरा हटा लिया। यह भी सिर और मुह को बचाने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति ही थी। उसने मेरी पीठ पर धमाधम दो वार किये। मुझे चक्कर आने लगा और मेरा सारा शरीर थरथराने लगा, मगर मुझे यह जानकर आश्चर्य और सतोप हुआ कि मै फिर भी खडा ही रहा। फौरन ही पुलिस दल पीछे हटा लिया गया और उसे हमारे सामने सडक रोकने को कहा गया। हमारे स्वयसेवक फिर इकट्ठे हो गये, जिनमे से कई के खून निकल रहा था और कई की खोपडिया फूट गई थी। हमसे पन्त और उनका दल भी आ मिला। वह भी पीटा गया था। अब हम सब पुलिस के सामने बैठ गये। इस तरह लगभग एक घटे तक बैठे रहे और अधेरा हो गया। एक तरफ तो कई

बडे-बड़े अफसर इकट्ठे हो गये और दूसरी तरफ जैसे-जसे खबर फैली वैसे-वैसे लोगों की बड़ी भीड़ इकट्ठी होने लगी। आखिर-कार अधिकारी हमे अपने रास्ते से जाने देने पर राजी हो गये और उसी रास्ते से हम गये। हमारे आगे-आगे हमराह की तरह पुलिस के घुड़सवार भी चले, जिन्होने हमपर हमला किया था और हमे मारा था।

इस छोटी-सी घटना का हाल मैंने कुछ विस्तार से लिखा है, क्योकि इसका मुझपर खास असर हुआ। मुझे जो शारीरिक कष्ट हुआ वह मेरी इस खुशी के खयाल के आगे याद ही नही रहा कि मै भी लाठी की मार को बरदाश्त करने और उनके सामने टिके रहने के लायक मजबूत हूं। और जिस बात से मुझे ताज्जुब हुआ वह यह कि इस सारी घटना मे, और जब कि मै पीटा जा रहा था तब भी, मेरा दिमाग ठीक-ठीक काम करता रहा और मै अपने अन्दर की भावनाओं का ज्ञानपूर्वक विश्लेषण करता रहा। इस रिहर्सल ने मुझे दूसरे दिन सवेरे बड़ी मदद दी, जब कि हमारा और भी सख्त इम्तिहान होने वाला था। क्योकि दूसरे दिन सवेरे ही साइमन-कमीशन आने वाला था और उसी वक़्त हम विरोधी प्रदर्शन करने वाले थे।

उस समय मेरे पिताजी इलाहाबाद मे थे और मुझे डर था कि जब वह दूसरे दिन सवेरे अखबारो मे मुझपर होने वाले हमले का हाल पढेंगे तो वह और परिवार के दूसरे लोग भी चिन्तित हो जावेगे। इसलिए मैने रात को उन्हे टेलीफोन कर दिया कि सब खैरियत है और आप लोग किसी किस्म की फिक्र न करे। मगर उन्हे फिक्र तो हुई। और जब वह शान्ति से न रह सके तो, आधी रात के करीब उन्होने लखनऊ आना तय किया। आखिरी ट्रेन छूट चुकी थी, इसलिए वह मोटर से रवाना हुए। रास्ते मे मोटर मे कुछ गड़बड हो गई थी और वह १४६ मील का सफर पूरा करके सवेरे करीब ९ बजे बिलकुल थके-मादे लखनऊ पहुंचे।

यह क़रीव-क़रीव वह वक़्त था जवकि हम जुलूस मे स्टेशन जाने की तैयारी कर रहे थे। हमारे कुछ भी करने से लखनऊ जितना उभड़ न सकता था, उतना कल की घटनाओं से उभड़ गया और सूरज उगने से भी पहले वड़ी तादाद मे लोग स्टेशन पर पहुँच गए। शहर के मुख्तलिफ हिस्सों से वेशुमार छोटे-छोटे जलूस आये और कांग्रेस-आफ़िस से वड़ा जुलूस चार-चार की क़तार में रवाना हुआ, जिसमें कई हजार आदमी थे। हम वड़े जुलूस मे थे। ज्योंही हम स्टेशन के पास पहुंचे, हमे पुलिस ने रोक दिया। वहाँ स्टेशन के सामने क़रीव आध मील लम्वा और इतना ही चौड़ा वड़ा भारी खुला मैदान था। (यहाँ अव नया स्टेशन वन गया है) उस मैदान की एक वाजू पर हमे क़तार मे खड़ा कर दिया गया। हमारा जलूस वहीं खड़ा रहा, हमने आगे वढ़ने की विलकुल कोशिश नहीं की। उस जगह सब तरफ पैदल और घुड़सवार पुलिस और फौज आकर भर गई थी। हमदर्दी रखने वाले तमाशवीनों की भीड़ भी वढ़ गई थी और कई जगह दो-दो तीन-तीन आदमी विशाल मैदान में जा खड़े हुए थे। अचानक दूर पर हमे एक दल आता हुआ दिखाई दिया। वह घुड़सवारों की दो या तीन लम्वी कतारें थी, जो सारे मैदान को घेरे हुए थीं और हमारी तरफ दौड़ रही थी और मैदान मे जो कुछ लोग जा खड़े हुए उन्हे मारती-कुचलती चली आ रही थी। घोड़े को दौडाते हुए सवारों का हमला करना एक वड़ा अच्छा दृश्य था, वशर्ते कि रास्ते मे खड़े हुए वेचारे वेखवर तमाशवीनों के साथ, जो घोड़ों के पैरो तले रौंदे गये थे, दर्दनाक वाक़या न हो जाता। इन हमला करनेवाली लाइनों के पीछे वे लोग जमीन पर पड़े हुए थे, जिनमे कुछ तो उठ भी नहीं सकते थे और कुछ दर्द से कराह रहे थे। उस मैदान का सारा नज़ारा लड़ाई के मैदान का-सा हो गया था। मगर उस दृश्य को देखने या कुछ सोच-विचार करने का हमे ज्यादा वक़्त नहीं मिला; घुड़सवार फौरन हमारे ऊपर आ गये और उनकी आगे की कतार हमारे जलूस के आगे खड़े हुए लोगो से एक

ही छलाग मे टकरा गई। हमं वही डटे रहे और चूंकि हम हटते हुए नही दिखाई दिये, इसलिए उन्हे उसी दम घोडो को रोक देना पड़ा। घोडे पिछले पैरो पर खड़े रह गये, उनके अगले पैर हमारे सिरो पर लटकते हुए हिल रहे थे। और फिर हमपर पैदल और घुड़सवार पुलिस दोनो की लाठियाँ पड़ने लगी। वह बहुत भयंकर मार थी और पिछले दिनों जो मेरे दिमाग की विचार-शक्ति कायम रही थी वह जाती रही। मुझे सिर्फ इतना ही औसान रहा कि मुझे अपनी जगह पर ही खड़ा रहना चाहिए और गिरना या पीछे हटना नही चाहिए। मार से मुझे अधेरी आ गई और कभी-कभी मन-ही-मन गुस्सा और उलटकर मारने का खयाल भी आया। मैंने सोचा कि अपने सामने के पुलिस अफसर को गिराकर घोडे पर खुद चढ जाऊँ। यह कितना आसान है। मगर लम्बे अर्से की तालीम और अनुशासन ने काम दिया और मैंने अपने सिर को मार से बचाने के सिवा हाथ तक नही उठाया। इसके अलावा मै अच्छी तरह जानता था कि अगर हमारी तरफ कुछ भी मुकाबला हुआ तो यह भीषण दुर्घटना हो जायगी, जिसमे हमारे आदमी बड़ी तादाद मे गोलियो से भून दिये जायगे।

हमें वह समय भयकर रूप से लम्बा मालूम पड़ा, मगर शायद वह सिर्फ कुछ ही मिनटो का खेल था। उसके बाद धीरे-धीरे एक-एक कदम हमारी लाइन, टूटे बगैर पीछे हटने लगी। इससे मै कुछ-कुछ अलग और दोनो तरफ से ज्यादा खुला हुआ रह गया। मुझपर और मार पड़ी और फिर मै अचानक पीछे से उठा लिया गया और वहाँ से दूर ले जाया गया। इससे मुझे बड़ी झुझलाहट हुई। मेरे कुछ नौजवान साथियो ने, यह कयास करके कि मुझ-पर घातक हमला किया जा रहा है, मुझे इस तरह एकाएक बचा लेना तय कर लिया था।

हमारे जुलूस के लोग अपनी असली लाइन से करीब सौ फुट पीछे फिर एक कतार बनाकर खड़े हो गए। पुलिस भी पीछे हट

गई और हमसे पचास फुट के फासले पर एक लाईन मे खडी हो गई। इस तरह हम खडे रहे और साइमन-कमीशन, जो इस सारे झगड़े की जड था, हमसे दूर करीब आध मील की दूरी पर स्टेशन से चुपचाप निकल गया। इतना करने पर भी वह काले झडों या प्रदर्शन करनेवालो से बचकर न निकल सका। इसके बाद ही हम पूरा जुलूस बनाकर काग्रेस-दफ्तर आये और वहा से बिखर कर चले गये। मैं अपने पिताजी के पास गया, जो बड़ी चिन्ता से मेरा इन्तजार कर रहे थे।

अब वह सामयिक उत्तेजना चली गई थी तो मुझे सारे शरीर मे दर्द और भारी थकान मालूम होने लगी। शरीर का करीब-करीब हर हिस्सा दर्द करता था और सब जगह अन्धी चोटो और मार के निशान हो गये थे। मगर खैर थी कि मुझे किसी नाजुक जगह पर चोट नही आई थी। परन्तु हमारे कई साथी इतने खुशकिस्मत न थे। उन्हे बुरी तरह चोट आई थी। गोविन्दवल्लभ पन्त पर, जो मेरे पास खड़े थे, ज्यादा मार पडी, क्योकि वह छ. फुट से भी ज्यादा ऊचे-पूरे थे। उस वक्त जो चोटे उनके आई उनके सबब से वहुत अर्से तक उन्हे इतना दर्द और तकलीफ रही कि वह कमर भी सीधी नही कर सकते थे और न कुछ ज्यादा काम-काज ही कर सकते थे। उसके बाद मुझे अपनी शारीरिक हालत और बरदाश्त करने की ताकत का कुछ ज्यादा घमण्ड हो गया। मगर मार पड़ने की याद से ज्यादा तो मुझे कई मारने-वाले पुलिसवालों, खासकर अफसरो के चेहरो की याद वनी हुई है। ज्यादातर असली मार-पीट तो यूरोपियन सारजेंटो ने की, हिन्दुस्तानी सिपाही तो हल्के-हल्के ही काम चला रहे थे। उन सारजेण्टो के चेहरों मे हिकारत और खून की प्यास करीब पागलपन की हद तक भरी हुई थी और हमदर्दी या इन्सा-नियत का नामोनिशान भी न था। ठीक उसी वक्त, शायद, हमारी तरफ के चेहरे भी देखने मे उतने ही नफरत भरे होंगे, और हमारे ज्यादातर अहिसात्मक होने से, हमारे विरोधियो

के लिए हमारे दिल और दिमाग मे कोई प्रेम-भाव नही रह गया होगा और न हमारे चेहरो पर सद्भाव झलका होगा । लेकिन फिर भी एक-दूसरे के खिलाफ हमे कोई शिकायत न थी हमारा कोई जाती झगडा न था, न कोई दुर्भाव था। उस वक्त हम अजीब और जबरदस्त ताकतो के प्रतिनिधि थे, जो हमे अपने अधीन बनाए हुए थी और हमे इधर और उधर फेकती जाती थी और जिन्होने हमारे दिलो और दिमागो पर बड़ी खूबी से कब्जा करके हमारी अभिलाषाओं और रागद्वेषों को उभाड़ दिया था और हमे अपना अन्धा हथियार बना लिया था । हम अन्धे की तरह दौड़-धूप करते थे और यह नही जानते थे कि यह किसलिए करते है या कहा चले जा रहे है ? काम की उत्तेजना ने हमे टिकाए रखा था, मगर जब वह चली गई तो फौरन यह सवाल पैदा हुआ कि आखिर यह सब किसलिए किया जा रहा है ? किस लक्ष्य के लिए ?

: २३ :

कलकत्ता-कांग्रेस और उसके बाद

उस साल देश की राजनीति मे ज्यादातर साइमन-कमीशन के बायकाट और सर्वदल-सम्मेलन का ही बोलबाला रहा । लेकिन मेरी अपनी दिलचस्पी ज्यादातर दूसरी तरफ रही और मैने काम भी ज्यादातर उन्ही दिशाओ मे किया । कांग्रेस के कार्य-वाहक प्रधान-मंत्री की हैसियत से मै उसके सगठन की देखभाल करने और उसे मजबूत बनाने मे लगा रहा । खासतौर पर मेरी दिलचस्पी इस बात मे थी कि मै लोगों का ध्यान सामाजिक और आर्थिक परिवर्तनों की तरफ खीचू । पूर्ण स्वाधीनता के सिल-सिले मे मदरास मे हम जिस हद तक पहुंच गये थे उस स्थिति को भी मजबूत रखना था। खासतौर पर इसलिए कि सर्व-दल-सम्मेलन का तमाम झुकाव हम लोगों को पीछे खीचने की तरफ

था। इस उद्देश्य को सामने रखकर मैंने देश मे बहुत सफर किया और कई बड़ी-बड़ी आम सभाओ मे व्याख्यान दिये।

ज्यों-ज्यो १९२८ का अखीर आता गया त्यों-त्यों कलकत्ता-काग्रेस नजदीक आती गई। उसके सभापति मेरे पिताजी चुने गयें थे। उनका दिल और दिमाग उस वक्त सर्व-दल-सम्मेलन तथा उसके लिए उन्होंने जो रिपोर्ट तैयार की थी उससे सराबोर था। वह चाहते थे कि उसे काग्रेस से पास करा लिया जाय। वह यह जानते थे कि मै उनकी इस बात से सहमत न था; क्योकि मै आजादी के प्रश्न पर कोई समझौता करने को राज़ी न था। इस बात पर वह नाराज भी थे। इसलिए इसपर हम लोगो ने बहुत बहस नही की। लेकिन हम दोनों के मन मे मानसिक संघर्ष का भाव निश्चित रूप से काम कर रहा था और हम लोग यह जानते थे कि हम एक-दूसरे के खिलाफ जा रहे है। मतभेद तो हम लोगो मे इससे भी पहले अक्सर हुआ करता था, ऐसा भारी मतभेद कि जिसके फल-स्वरूप हम अलग-अलग पक्षो में रहते थे; लेकिन मेरा ख़याल है कि इससे पहले या इसके बाद भी और किसी भी मौके पर हम लोगो मे इतनी तनातनी नही हुई जितनी कि इस वक़्त थी।

हम दोनो ही इस बात से कुछ हृद तक दु.खी थे। कलकत्ते मे तो मामला इस हृद तक बढ गया था कि पिताजी ने यह बात साफ-साफ कह दी कि अगर कांग्रेस में उनकी बात नही चली, यानी अगर काग्रेस ने, सर्व-दल-सम्मेलन की रिपोर्ट के पक्ष मे जो प्रस्ताव पेश किया जायगा उसे बहुमत से मजूर नही किया, तो वह काग्रेस का सभापति रहने से इन्कार कर देगे। यह बात विलकुल वाजिब थी और विधान की दृष्टि से उन्हे यह तरीका अख्तियार करने का पूरा हक था। फिर भी उनके बहुत-से उन विरोधियों के लिए, जो यह नही चाहते थे कि इस वात के लिए मामला इस हद तक वढ़ जाय, वह वहुत-ही परेशानी की वात थी।

दोनों दलों मे समझौते की बातचीत चली और यह ज़ाहिर किया गया कि समझौते का एक रास्ता निकल आया है; लेकिन अखीर में वह गिर गया। ये सब बातें बड़े गोलमाल मे डालनेवाली थीं और इनमे शोभा भी नही थी। कांग्रेस के खास प्रस्ताव मे, जैसा कि वह अखीर मे पास हुआ, सर्वदल-सम्मेलन की रिपोर्ट को मजूर कर लिया गया, लेकिन उसमे ब्रिटिश सरकार से यह भी कह दिया गया कि अगर उसने एक साल के अन्दर इस विधान को मंजूर नही किया तो कांग्रेस फिर अपने आज़ादी के ध्येय को ग्रहण कर लेगी। असल मे इस प्रस्ताव ने सरकार को एक नम्र चुनौती देकर उसे साल-भर की मियाद दी थी। इसमे कोई शक नही कि यह प्रस्ताव हमे आज़ादी के ध्येय से नीचे घसीट लाया था, क्योकि सर्वदल-सम्मेलन की रिपोर्ट ने तो पूरे डोमिनियन स्टेटस की भी मॉग नही की थी। फिर भी यह प्रस्ताव इस अर्थ मे बुद्धिमत्तापूर्ण था कि उसने एक ऐसे वक़्त मे कांग्रेस मे फूट नही होने दी जब कि कोई भी फूट के लिए तैयार न था और उसने, १९३० मे जो लड़ाई शुरू हुई उसके लिए, सब कांग्रेसियों को एक साथ रक्खा। यह बात तो बिलकुल साफ थी कि ब्रिटिश सरकार सालभर के अन्दर सब दलों द्वारा बनाये गये विधान को मंजूर नही करेगी। सरकार से लड़ाई होना लाजिमी था और उस वक़्त देश की जैसी हालत थी उसमे सरकार से किसी किस्म की लडाई उस वक्त तक कारगर नही हो सकती थी, जबतक उसे गांधीजी का नेतृत्व न मिले।

मैंने काग्रेस के खुले जलसे मे इस प्रस्ताव का विरोध किया था। यद्यपि यह मुखालफत मैंने कुछ-कुछ बेमन से की थी, तो भी इस बार भी मुझे प्रधान-मन्त्री चुना गया। कुछ भी हो, मैं मन्त्री-पद पर बना रहा और कांग्रेस के क्षेत्र मे ऐसा मालूम पड़ता था कि मैं वही काम कर रहा हूँ जो प्रसिद्ध 'विकार आफ ब्रे' करता था। काग्रेस की गद्दी पर कोई भी सभापति बैठे, मैं हमेशा

उस सगठन को सम्हालने के लिए उसका मन्त्री बनाया जाता था।

१९२९ की कांग्रेस लाहौर मे होनेवाली थी। वह दस साल के बाद फिर पजाब मे होने जा रही थी और लोग दस वर्ष पहले की बाते याद करने लगे—१९१९ की घटनाऍ, जलियॉवाला बाग, फौजी कानून और उसके साथ होनेवाली बेइज्जतियॉ, अमृतसर का काग्रेस-अधिवेशन और उसके बाद असहयोग की शुरूआत। इन दस वर्षो मे बहुत-सी घटनाएँ हुई थी और हिंदुस्तान की सूरत ही बदल गई थी, मगर फिर भी उस और इस समय मे समानताओं की कमी न थी। राजनैतिक विक्षोभ बढ रहा था और सघर्ष का वातावरण तेजी से बनता जा रहा था। आनेवाले सघर्ष की लम्बी छाया पहले से ही देश पर पड़ रही थी।

असेम्बली और प्रातीय कौसिलो मे बहुत समय से, उन मुट्ठीभर लोगो के सिवा जो उनके चौको मे चक्कर काटा करते थे, लोगों की दिलचस्पी नही रही थी। ये असेम्बिलियॉ और कौसिले अपनी लकीर पीटा करती थी, जिनसे सरकार को अपने सत्ताधारी और स्वेच्छाचारी स्वरूप को ढकने के लिए एक टूटा-फूटा सहारा और लोगो को हिंदुस्तान मे पार्लमेण्ट होने और उसके मेम्बरो को भत्ता मिलने की बात करने का एक बहाना मिल जाता था।

धीरे-धीरे गरमी और बरसात की ऋतु बीतकर ज्योही शरद-ऋतु आई, प्रान्तीय काग्रेस कमेटिया काग्रेस के लाहौर-अधिवेशन के लिए अध्यक्ष चुनने के काम मे लग गई। इस चुनाव की एक लम्बी कार्रवाई होती है, जो अगस्त से अक्तूबर तक चलती रहती है। १९२९ मे गाधीजी को अध्यक्ष बनाने के पक्ष मे करीब-करीब एकमत था। उन्हे दूसरी बार सभापति बनाने से, वास्तव मे, काग्रेस के नेताओ मे उनका पद कोई ऊचा नही हो

जाता था, क्योकि वह तो कई बरसो से एक तरह के सभापतियों के भी दादा बने हुए थे। उस वक्त सबको यही लगा कि चूकि लड़ाई अत्यन्त निकट है और उसकी सारी बागडोर यों भी उन्हीं के हाथों मे रहनेवाली है, तो फिर कांग्रेस का 'विधिवत्' नेता भी उस वक्त के लिए उन्ही को क्यों न बनाया जाय ? इसके सिवा, इतना बडा और कोई आदमी सामने न था, जो उस समय सभापति बनाया जाय।

इसलिए प्रान्तीय कमेटियो ने सभापति-पद के लिए गांधीजी की सिफारिश की। मगर उन्होने मजूर न किया। हालाकि उन्होने जोर के साथ इन्कार किया था, मगर उसमे दलील करने की गुजाइश मालूम हुई और यह उम्मीद की गई कि वह उसपर दुबारा गौर कर लेगे। लखनऊ मे इसका आखिरी फैसला करने के लिए अखिल-भारतीय काग्रेस-कमेटी की मीटिग की गई और आखिरी घडी तक करीब-करीब हम सभी का यह खयाल था कि वह राजी हो जायगे। मगर ऐसा न हुआ और आखिरी घड़ी मे उन्होने मेरा नाम पेश किया और उसपर जोर दिया। उनके आखिरी इन्कार से अखिल-भारतीय काग्रेस-कमेटी के लोग तो कुछ-कुछ भौचक्के रह गये और इस विषम स्थिति मे डाले जाने से कुछ-कुछ नाराज भी हुए। किसी दूसरे शख्स के उपलब्ध न होने की दशा मे, लाचारी से उन्होने आखिर मुझको चुन लिया।

मुझे पहले कभी इतनी झुझलाहट और जिल्लत महसूस नही हुई जितनी इस चुनाव पर। यह बात नही थी कि मुझे यह सम्मान दिये जाने का—क्योकि यह एक बड़े भारी सम्मान की बात है—भान न हो और अगर मै मामूली तरीके से चुना जाता तो मुझे खुशी भी हुई होती। मगर मुझे यह सम्मान तो सीधे रास्ते या बगल के रास्ते से भी नही मिला, मै तो गोया किसी छिपे रास्ते से आ खडा हुआ और अचानक लोगों को मुझे मंजूर

कर लेना पड़ा। उन्होंने किसी तरह इसे बरदाश्त किया और दवा की गोली की तरह मुझे निगल लिया। इससे मेरे स्वाभिमान को चोट पहुची और मुझे करीब-करीब महसूस हुआ कि मै इस सम्मान को लौटा दू। मगर खुशकिस्मती से मैने अपने भावो को प्रकट करने से अपने-आपको रोक लिया और भारी कलेजा लिये हुए वहा से चुपचाप चला आया।

इस फैसले पर जिसको सबसे ज्यादा खुशी हुई वह शायद मेरे पिताजी थे। वह मेरी राजनीति को पसन्द नही करते थे, मगर वह मुझे तो बहुत ज्यादा चाहते थे और मेरे लिए कुछ भी अच्छी बात होने से उन्हे खुशी होती थी। अक्सर वह मेरी नुक्ता-चीनी करते थे और मुझसे कुछ रुखाई से बोला करते थे, मगर कोई भी आदमी, जो उनकी सदिच्छा बनाये रखने की परवा करता हो, उनके सामने मेरे खिलाफ कुछ कह नही सकता था।

मेरा चुनाव मेरे लिए एक बडे सम्मान और उत्तरदायित्व की बात थी, और यह चुनाव इसलिए महत्त्व रखता था कि अध्यक्ष-पद पर बाप के बाद फौरन ही बेटा आ रहा था।

लाहौर-कांग्रेस नज़दीक आती जाती थी। इस बीच घटनाए एक-एक करके ऐसी घटती जाती थी, जिनसे मालूम होता था वे खुद अपनी ही किसी ताकत से आगे बढती जा रही है। व्यक्ति कितने ही बड़े क्यो न थे, मगर उनका बहुत ही थोड़ा हिस्सा था। व्यक्ति को यही मालूम होता था कि वह किसी बडी मशीन के अन्दर, जो बेरोक आगे बढ़ती हुई चली जा रही थी, सिर्फ एक पुर्जे की तरह ही है।

भाग्य की इस प्रगति को, शायद रोकने की आशा से ब्रिटिश सरकार एक कदम आगे बढी और वाइसराय लार्ड अर्विन ने एक गोल-मेज-कान्फ्रेंस करने की वावत एलान किया। उस एलान के शब्द वड़ी चालाकी-भरे थे। जिनका मतलव 'वहुत कुछ' भी और 'कुछ नही' भी हो सकता था, और हम कई को तो यह

साफ़ मालूम होता था कि 'कुछ नहीं' ही निकलेगा। अगर उसमें ज्यादा मतलब भी होता तो भी जो कुछ चाहते थे उसके करीब तक भी वह नही पहुच सकता था। वाइसराय के इस ऐलान के निकलते ही फौरन, और बड़ी जल्दी से, दिल्ली मे 'लीडरों की कान्फ्रेंस' बुलाई गई और कई दलों के लोग उसमें बुलाये गए। उसमे गांधीजी, मेरे पिताजी और विट्ठलभाई पटेल भी (जो उस समय तक असेंबली के प्रेसिडेंट ही थे) मौजूद थे और तेजबहादुर सप्रू वगैरा नरम दल के नेता भी थे। सबकी सहमति से एक संयुक्त प्रस्ताव या वक्तव्य तैयार किया गया, जिसमे वाइसराय का ऐलान कुछ शर्तों के साथ—जिनके बारे मे कहा गया था कि ये जरूरी है और पूरी की जानी चाहिए—मंजूर किया गया। अगर इन शर्तों को सरकार मंजूर कर लेगी तो सहयोग किया जायगा। ये शर्तें[1] काफी वजनदार थी और उनसे कुछ तो अन्तर होता ही।

नरम और प्रगतिशील सभी दलों के द्वारा ऐसा प्रस्ताव मंजूर किया जाना एक बड़ी विजय ही थी। मगर कांग्रेस के लिए तो यह नीचे गिरना था। सबके बीच मे एक सर्वसम्मत बात के रूप मे वह ऊंची चीज थी।

फिर भी वह संयुक्त वक्तव्य हममे से कुछ लोगो के लिए

---

[1]शर्तें ये थीं—

१—प्रस्तावित कान्फ्रेंस में सारी बातचीत हिंदुस्तान के लिए पूर्ण औपनिवेशिक पद के आधार पर होनी चाहिए।

२—कान्फ्रेंस में कांग्रेस के लोगों का सबसे ज्यादा प्रतिनिधित्व होना चाहिए।

३—राजनैतिक कैदियों की आम रिहाई हो।

४—अभी से आगे हिन्दुस्तान का शासन, मौजूदा हालत में जहां तक मुमकिन है, उपनिवेशों के शासन के ढंग पर चलना चाहिए।

एक कड़वी घूट था। स्वाधीनता की माग को छोड़ देना, चाहे सिर्फ कल्पना मे ही और सिर्फ थोडी देर के लिए ही क्यो न हो, एक गलत और खतरनाक बात थी। इसका मतलब यह था कि स्वाधीनता की बात सिर्फ एक चाल थी, जिसकी बिना पर कुछ सौदा किया जा सके, वह कोई सारभूत चीज न थी, जिसके बगैर हमे कभी सात्वना ही न हो सके। इसलिए मै दुविधा मे पड गया और मैने वक्तव्य पर हस्ताक्षर नही किये (सुभाष बोस ने तो निश्चित रूप से हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया) मगर, जैसा कि मुझसे अक्सर होता है, बहुत कहने-सुनने पर मै नरम पड़ गया और मैने हस्ताक्षर कर दिये। फिर भी मैं बडी बेचैनी लेकर आया और दूसरे ही दिन मैने काग्रेस के सभापति-पद से अलग हो जाने का विचार किया और अपना यह इरादा गाधीजी को लिख भेजा। मै नही समझता कि मैने यह गम्भीरता से लिखा था, हालाकि मै क्षुब्ध तो काफी हो गया था। लेकिन गाधीजी का एक धीरज का पत्र आने और तीन दिन तक सोचते रहने से आखिर मे मै शान्त हो गया।

लाहौर-काग्रेस से कुछ ही समय पहले, काग्रेस और सरकार के बीच मे समझौते का कोई आधार ढूढने की एक आख़िरी कोशिश की गई। वाइसराय लार्ड अर्विन के साथ एक मुलाकात का इन्तजाम किया गया। इस मुलाकात मे गाधीजी और मेरे पिताजी काग्रेस का दृष्टिकोण प्रकट करने के लिए मौजूद थे और मेरे खयाल से जिन्ना साहब, सर तेज बहादुर सप्रू और प्रेसिडेट पटेल भी थे। इस मुलाक़ात का कुछ नतीजा न निकला। सहमत होने का कोई सामान्य आधार हाथ न आया और यह पाया गया कि दो ख़ास पार्टिया, सरकार और काग्रेस, एक-दूसरे से बहुत फासले पर थी। इसलिए अब इसके सिवा कुछ वाकी न रहा कि काग्रेस अपना क़दम आगे बढावे। कलकत्ते मे दी हुई एक साल की मियाद खतम हो रही थी। अब कांग्रेस का आदर्श हमेशा के लिए स्वाधीनता घोषित होने को था और उसे प्राप्त करने के लिए

जरूरी कार्रवाइयां करने को थी।

: २४ :

पूर्ण स्वाधीनता और उसके बाद

मेरी स्मृति में लाहौर-कांग्रेस की तस्वीर आज भी साफ़ खिंची हुई है। यह कुदरती भी है, क्योंकि मैंने उसमे सबसे बड़ा हिस्सा लिया था और थोड़ी देर के लिए तो मै रंग-मच के केन्द्र में ही था और भीड़-भब्भड़ के उन दिनो मे मेरे दिल में जो-जो भावनाएं पैदा हुई, उनके खयाल से मुझे आनन्द होता है। लाहौर के लोगो ने भारी तादाद मे तथा दिल से मेरा जैसा शानदार स्वागत किया, उसे मै कभी नही भूल सकता। मै अच्छी तरह जानता था कि यह अपार उत्साह मेरे लिए व्यक्तिगत नही था, बल्कि एक प्रतीक के लिए, एक आदर्श के लिए था। मगर किसी आदमी के लिए यह भी कोई कम बात नही है कि वह, थोडे समय के लिए ही सही, बहुत लोगो की आखो मे और दिलो मे वैसा प्रतीक बन जाय। मेरे आनन्द का पार न था और मै मानो अपने व्यक्तित्व की मर्यादा को पार कर रहा था। मगर मुझपर क्या असर हुआ, इसका कोई महत्त्व नही है क्योंकि वहा तो बड़े-बड़े सवाल सामने थे। सारा वातावरण जोश से भरा हुआ था और अवसर की गम्भीरता का खयाल सब ओर छाया हुआ था। हमे सिर्फ नुक्ताचीनी या विरोध या राय के जाहिर करने के ही प्रस्ताव नही करने थे, मगर हमे ऐसी लड़ाई को न्योता देना था, जिससे सारा देश हिल जानेवाला था और जिसका असर लाखो की जिन्दगी पर पड़नेवाला था।

दूर भविष्य मे हमारे और हमारे देश के लिए क्या होनेवाला है, यह तो कोई भी नही कह सकता था। मगर निकट भविष्य मे क्या होगा, यह तो साफ दिखाई देता था। हमारे लिए और हमारे

प्रिय व्यक्तियों के लिए लड़ाई और तकलीफ सामने नजर आती थी। इस ख़याल ने हमारे उत्साह मे गम्भीरता ला दी थी और हमे अपनी जिम्मेदारी से बहुत आगाह कर दिया था। हमारा दिया हुआ हरेक वोट अपने आराम और सुख और पारिवारिक आनंद और मित्रो के मिलने-जुलने को बिदाई का पैगाम था, और था एकान्त के दिनो और रातों तथा शारीरिक और मानसिक कष्टों को निमन्त्रण !

स्वाधीनता और स्वाधीनता की लड़ाई को चलाने के लिए की जानेवाली कार्रवाई का ख़ास प्रस्ताव तो करीब-करीब एकमत से पास हो गया। कई हजारों मे से मुश्किल से बीस आदमियो ने उसके खिलाफ वोट दिया था। ख़ास प्रस्ताव इत्तफ़ाक़ से इकत्तीस दिसम्बर की आधी रात के घंटे की चोट के साथ, जबकि पिछला साल गुज़र कर उसकी जगह नया साल आ रहा था, मंजूर हुआ। इस तरह ज्योही कलकत्ता-काग्रेस की दी हुई एक साल की मोहलत खत्म हुई, त्योही नया फ़ैसला किया गया और लड़ाई की तैयारी शुरू की गई। काल का चक्र तो चल गया, मगर फिर भी हम यह नही जानते थे कि हमे कैसे और कब शुरूआत करनी चाहिए। अ० भा० काग्रेस कमेटी को हमारी लड़ाई की योजना बनाने और उसको चलाने का अख़्तियार दिया गया; मगर सब जानते थे कि असली फैसला तो गांधीजी के ही हाथ है।

लाहौर-कांग्रेस मे नजदीक के ही सीमाप्रान्त से बहुत लोग आये थे। इस प्रान्त से व्यक्तिगत प्रतिनिधि तो कांग्रेस की बैठक मे हमेशा आया ही करते थे। पिछले कुछ बरसो से खान अब्दुल-गफ़्फारखां काग्रेस के अधिवेशनो मे आकर हिस्सा लिया करते थे। मगर लाहौर मे पहली बार सीमाप्रान्त से सच्चे नौजवानो का एक बड़ा दल आकर अखिल भारतीय राजनैतिक लहर के सम्पर्क मे आया। उसके ताजा दिमागो पर बड़ा असर पड़ा और

वे यह खयाल और जोश लेकर गए कि वे आजादी की लड़ाई में सारे हिंदुस्तान के साथ है। वे सीधे-सादे मगर बडा काम करने वाले लोग थे। उन्हे हिंदुस्तान के दूसरे प्रान्त के लोगो की तरह महज बातचीत करने और बाल की खाल खीचने की आदत कम थी। उन्होने अपने लोगों को संगठित करना और उनमे नए-नए ख़यालात फैलाना शुरू किया। उन्हे कामयाबी भी मिली और सीमाप्रान्त के स्त्री-पुरुष, जो कि हिंदुस्तान की लड़ाई मे सबसे पीछे शामिल हुए थे, १९३० से महत्त्वपूर्ण और बड़ा हिस्सा लेने लगे।

लाहौर-कांग्रेस के बाद ही और उसके आदेशानुसार मेरे पिताजी ने असेम्बलीके काग्रेसी-मेम्बरों को अपनी-अपनी जगहों से इस्तीफा दे देने को कहा। करीब-क़रीब सभी एक साथ बाहर आ गए। कुछ इने-गिने लोगो ने बाहर आने से इन्कार किया, हालाकि इससे उनके चुनाव की प्रतिज्ञा भग होती थी।

फिर भी आगे के बारे मे हमे कुछ साफ सूझता न था। काग्रेस-अधिवेशन मे बड़ा जोश दिखाई देता था, मगर किसी को मालूम न था कि देश लड़ाई के कार्यक्रम का कहां तक साथ देगा। हम इतने आगे बढ गये थे कि अब पीछे नही जासकते थे। मगर देश का रुख क्या होगा, इसका करीब-करीब बिलकुल पता न था। अपनी लडाई को शुरू करने के लिए और देश की नब्ज भी पहचानने की दृष्टि से २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस मनाना तय हुआ। इस दिन देश-भर मे आजादी की प्रतिज्ञा ली जानेवाली थी।

इस तरह अपने कार्यक्रम की बाबत शंकाशील मगर कुछ-न-कुछ कारगर काम करने की इच्छा और उत्साह से हम घटनाओं के इन्तजार मे रहे। जनवरी के शुरू मे मै इलाहाबाद मे था; मेरे पिताजी ज्यादातर बाहर थे। यह एक बड़े भारी सालाना मेले—माघ मेले का वक्त था। शायद वह खास कुम्भ का साल

था और लाखों स्त्री-पुरुष लगातार इलाहाबाद मे, या यात्रियो की भाषा मे प्रयागराज मे, आ रहे थे। वे सब तरह के लोग थे, उनमे खासकर किसान थे और मजदूर, दूकानदार, कारीगर, व्यापारी, औद्योगिक और ऊंचे पेशेवाले लोग भी थे। वास्तव मे हिदुओ मे से सभी तरह के लोग आये थे। जब मै इस बड़ी भीड को और सगम पर जाते और आते हुए लोगो की अटूट धारा को देखता तो मै सोचा करता कि ये लोग सत्याग्रह और शान्तिपूर्ण सीधे हमले की पुकार का कितना साथ देगे ? इनमे से कितने लोग लाहौर के प्रस्तावो को जानते है या उनकी परवा करते है ? उनका वह विश्वास कितना आश्चर्यजनक और मजबूत है, जिससे वे और उनके बुजुर्ग हजारों बरसो से हिदुस्तान के हर हिस्से से पवित्र गगा मे स्नान करने के लिए चले आते थे ! क्या वे इस अदम्य उत्साह को अपनी जिन्दगी सुधारने के लिए राजनैतिक और आर्थिक कार्य मे नही लगा सकते या क्या उनके दिमागो मे धर्म का बाह्याचार और दकियानूसीपन इतना भर चुका है कि उनमे दूसरे खयालात की गुजाइश ही नही रही ? म तो यह जानता ही था कि ये दूसरे खयालात उनमे पहुच चुके है, जिनसे सदियो की शान्त निश्चिन्तता मे खलबली पैदा हो गई है। इन अस्पष्ट विचारो और आकाक्षाओं की हलचल के जनता मे फैलने से ही पिछले बारह वरसो मे बडे-बड़े उतार-चढाव आये थे, जिनसे हिदुस्तान की सूरत ही बदल गई है। इन विचारो के अस्तित्व के विषय मे और उनकी वड़ी भारी ताकत के वारे मे तो कोई शक ही न था। मगर फिर भी शक पैदा होते और सवाल उठते थे, जिनका तत्काल कोई जवाव न था। ये खयालात कितने फैल चुके है ? उनके पीछे कितनी ताकत है ? सगठित काम करने की कितनी योग्यता है ? लम्बे धैर्य की कितनी शक्ति है ?

यात्रियो के झुड-के-झुड हमारे घर आते थे। हमारा घर एक तीर्थ-स्थान, भारद्वाज-आश्रम, के पास ही पडता था, जहा पुराने जमाने मे एक विद्यापीठ था। मेले के दिनो मे सुवह से शाम तक

बे-शुमार लोग हमसे मिलने आते रहते थे। मेरे खयाल से ज्यादा-तर लोग तो कौतूहल से, और जिन बड़े आदमियों का नाम उन्होंने सुन रखा है उन्हे, खासकर मेरे पिताजी को, देखने की इच्छा से आते थे। मगर आनेवालो मे ऐसे भी बहुत-से लोग थे, जिनका झुकाव राजनीति की तरफ था, और वे कांग्रेस के बारे मे, उसमे क्या तय हुआ, और आगे क्या होनेवाला है ये सवाल भी पूछते थे। वे अपनी आर्थिक कठिनाइयां सुनाते थे और पूछते थे कि उनकी बावत उन्हे क्या करना चाहिए ? हमारे राजनीतिक नारे उन्हे खूब याद थे और सारा दिन मकान उन्हीसे गूजता रहता था। मैंने पहले तो, जैसे-जैसे बीस, पचास या सौ आदमियो का झुड एक के बाद एक आता था, हरेक से थोड़े शब्द कहना शुरू किया। मगर जल्दी ही यह काम असभव हो गया, और तब मैं उनके आने पर चुपचाप नमस्कार कर लेता था। मगर उसकी भी हद थी। फिर तो मैंने छिप जाने की कोशिश की। मगर यह सब फिजूल था। नारे ज्यादा-ज्यादा तेज लगने लगते, मकान के बरामदे इन मिलने वाले लोगों से भर जाते और हरेक दरवाजे और खिड़की मे से बहुत-से लोग हमे झाकने लगते। कुछ भी काम करना, बातचीत करना या भोजन करना तक मुश्किल हो जाता। इससे सिर्फ परेशानी ही नही होती,बल्कि झुझलाहट और चिढ़ भी होती थी। मगर फिर भी वे लोग तो आते ही थे। वे अपनी प्रेम-भरी चमकती आखों से, जिनमे पीढियो की गरीबी और मुसीबते झलक रही थी, देखते हुए हमारे ऊपर अपनी श्रद्धा और प्रेम बरसा रहे थे और उसके बदले मे सिवा भ्रातृ-भाव और सहानुभूति के कुछ नही मागते थे। इस प्रेम और श्रद्धा की प्रचुरता के प्रभाव स हृदय को अपनी अल्पता का अनुभव हुए विना नही रह सकता था।

: २५ :

सविनय आज्ञा-भंग शुरू

स्वाधीनता-दिवस, २६ जनवरी, १९३० आया और बिजली की चमक की तरह उसने हमे बता दिया कि देश मे सरगर्मी और उत्साह है। उस दिन हर जगह बड़ी-बड़ी सभाएं हुई, जिनमे बगैर भाषणो या विवेचनो के, शान्ति और गम्भीरता से लोगो ने आजादी की प्रतिज्ञा ली। सभाएं और जुलूस बडे प्रभावशाली थे। गांधीजी को इस दिवस के प्रदर्शन से आवश्यक बल मिल गया और जनता की नब्ज की ठीक पहचान रखने के कारण उन्होने समझ लिया कि लड़ाई छेड़ने का यह ठीक वक्त है। इसके बाद तो घटनाएं एक के बाद एक इस तरह घटित होने लगी, जैसाकि किसी नाटक मे रस की पराकाष्ठा होते समय होता है।

अब सबके सामने बड़ा सवाल यह था कि शुरूआत किस तरह हो? किस प्रकार का सविनय-भंग हम चलावे, जो कारगर हो, परिस्थिति के अनुकूल हो और जनता मे लोक-प्रिय हो? गाधीजी ने इसका रास्ता बताया।

'नमक' अचानक एक रहस्यपूर्ण, चमत्कारी शब्द बन गया। नमक-कर पर हमला होना था। नमक-कानून को तोड़ना था। हम हैरत मे पड़ गये। नमक का राष्ट्रीय सग्राम हमे कुछ अटपटा मालूम हुआ।

इसके बाद गांधीजी का वाइसराय से पत्र-व्यवहार हुआ और साबरमती-आश्रम से दाण्डी की नमक-यात्रा शुरू हुई। दिन-ब-दिन इस यात्रा-दल के बढने का हाल जैसे-जैसे लोग पढते थे देश मे जोश का पारा बढता जाता था। अहमदाबाद मे अ० भा० कांग्रेस कमेटी की बैठक इस लड़ाई की बाबत, जो प्राय. हमारे

सिर पर आ चुकी थी, आखिरी व्यवस्था करने के लिए हुई। इस बैठक मे हमारे सग्राम का नेता मौजूद नही था, क्योकि वह तो अपने यात्रीदल के साथ समुद्र की ओर जा रहा था और उसने वहा से लौटने से इन्कार कर दिया। अ० भा० काग्रेस कमेटी ने योजना वनाई कि अगर गिरफ्तारियाँ हो तो क्या-क्या किया जाना चाहिए और यदि यह कमेटी फिर बैठक न कर सके तो उसकी तरफ से कार्य-समिति के गिरफ्तार शुदा लोगो की जगह खुद नए मेम्वर नियुक्त कर देने और अपने स्थान पर ऐसे ही अधिकार रखने वाले अपने अनुगामी को नामजद कर देने के व्यापक अधिकार सभापति को दिये गये। प्रान्तीय और स्थानीय काग्रेस-कमेटियो ने भी अपने-अपने सभापतियो को ऐसे ही अधिकार दे दिये।

इस तरह अपनी आखिरी तैयारिया करके, अहमदावाद मे हमने अ० भा० काग्रेस कमेटी के अपने साथियो से विदा मागी, क्योकि यह किसी को मालूम न था कि आगे हम कब और कैसे इकट्ठे हो सकेगे, या इकट्ठे हो भी सकेगे या नही ? हम अपनी-अपनी जगहो पर जाकर अ० भा० काग्रेस कमेटी के आदर्शो के अनुसार अपनी-अपनी जगह के इन्तजाम को आखिरी तौर पर ठीक-ठाक करने और जैसा कि सरोजिनी नायडू ने कहा, जेल-यात्रा के लिए बिस्तर वाधने को जल्दी-जल्दी चल दिये।

लौटते वक्त पिताजी और मै गाधीजी से मिलने गये। वह अपने यात्री-दल के साथ जम्बूसर मे थे। वहा हम उनके साथ कुछ घटे रहे और फिर वह अपने दल के साथ समुद्र-यात्रा के दूसरे पडाव के लिए पैदल चल पडे। वह हाथ मे डडा लिये हुए, अपने अनुयायियो के आगे-आगे जा रहे थे। उनके क़दम मजबूत थे और चेहरे पर शाति तथा निर्भयता छिटकी पड़ती थी। इस तरह उस समय मैने उनके आखिरी दर्शन किये। वह एक दिल हिला देनेवाला दृश्य था।

जम्बूसर मे मेरे पिताजी ने गाधीजी से सलाह करके यह तय किया था कि वह इलाहाबाद का अपना पुराना मकान राष्ट्र को दान कर देगे, और उसका नाम बदल कर 'स्वराज-भवन' रख देगे। इलाहाबाद लौट कर उन्होंने उसकी घोषणा कर दी और काग्रेसवालो को उसका कब्जा भी दे दिया। उस बड़े मकान का हिस्सा अस्पताल बना दिया गया।

अप्रैल आया। गांधीजी समुद्र-तट पर पहुच गये और हम नमक-कानून को तोड़कर सविनय-भग करने की उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे।

कई महीनो से हम अपने स्वयसेवको को कवायद की तालीम दे रहे थे और कमला और कृष्णा (मेरी पत्नी और बहन) भी उनमे शामिल हो गई थी और उन्होने इस काम के लिए मर्दाना लिबास धारण किया था। स्वयसेवको के पास कोई भी हथियार, लाठिया, तक न थी। उनको तालीम देने का मकसद यह था कि वे अपने काम मे ज्यादा योग्य और कुशल हो जाय और बडी-बडी भीडो को नियत्रण मे रख सके। राष्ट्रीय सप्ताह, १९१९ के सत्याग्रह-दिवस से लेकर जलिया-वाला बाग तक की घटनाओ की यादगार मे, हर साल मनाया जाता है, और छ अप्रैल इस सप्ताह का पहला दिन था। इसी दिन गाधीजी ने दाण्डी मे समुद्र के किनारे नमक-कानून तोडा, और तीन-चार दिन बाद सारे काग्रेस-सगठनो को इजाजत दे दी गई कि वे नमक-कानून तोडे और अपने-अपने क्षेत्र मे सविनय आज्ञा-भग शुरू कर दे।

ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कोई बटन दबा दिया गया और अचानक सारे देश मे, शहरो मे और गावो मे, जिधर देखो रोज नमक बनाने की ही धूम मच गई। नमक बनाने के लिए कई अजीब-अजीब तरकीबे निकाली गई। इस बारे मे हमारी जानकारी बहुत ही थोडी थी, इसलिए जहा इस बारे मे कुछ भी

लिखा मिला वह हमने पढ डाला और इस बावत जानकारी देने के लिए कई पर्चिया प्रकाशित की, और बर्तन और कढाइया इकट्ठी की, अन्त मे एक भद्दी-सी चीज बना ही डाली, जिसे हम बड़ी बहादुरी से उठाकर दिखाते और अक्सर बहुत ऊची क़ीमत पर नीलाम भी करते थे। वह अच्छी चीज है या बुरी, इसका सचमुच कोई महत्त्व न था, क्योकि ख़ास चीज तो उस बेहूदे नमक-कानून को तोडना था। इसमे हम जरूर कामयाव हुए, चाहे हमारा बनाया हुआ नमक कितना भी ख़राब क्यो न हो। जब हमने देखा कि लोगो मे उत्साह उमड रहा है और नमक बनाना जगली आग की तरह चारो तरफ फैल रहा है, तो हमे कुछ शर्म मालूम हुई, क्योकि जब गाधीजी ने इस तरीके की तजवीज पहले-पहल रक्खी थी तब हमने उसकी कामयाबी मे शक किया था। हमे ताज्जुब होता था कि इस व्यक्ति मे लोगो पर असर डालने और उनसे सगठित रूप म काम करवाने की कितनी अद्भुत सूझ है।

मै चौदह अप्रैल को गिरफ्तार हो गया, जबकि मै रायपुर (मध्यप्रान्त) की एक कांफ्रेस मे शामिल होने के लिए रेलगाडी पर सवार हो रहा था। उसी दिन जेल मे मेरा मुकदमा भी हो गया और मुझे नमक-कानून के मातहत छ महीने की सजा दी गई। अपनी गिरफ्तारी की सम्भावना से मैने (अ० भा० काग्रेस कमेटी द्वारा दी गई नई सत्ता के अनुसार) पहले ही अपनी अनुपस्थिति मे काग्रेस के सभापति-पद के लिए गांधीजी को नामजद कर दया था, और अगर वह मजूर न करे तो, मेरी दूसरी नामजदगी पिताजी के लिए थी। जैसा कि मेरा ख़याल था, गांधीजी राजी न हुए और इसलिए पिताजी ही कांग्रेस के स्थानापन्न सभापति बने। उनकी तन्दुरुस्ती ठीक नही थी, फिर भी वह बडे जोर-शोर से लडाई मे कूद पडे। उन शुरू के महीनो मे उनके जबरदस्त सचालन और अनुशासन से आन्दोलन को बहुत लाभ

हुआ। आन्दोलन को तो बहुत लाभ हुआ, मगर इससे उनकी रही-सही तन्दुरुस्ती और शक्ति बिलकुल चली गई।

उन दिनो बडी सनसनी पैदा करनेवाले समाचार आया करते —जुलूस का निकलना, लाठी-प्रहारो का होना और गोलिया चलाना, नामी-नामी आदमियो की गिरफ्तारियो पर अक्सर हडतालें होना, पेशावर-दिवस, गढवाली-दिवस आदि का खास तौर पर मनाया जाना वगैरा। उस वक्त तो विदेशी कपडे और तमाम अग्रेजी माल का पूरा-पूरा बहिष्कार किया गया था। जब मैने सुना कि मेरी बूढी माताजी और बहने भी गरमी की तेज धूप मे विदेशी कपड़े की दूकानो के सामने धरना देने के लिए खड़ी रहती है तो इसका मेरे दिल पर बडा गहरा असर हुआ। कमला ने भी यह काम किया। मगर उसने कुछ और ज्यादा भी किया। उसने इस आन्दोलन के लिए इलाहाबाद शहर और जिले मे इतनी शक्ति और निश्चय से काम किया कि मै भी दग रह गया। उसने अपने गिरते हुए स्वास्थ्य की बिलकुल परवा नही की। वह सारे दिन धूप मे घूमा करती थी और उसने बडी सगठन-शक्ति का परिचय दिया। मैने इसका कुछ-कुछ हाल जेल मे सुना था। बाद मे जब पिताजी जेल मे मेरे पास आ गये तब उन्होने मुझे बताया कि वह कमला के काम की, खासकर उसकी सगठन-शक्ति की, कितनी ज्यादा सराहना करते थे। पिताजी मेरी माताजी का या लड़कियो का तेज धूप मे इधर-उधर जाना पसन्द नही करते थे, मगर कभी-कभी जबानी मना करने के सिवा उन्होने उन्हे रोका नही।

उन शुरू के दिनो मे जो खबरे हमारे पास आया करती थी, उनमे से सबसे बडी खबर २३ अप्रैल की पेशावर की घटना और बाद मे सारे सीमाप्रान्त मे होनेवाली घटनाएं थी। हिन्दुस्तान मे कही भी मशीनगनो की गोलियो के सामने इस प्रकार अनुशासन-पूर्ण और शान्तिपूर्ण हिम्मत दिखाई जाती तो उससे सारा देश

थर्रा उठता। मगर सीमाप्रान्त के लिए तो यह घटना और भी ज्यादा महत्त्व रखती थी, क्योकि पठान लोग हिम्मत के लिए तो मशहूर थे, मगर शान्तिपूर्ण स्वभाव के लिए मशहूर नही थे। इन्ही पठानो ने वह मिसाल कायम कर दी जो हिन्दुस्तान मे अद्वितीय थी। सीमाप्रान्त मे ही वह मशहूर घटना हुई, जिसमे गढवाली सिपाहियो ने नि शस्त्र जनता पर गोली चलाने से इन्कार कर दिया। उन्होने इसलिए इन्कार कर दिया कि सच्चे सिपाहियों को निहत्थी भीड़ पर गोली चलाना नापसन्द होता है और इसलिए भी कि भीड के लोगो से उन्हे सहानुभूति थी।

उन दिनों बडी-बडी आश्चर्यजनक बाते हुई, मगर सबसे अधिक आश्चर्य की बात थी स्त्रियो का राष्ट्रीय सग्राम मे भाग लेना। स्त्रिया बडी तादाद मे अपने घर के घेरों से बाहर निकल आई, और हालॉकि उन्हे सार्वजनिक कार्यों का अभ्यास न था फिर भी वे लड़ाई मे पूरी तरह कूद पड़ी। विदेशी कपडे और शराब की दूकानों पर धरना देने का काम तो उन्होने बिलकुल अपना ही बना लिया। सभी शहरो मे सिर्फ स्त्रियो के ही भारी-भारी जुलूस निकाले, गये आमतौर पर स्त्रियॉ पुरुषो की बनिस्बत ज्यादा मजबूत साबित हुई। अक्सर प्रान्तो मे या स्थानीय क्षेत्रो मे वे 'कांग्रेस-डिक्टेटर' भी बनती थी।

अकेला नमक-कानून ही नही तोड़ा गया, बल्कि दूसरी दिशाओ मे भी सविनय-भंग होने लगा। वाइसराय द्वारा कई आर्डिनेन्स—जिनमे कई कामो पर प्रतिबन्ध लगाये गये थे—निकाले जाने से भी इस काम मे मदद मिली। जैसे-जैसे ये आर्डिनेन्स और प्रतिबन्ध बढते गये, वैसे-वैसे उन्हे तोडने के मौके भी बढते गये और सविनय-भग की यह शक्ल हो गई कि आर्डिनेन्स से जिस काम की मुमानियत की जाती थी, वही काम किया जाता था। पहल निश्चित रूप से काग्रेस और लोगो के हाथ मे रही थी और जब एक आर्डिनेन्स से गवर्नमेण्ट की निगाह मे परिस्थिति

न सभली तब वाइसराय ने और नये-नये आर्डिनेन्स निकाले। काग्रेस-कार्य-समिति के कई मेम्बर गिरफ्तार कर लिये गए थे, मगर उनकी जगह नये मेम्बर नियुक्त कर लिये गए और इस तरह वह काम करती ही रही। हर सरकारी आर्डिनेन्स के मुकाबले मे कार्य-समिति अपना प्रस्ताव पास करती थी और उस आर्डिनेन्स के लिए क्या करना चाहिए इसके लिए आज्ञा जारी करती थी। इन आज्ञाओ का देश मे आश्चर्यजनक समानता से पालन होता था।

गाधीजी ५ मई को गिरफ्तार कर लिये गए। उनकी गिरफ़्तारी के बाद समुद्र के पश्चिम किनारे पर नमक के कारखानो और गोदामो पर धावे किये गए। इन धावो मे पुलिस की बेरहमी की बहुत दर्दनाक घटनाए हुई। उन दिनो भारी-भारी हडतालो, जुलूसो और लाठी-प्रहारो के कारण बम्बई सबसे ज्यादा प्रसिद्ध हो रहा था। इन लाठी-प्रहारो के घायलो के इलाज के लिए कई आरजी अस्पताल कायम हो गये थे। बम्बई मे कई बाते ऐसी हुई, जो मार्के की थी और बडा शहर होने के कारण बम्बई मे प्रकाशन की सुविधा भी थी। छोटे क़स्बो और देहाती हिस्सो मे भी ऐसी ही बाते हुई, मगर वे सब प्रकाश मे न आ पाई।

जून के अन्त मे मेरे पिताजी बम्बई गये और उनके साथ माताजी और कमला भी गई। वहा उनका बड़ा स्वागत किया गया। जब वह वहां ठहरे हुए थे, तभी कुछ बहुत जबरदस्त लाठी-प्रहार हुए। वास्तव मे यह तो बम्बई मे मामूली-सी बात हो गई थी। करीब दो हफ़्ते बाद ही वहां सारी रात एक असाधारण अग्नि-परीक्षा हुई, जबकि मालवीयजी और कार्य-समिति के मेम्बर एक बडी भारी भीड़ के साथ पुलिस के सामने, जिसने उनका रास्ता रोक रक्खा था, सारी रात डटे रहे।

बम्बई से लौटने पर ३० जून को पिताजी गिरफ्तार कर लिये गए और उनके साथ सैयद महमूद भी पकडे गए। वे कार्य-

समिति के, जो गैर-कानूनी करार दे दी गई थी, स्थानापन्न अध्यक्ष और मत्री की हैसियत से गिरफ्तार हुए। दोनो को छ-छ महीने की सजा मिली।

वम्बई जाने से पिताजी को बहुत मेहनत करनी पड़ी। बड़े सवेरे से वहुत रात तक उन्हे काम करना पडता था और हर जरूरी काम का फैसला उन्हे ही करना पड़ता था। वह वहुत दिनो से वीमार-से तो थे ही, अव वह बिलकुल थककर लौटे और अपने डाक्टरो की जरूरी सलाह से उन्होने फ़ौरन पूरी तरह आराम लेने का फैसला कर लिया। उन्होने मसूरी जाने की तैयारी की और सामान वगैरा वँधवा लिया; मगर जिस दिन वह मसूरी जाना चाहते थे उससे एक दिन पहले ही वह नैनी सेण्ट्रल जेल की हमारी वैरक मे हमारे पास आ पहुचे।

: २६ :

नैनी-जेल में

मै करीव सात साल के वाद फिर जेल गया था और जेल-जीवन की स्मृतिया कुछ-कुछ धुधली हो गई थी। मै नैनी सेण्ट्रल जेल मे रखा गया था, जोकि प्रान्त का एक वड़ा जेलख़ाना है। वहा मुझे अकेले रहने का एक नया अनुभव मिला। मेरा अहाता वडे अहाते से, जिसमे कि वाईस सौ या तेईस सौ कैदी थे, अलग था। वह एक छोटा-सा गोल घेरा था, जिसका व्यास लगभग एक सौ फुट था और जिसके चारो तरफ करीव-करीव पन्द्रह फुट ऊची गोल दीवार थी। उसके वीचोवीच एक मटमैली और भद्दी-सी इमारत थी, जिसमे चार कोठरिया थी। मुझे इनमे से दो कोठरिया जो एक-दूसरे से मिली हुई थी, दी गई। एक नहाने-धोने वगैरा के लिए थी। दूसरी कोठरिया कुछ वक़्त तक ख़ाली रही।

बाहर के विक्षोभ और दौड़-धूप के जीवन के बाद, यहा मुझे कुछ अकेलापन और उदासी मालूम हुई। मै इतना थक गया कि दो-तीन दिन तक तो मै खूब सोता रहा। गरमी का मौसम शुरू होगया था और मुझे रात को अपनी कोठरी के बाहर, अन्दर की इमारत और अहाते की दीवार के बीच की तग जगह मे, खुले मे सोने की इजाजत मिल गई थी। मेरा पलग भारी-भारी जजीरो से कस दिया गया था, ताकि मै कही उसे लेकर भाग न जाऊ या शायद इसलिए कि पलग को कही अहाते की दीवार पर चढने की सीढ़ी न बना लिया जाय। रात भर अजीब तरह की आवाजे आया करती थी। खास दीवार की निगरानी रखने वाले सजायाफ्ता पहरेदार अक्सर एक-दूसरे को तरह-तरह की आवाजे लगाया करते थे। कभी-कभी वे ऐसी लम्बी आवाजे लगाते थे जो अन्त मे दूर तक चलती हुई तेज हवा के कराहने की-सी आवाजे मालूम होती थी। बैरको के अन्दर से कैदी-चौकीदार बराबर जोर-शोर से अपने कैदियो को गिनते थे और कहते थे कि सब ठीक है। रात मे कई बार कोई-न-कोई जेल-अफसर अपना चक्कर लगाता हुआ हमारे अहाते मे आ जाता था और जो सिपाही ड्यूटी पर होता था उससे वहा का हाल पूछता था। चूकि मेरा अहाता दूसरे अहातो से कुछ दूर था, ये आवाजे ज्यादातर साफ सुनाई न देती थी, और पहले-पहल मै समझ न सका कि ये क्या है। पहले-पहल तो मुझे ऐसा लगा कि मै किसी जगल के पास हू और किसान लोग अपने खेतो से जगली जानवरो को भगाने के लिए चिल्ला रहे है, और कभी-कभी ऐसा मालूम होता था कि मानो रात मे स्वय जगल और जानवर, सब मिलकर गीत गा रहे है।

मै सोचता हू कि यह मेरा महज खयाल ही है या यह सचाई है कि चौकोरी दीवार की बनिस्बत गोल दीवार मे आदमी को अपने कैद होने का ज्यादा भान होता है। कोनो और मोटो के न होने से यह भाव हमारे मन मे और भी बढ जाता है कि

हम यहां दबाये जा रहे है। दिन के वक्त वह दीवार आसमान को भी ढक लेती थी और उसके एक छोटे हिस्से को ही देखने देती थी। मै—

उस नन्हे नीले वितान पर बन्दी जिसे कहे आकाश—
उड़ते हुए मेघ-खडो पर जिनमे रजत-ऊर्मि-आभास;[१]

अपनी सजल सतृष्ण दृष्टि डाला करता था। रात को वह दीवार मुझे और भी ज्यादा घेर लेती थी और मुझे ऐसा लगता था कि मै किसी कुए के भीतर हू। कभी-कभी तारों से भरा हुआ आसमान का जितना हिस्सा मुझे दिखाई देता था वह मुझे असली नही मालूम होता था। वह किसी बनावटी, तारामण्डल का हिस्सा-सा लगता था।

मेरी बैरक और आहाता, आम तौर पर, सारे जेल मे कुत्ता-घर कहलाता था। यह एक पुराना नाम था और इसका मुझसे कोई ताल्लुक नही था। यह छोटी बैरक, सबसे अलग, इसलिए बनाई गई थी कि इसमे खासतौर पर खतरनाक अपराधी, जिन्हे अलग रखने की जरूरत हो, रखे जाय। बाद मे वह राजनैतिक कैदियों, नजरबन्दो वगैरा को रखने के काम मे लिया जाने लगा, जो सारे जेल से अलग रखे जा सकते थे। आहाते के सामने कुछ दूर पर एक ऐसी चीज थी, जिसे पहले-पहल अपनी बैरक से देखकर मुझे बडा धक्का-सा लगा। वह एक बड भारी पिजरा-सा था, जिसके अन्दर आदमी गोल-गोल चक्कर काट रहे थे। बाद मे मुझे पता लगा कि यह पानी खीचने का पम्प था, जिसे आदमी चलाते थे और जिसमे एक साथ सोलह आदमी लगते थे। देखते-देखते आदमी के लिए हर चीज मामूली हो जाती है। इसलिए मै भी उसके देखने का आदी हो गया। मगर हमेशा वह मुझे

---

[१] ऑस्कर वाइल्ड के अंग्रेजी पद्य का भावानुवाद। कवि ने अपने जेल-जीवन में 'रीडिंग जेल-प्रशस्ति' नामक एक काव्य लिखा है। उसमें ये पंक्तियां उद्धृत की हैं। —अनु०

मनुष्य-शक्ति के उपयोग का बिलकुल मूर्खतापूर्ण और जगली तरीका मालूम हुआ है और जब कभी मै उसके पास से गुजरता तो मुझे किसी पशु-प्रदर्शनी की याद आ जाती।

कुछ दिनो तक तो मुझे कसरत या दूसरे किसी मतलब से अपने आहाते के बाहर जाने की इजाजत न मिली। बाद मे मुझे बड़े सवेरे, जब प्राय अन्धेरा ही रहता था, आधा घटा बाहर निकलने और मुख्य दीवार के सहारे-सहारे अन्दर घूमने या दौड लगाने की इजाजत मिल गई। यह बडे सुबह का वक्त मेरे लिए इसलिए तजवीज किया गया था कि मै दूसरे कैदियो के सम्पर्क मे न आ सकू, या वे मुझे देख न ले। पर मुझे उससे बडी ताजगी आ जाती थी। इस थोडे-से वक्त मे ज्यादा-से-ज्यादा खुला व्यायाम करने की गरज से मै दौड लगाया करता था। दौडने के अभ्यास को मैने धीरे-धीरे बढा लिया था और मै रोज दो मील से ज्यादा दौड़ लिया करता था।

मै सवेरे बहुत जल्दी, करीब चार या साढे तीन बजे ही जब बिलकुल अधेरा रहता था, उठ जाया करता था। कुछ तो जल्दी सोने से भी जल्दी उठना हो जाता था, क्योकि मुझे जो रोशनी मिली थी वह ज्यादा पढने के लिए काफी नही थी। मुझे तारो को देखते रहना अच्छा लगता था और कुछ प्रसिद्ध तारो की स्थिति देखकर मुझे समय का अन्दाज हो जाता था। जहा मै लेटता था वहा से मुझे ध्रुव-तारा दीवार के ऊपर झाकता हुआ दिखाई देता था और उससे असाधारण शान्ति मिलती थी। उसके चारो तरफ का आसमान चक्कर काटता था, मगर वह वही कायम था। वह मुझे प्रसन्नतापूर्ण और दीर्घ उद्योग का प्रतीक मालूम होता था।

जेल मे हमे दैनिक पत्र नही मिलता था, मगर एक हिन्दी साप्ताहिक पत्र से हमे कुछ खबरे मिल जाया करती थी और ये खबरे ही अक्सर हमारी कल्पनाओ को तेज कर दिया करती थी।

रोज लाठी-प्रहार होना, किसी-किसी दिन गोली चलना, शोला-पुर मे फौजी कानून जारी होना, जिसमे राष्ट्रीय झंडा ले जाने के लिए ही दस साल की सजा दी गई थी, वगैरा खबरे आती थी। सारे देश मे हमे अपने लोगों, खासकर स्त्रियो पर बड़ा अभिमान होने लगा। मुझे तो अपनी माता, पत्नी और वहनो तथा दूसरी चचेरी बहनो और महिला-मित्रो के कार्यो के कारण विशेष सन्तोष हुआ और हालाकि मै उनसे दूर था और जेल मे था, फिर भी मुझे ऐसा लगा कि हम सब एक ही महान कार्य मे साथ-साथ कार्य करने के नये नाते से एक-दूसरे के वहुत पास आ गये है। ऐसा मालूम होने लगा मानो परिवार तो उससे भी वडे समुदाय मे समा गया है। मगर फिर भी उसमे पुरानी मधुरता और निकटता वनी रही। कमला ने तो मुझे आश्चर्य मे ही डाल दिया, क्योकि उसकी क्रिया-शीलता और उत्साह ने उसकी बीमारी को दवा दिया और कम-से-कम कुछ समय के लिए तो वह वहुत ज्यादा काम-काज करते रहने पर भी चगी बनी रही।

जिस वक्त वाहर दूसरे लोग खतरे का मुकावला कर रहे है और कष्ट उठा रहे है, उस वक्त मै जेल मे आराम से समय विता रहा हू, यह खयाल मुझे दिक करने लगा। मै वाहर जाने की इच्छा करता था, किन्तु नही जा सकता था। इसलिए मैने अपना जेल-जीवन वडा कठोर और कामकाजी वना लिया। मै अपने चर्खे पर रोज करीव तीन घटे सूत कातता था। इसके अलावा दो या तीन घटे मै निवाड वुनता, जो मैने जेल-अधिकारियों से खासतौर पर माग ली थी। मै इन कामो को पसन्द करता था। इनमे न ज्यादा जोर पड़ता था, न थकावट होती थी और मेरा समय काम मे लग जाता था। इससे मेरे दिमाग का वुखार भी शान्त हो जाता था। मै वहुत पढता रहता था या सफाई करने या कपडे धोने वगैरा मे लगा रहता था। मै मशक्कत अपनी खुशी से ही करता था, क्योकि मुझे सजा सादी मिली थी।

: २७ :

यरवडा में सन्धि-चर्चा

पिताजी की गिरफ्तारी के साथ ही, या उसके फौरन बाद ही, कार्य-समिति गैर-कानूनी करार दे दी गई। इससे एक नई स्थिति पैदा हो गई––यदि कमेटी अपनी मीटिंग करे तो सब-के-सब मेम्बर एक साथ गिरफ्तार हो सकते थे। इसलिए कार्य-वाहक सभापतियों को जो अख्तियार दे दिया गया था उसके मुताबक स्थानापन्न मेम्बर उसम और जोडे गए और इस सिल-सिले मे कई स्त्रिया भी मेम्बर बनी। कमला भी उनमे थी।

पिताजी जब जेल आये तो उनकी तन्दुरुस्ती निहायत खराब थी और वह जिन हालतो मे वहां रक्खे गये थे उनमे उन्हे वडी तकलीफ थी। सरकार ने जान-बूझकर यह स्थिति पैदा नही की थी, क्योकि वह अपनी तरफ से तो उनकी तकलीफ कम करने की भरसक कोशिश करने को तैयार थी, परन्तु नैनी-जेल मे वह अधिक कुछ नही कर सकी। मेरी बैरक की चार छोटी-छोटी कोठ-रियो मे हम चार आदमियो को एक साथ रख दिया गया। जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने सुझाया भी कि पिताजी को किसी दूसरी जगह रख दे, जहा उन्हे कुछ ज्यादा जगह मिल जाय, लेकिन हम लोगो ने एक साथ रहना ही वेहतर समझा, क्योक इससे हम कोई-न-कोई उनकी सम्हाल रख सकते थे।

वारिश शुरू ही हुई थी पर कोठरी के अन्दर की जमीन मुश्किल से सूखी रहती थी, क्योकि छत से पानी जगह-जगह टपकता रहता था। रात के वक्त रोज यह सवाल उठता कि पिताजी का बिछौना हमारी कोठरी से सटे उस छोटे-से बरामदे में, जो १० फुट लम्बा और ५ फुट चौडा था, कहा लगाया जाय,

जिससे पानी से बचाव हो सके ? कभी-कभी उन्हे बुखार आ जाता था। आखिर जेल-अधिकारियो ने हमारी कोठरी से लगा हुआ एक और अच्छा बड़ा बरामदा बनवाना तय किया। बरामदा बन तो गया और उससे ज्यादा आराम भी मिलता, मगर पिताजी को उसका कुछ फायदा न मिला, क्योकि उसके तैयार होने के बाद शीघ्र ही उन्हे रिहा कर दया गया। तब हममे से जो लोग वहा पीछे रह गये थे उन्होने उससे पूरा फायदा उठाया।

जुलाई के अखीर मे यह चर्चा बहुत सुनाई दी कि सर तेज-बहादुर सप्रू और जयकर साहब इस बात की कोशिश कर रहे है कि कांग्रेस और सरकार के बीच सुलह हो जाय। हमने यह खबर एक दैनिक पत्र मे पढी, जो पिताजी को खासतौर पर बतौर रियाअत के दिया जाता था। उसमे हमने वह सारा पत्र-व्यव-हार पढा, जो वाइसराय लार्ड अर्विन और सर सप्रू तथा जयकर साहब के बीच हुआ था। बाद मे हमे यह भी मालूम हुआ कि हमारे ये 'शातिदूत' गाधीजी से भी मिले थे।

२७ जुलाई को सर तेजबहादुर सप्रू और जयकर अचानक नैनी-जेल मे हमसे मिलने आ पहुचे। वे गाधीजी का एक पत्र साथ लाये थे। उस दिन तथा दूसरे दिन हम लोगो मे बडी देर तक बात-चीत हुई। पिताजी को हरारत थी। इस बातचीत से वह बहुत थक गए। हमारी बातचीत और बहस घूम-घामकर वही आ जाती थी जहां से शुरू हुई थी। हम लोगो के राजनैतिक दृष्टि-बिन्दु इतने जुदा-जुदा थे कि हम मुश्किल से एक दूसरे की भाषा और भावो को समझ पाते थे। हमे यह साफ दिखाई देता था कि मौजूदा हालत मे कांग्रेस और सरकार के बीच सुलह होने का कोई मौका नही है। हमने अपने साथियो—कार्य-समिति के सदस्यो—और खासकर गाधीजी से सलाह किये बिना अपनी तरफ से कुछ भी कहने से इन्कार कर दिया और हमने इस आशय की एक चिट्ठी गाधीजी को लिख भी दी।

ग्यारह दिन बाद ८ अगस्त को डाक्टर सप्रू वाइसराय का जवाव लेकर फिर हमसे मिलने आये। वाइसराय को इस बात पर कोई ऐतराज न था कि हम लोग यरवडा जावे (यरवडा पूना के पास है और यही की जेल मे गाधीजी रखे गये थे), लेकिन वह तथा उनकी कौसिल हमे सरदार वल्लभभाई, मौलाना अबुल-कलाम आजाद और कार्य-समिति के दूसरे मेम्बरो से मिलने की इजाजत नही दे सकती थी, जोकि बाहर थे और सरकार के खिलाफ क्रियात्मक आन्दोलन कर रहे थे।

दो दिन बाद, १० अगस्त को, हम तीनो—पिताजी, महमूद और मै—एक स्पेशल ट्रेन मे नैनी से पूना भेजे गये। हमारी गाडी बड़े-वडे स्टेशनो पर नही ठहरी, हम उन्हे सपाटे से पार करते हुए चले गए, कही-कही छोटे और किनारे के स्टेशनो पर ट्रेन ठहराई गई। फिर भी हमारे जाने की खवर हमसे आगे दौड़ गई और लोगो की वडी भीड स्टेशन पर—जहा हम ठहरे वहा भी और जहा नही ठहरे वहा भी—इकट्ठी हो गई। हम ११ ता० की रात को पूना के नजदीक खिड़की स्टेशन पर पहुचे।

हमने उम्मीद तो यह की थी कि हम गाधीजी की वैरक मे ठहराए जायँगे या कम-से-कम उनसे जल्दी ही मुलाकात हो जायगी। यरवडा के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने तो यही तजवीज कर रक्खी थी, लेकिन ऐन वक्त पर उन्हे अपना प्रवन्ध वदल देना पडा। जो पुलिस-अफसर हमारे साथ नैनी से आया था, उसके द्वारा यरवडा वालो को ऐसी ही कुछ हिदायते मिली थी। सुपरिण्टेण्डेन्ट कर्नल मार्टिन ने तो हमे इस रहस्य का पता न दिया, परन्तु पिताजी ने जो पूछताछ की उससे यह मालूम हो गया कि हमे गांधीजी से (कम-से-कम पहली वार तो) सप्रू और जयकर साहव के सामने ही मिलने दिया जायगा। यह अन्देशा किया गया था कि अगर हम पहले मिल लेगे तो हमारा रुख कडा हो जायगा और हम सब और भी मजबूत हो जायगे। इसपर पिताजी को वहुत

बुरा मालूम हुआ। वहा जाकर गांधीजी से न मिलने देना, जिनसे मिलने के लिए हम इतनी दूर नैनी से लाये गये, गोया हमे तरसाना और तड़पाना था। आखिर १३ ता० को दोपहर के पहले हमे खबर की गई कि सर सप्रू और जयकर साहब तशरीफ़ ले आये है और गाधीजी भी जेल के दफ्तर मे उनके साथ मौजूद है और आप सबको वही बुलाया है। पिताजी ने जाने से इन्कार कर दिया और जब जेलवालो की तरफ से बहुतेरी सफाइयां दी गई और माफिया मागी गई और यह तय पाया कि हम पहले अकेले गाधीजी से ही मिलाये जायेगे, तव वह वहा जाने को राजी हुए। आगे चलकर हम सबके सम्मिलित अनुरोध पर सरदार पटेल और जयरामदास दौलतराम, जो दोनो यरवडा ले आये गये थे और सरोजिनी नायडू भी, जो हमारे सामने की स्त्री-वैरक मे ही रक्खी गई थी, हमारे साथ वातचीत मे शरीक किये गये। उसी रात पिताजी, महमूद और मैं तीनों गाधीजी के अहाते मे ले जाये गये और यरवडा से चलने तक हम वही रहे। वल्लभभाई और जयरामदास भी वहां लाये गये और वे भी वही रक्खे गये, जिससे कि हमारे आपस मे सलाह-मशवरा किया जा सके।

१३, १४ और १५ अगस्त तक सप्रू और जयकर साहव से हमारा मशवरा जेल के दफ्तर मे होता रहा और हमने आपस मे चिटठी-पत्री द्वारा अपने-अपने विचार भी प्रदर्शित कर दिये, जिनमे हमारी तरफ से वे कम-से-कम शर्ते वता दी गई, जिनके पूरा होने पर सविनय-भग वापस लिया जा सकता था और सरकार के साथ सहयोग किया जा सकता था।

इन वातचीतो का पिताजी के शरीर पर वुरा असर हुआ और १६ ता० को एकाएक उन्हे जोर का बुखार आ गया। इससे हमारा जाना रुक गया और हम १९ की रात को रवाना हो पाये—फिर उसी तरह स्पेशल ट्रेन से। वम्बई सरकार ने सफर मे हर तरह से पिताजी के आराम का ख़याल रक्खा और यरवडा

जेल मे भी उनके आराम का पूरा-पूरा प्रबन्ध किया गया था। कर्नल मार्टिन ने पिताजी से पूछा कि आप किस तरह का खाना पसन्द करेगे ? पिताजी ने कहा कि मै बहुत सादा और हल्का खाना खाता हू, और उन्होने सुबह की चाय से लेकर रात के खाने तक की सब जरूरी चीजे गिना दी। (नैनी मे रोज हम लोगो के घर से खाना आता था। पिताजी ने सरल भाव से जो-जो चीजे लिखाई, वे थी तो सब सादी और हल्की ही, मगर उन्हे देखकर कर्नल मार्टिन दग रह गये। बहुत मुमकिन था कि रिज और सेवाय होटल मे वे चीजे सादा और हल्की समझी जाती हो, जैसा कि खुद पिताजी भी समझते थे, लेकिन यरवडा जेल मे ये अजीव और बेतुकी दिखाई दी। महमूद और मै वडी रगत के साथ उस समय कर्नल मार्टिन के चेहरे के उतार-चढाव देखते रहे, जवकि पिताजी भोजन की उन कई तरह की और खर्चीली चीजो के नाम सुनाते जा रहे थे, क्योकि कई दिनो से उनके यहा भारत का सवसे वडा और वहुत नामी नेता रखा गया था और उसकी भोजन-सामग्री थी सिर्फ वकरी का दूध, खजूर और शायद कभी-कभी नारगिया। मगर जो यह नया नेता उनके सामने आया उसका ढग कुछ और ही था।

पूना से नैनी लौटते समय भी हम वड़े-वडे स्टेशन छलागते गये और ऐसी-वैसी मामूली जगह गाडी ठहरती रही। मगर भीड़ अव के और ज्यादा थी, प्लेटफार्म भरे हुए थे और कही-कही तो रेलवे लाइन पर भी भीड जमा हो गई थी—खासकर हरदा, इटारसी और सोहागपुर मे। यहा तक कि दुर्घटनाएँ होते-होते वची।

पिताजी की हालत तेजी से गिरने लगी। कितने ही डाक्टर उन्हे देखने गये—खुद उनके डाक्टर भी और प्रान्तीय सरकार की तरफ से भेजे हुए डाक्टर भी। जाहिर था कि जेल उनके लिए सबसे खराब जगह थी और वहां किसी तरह माकूल इलाज भी

नही हो सकता था। मगर फिर भी जब किसी मित्र ने अखबार मे लिखा कि बीमारी के सबब से उन्हे रिहा कर देना चाहिए तो पिताजी बहुत बिगड़े और उन्होने कहा कि लोग समझेंगे कि मेरी तरफ से यह इशारा कराया गया है। यहा तक कि उन्होने लार्ड अर्विन को तार दिया कि मै खास मेहरबानी कराके नही छूटना चाहता। लेकिन उनकी हालत दिन-ब-दिन खराब ही होती गई। वजन तेजी से गिरता जा रहा था और उनका शरीर एक छाया या ढाचा मात्र रह गया था। आखिर ८ सितम्बर को, ठीक १० सप्ताह बाद, वह रिहा कर दिये गये।

१ महीने बाद, ११ अक्तूबर को, मेरी छ महीने की सजा पूरी हो जाने पर, मै भी छोड दिया गया। मै जानता था कि मै थोड़े ही दिन आजाद रह सकूगा, क्योकि लडाई जमती और तेज होती जा रही थी। 'शान्ति-दूतो'—सप्रू-जयकर साहब—की कोशिशे बेकार हो चुकी थी। उसी दिन, जिस दिन मै छूटा, दो और आर्डिनेन्स जारी किये गए थे। ऐसे वक्त पर छूटने से मुझे खुशी हुई और मै इस बात के लिए उत्सुक था कि जितने दिन आजाद रहू कुछ अच्छा और जोरदार काम कर जाऊ।

उन दिनों कमला इलाहाबाद थी और वह कांग्रेस के काम मे जुट पडी थी। पिताजी मसूरी मे इलाज करा रहे थे और मां तथा बहने उनके साथ थी। कमला को साथ लेकर मसूरी जाने से पहले कोई डेढ दिन तक मै इलाहाबाद मे ही व्यस्त रहा। उन दिनो हमारे सामने जो बड़ा सवाल था वह यह कि देहात मे कर-बन्दी आन्दोलन शुरू किया जाय या नही ? लगान-वसूली का वक्त नजदीक आ रहा था और यों भी लगान वसूली होने मे दिक्कत आने वाली थी, क्योकि नाज के भाव बुरी तरह गिर गये थे। संसारव्यापी मन्दी का प्रभाव हिन्दुस्तान-भर मे दिखाई दे रहा था।

उस थोडे समय मे जब मै इलाहाबाद रहा, हमारे साथियों ने

और मैंने इन विषयो पर खूब गौर किया। जल्दी ही हमने प्रान्तीय कांग्रेस की कार्यकारिणी की मीटिग बुलाई और बहुत बहस-मुबाहसे के बाद करबन्दी-आन्दोलन की मजूरी दे दी और हर जिले को उसे शुरू करने का अधिकार दे दिया। हमने खुद सूबे के किसी हिस्से मे उसे शुरू नही किया और कार्यकारिणी ने उसे जमीदार और काश्तकार दोनो पर लागू किया, जिससे उसके वर्गवाद-सम्बन्धी प्रश्न बन जाने की सम्भावना न रह जाय। हां, यह तो हम जानते ही थे कि इसमे मुख्य सहयोग किसानो की ही तरफ से मिलेगा।

जब इस तरह आगे कदम बढाने की छुट्टी मिल गई तो हमारे इलाहाबाद जिले ने पहला कदम उठाना चाहा। हमारे एक सप्ताह बाद जिले के किसानो का एक सम्मेलन करके इस नए आन्दोलन को आगे ठेलने का निश्चय किया। मेरे मन को इस बात से तसल्ली हुई कि जेल से छूटते ही पहले दिन मैंने ठीक-ठीक काम कर लिया। सम्मेलन के साथ ही मैंने इलाहाबाद मे एक बडी आम सभा का भी आयोजन किया। इसमे मैंने एक लम्बा भाषण दिया। इसी भाषण पर बाद को मुझे फिर सजा दी गई थी।

इसके बाद १३ अक्तूबर को कमला और मैं तीन दिन के लिए पिताजी से मिलने मसूरी गए। वह कुछ-कुछ अच्छे हो रहे थे और मुझे यह देखकर तसल्ली हुई कि अब उन्होने करवट बदली है और चंगे हो रहे हैं। वे तीन दिन बडी शान्ति और बडे आनन्द मे बीते, जो मुझे अबतक याद आते हैं। फिर से अपने परिवार के साथ आकर रहना कितना अच्छा लगता था! मेरी लड़की इन्दिरा और मेरी तीन नन्ही-नन्ही भानजिया भी वही थी। मै इन बच्चो के साथ खेलता, कभी-कभी हम एक शाही जुलूस बनाकर घर के आस-पास बडी शान से घूमते। सबसे छोटी लडकी जो शायद ३-४ साल की थी, हाथ मे राष्ट्रीय झण्डा लिये, झण्डा-गीत 'झण्डा ऊंचा रहे हमारा' गाती हुई सबके आगे-आगे

चलती। पिताजी के साथ मेरे ये तीन दिन बस आखिरी दिन थे, क्योकि इसके बाद उनकी बीमारी असाध्य हो गई और उन्हे हमसे छीनकर ले ही गई।

पिताजी ने एकाएक इलाहाबाद आने का निश्चय कर लिया—शायद इस अन्देशे से कि शीघ्र ही मेरी गिरफ्तारी हो जायगी, तथा वह कुछ और समय मेरे साथ रह लेना चाहते थे। १९ को इलाहाबाद मे किसान-सम्मेलन होनेवाला था, इसलिए कमला और मै १७ को मसूरी से चलनेवाले थे। पिताजी ने हमारे जाने के दूसरे दिन, १८ को, और लोगो के साथ रवाना होने की तजवीज की।

१९ ता० को मै, पिताजी और घर के दूसरे लोगो को लिवाने के लिए स्टेशन गया। गाडी लेट थी और उनके उतरते ही मै उन्हें वही छोड़कर एक सभा के लिए रवाना हो गया। इसमे शहर और आसपास के देहात के लोग भी आनेवाले थे। ८ बजे के बाद रात को मै और कमला थके-मादे सभा से घर लौट रहे थे। मै पिताजी से बाते करने के लिए उत्सुक हो रहा था और मै जानता था कि वह भी मेरी राह देख रहे होगे, क्योकि उनके आने के बाद हमे बातचीत करने का मौका मिला ही नही था। पर रास्ते मे हमारी मोटर रोक ली गई—वहां से हमारा घर दिखाई दे रहा था और मै गिरफ़्तार करके फिर जमना-पार नैनी की अपनी पुरानी बैरक मे पहुचा दिया गया। कमला अकेली आनन्द-भवन गई और उसने पिताजी तथा घर के दूसरे लोगो को इस नई घटना की खबर सुनाई और उधर नौ का घण्टा बजते-बजते मैने फिर उसी नैनी-जेल के फाटक मे प्रवेश किया।

: २८ :

युक्तप्रान्त में कर-बन्दी

आठ दिन की गैरहाजरी के बाद मै फिर नैनी आ गया और सैयद महमूद, नर्मदाप्रसाद और रणजित पण्डित के साथ उसी पुरानी बैरक मे आ मिला। कुछ दिनो के बाद जेल मे ही मेरा मुकदमा चला। मुझपर कई दफाए लगाई गई थी, जिनका आधार था मेरा वह भाषण, जो मैने अपने छूटने के बाद इलाहाबाद मे दिया था। उसीके अलग-अलग हिस्सो को लेकर अलग-अलग इलजाम लगाये गए थे। अपनी परपरा के अनुसार मैने कोई सफाई पेश नही की, सिर्फ थोडे मे अपना एक लिखित बयान अदालत मे पेश किया। कुल मिलाकर मुझे दो साल की कैद हुई और जुरमाना न देने की हालत मे पाच महीने और। यह मेरी पाचवी बार जेल-यात्रा थी।

फिर से मेरी गिरफ्तारी और सजा का सविनयभग-आन्दोलन की गति पर कुछ समय के लिए अच्छा ही असर हुआ। उससे उसमे एक नया जीवन और अधिक बल आ गया। इसका अधिकाश श्रेय पिताजी को है। जब कमला से उनको मेरी गिरफ्तारी की खबर मिली तो उन्हे वेदना का एक धक्का लगा, मगर फौरन ही उन्होने अपनी शक्तियो को बटोरा और सामने पडी हुई मेज को ठोककर कहा—अब मैने निश्चय कर लिया है कि इस तरह बीमार बनकर पडा नही रहूगा। अब अच्छा होकर एक जवामर्द की तरह काम करूगा और बीमारी को व्यर्थ मे अपने पर हावी न होने दूगा। उनका यह निश्चय तो जवामर्दों का-सा ही था, मगर अफसोस है कि यह सारा सकल्प-बल भी उस गहरी बीमारी को, जो उनके शरीर को कुतर-कुतरकर खा रही थी, न दबा पाया। फिर भी कुछ दिनो तक तो उनके स्वास्थ्य मे साफ-साफ तबदीली

दिखाई देने लगी—इतनी कि देखकर लोगो को अचम्भा होता था। कुछ महीने पहले से, जबसे वह यरवडा गये, उनके बलगम मे खून आने लगा था। उनके इस निश्चय के बाद ही वह यकायक बन्द हो गया और कुछ दिन तक बिलकुल नही दिखाई दिया। इससे उन्हे खुशी हुई थी और जब वह मुझसे जेल मे मिलने आये तो उन्होने मुझसे इस बात का जिक्र कुछ फख्र के साथ किया। लेकिन बदकिस्मती से यह तसल्ली थोडे ही दिन रही और आगे चलकर बीमारी फिर बढ गई और खून अधिक परिमाण मे आने लगा। इस बीच मे उन्होंने अपने पुराने ही जोश-खरोश से काम किया और देशभर मे सविनयभग-आन्दोलन को एक जोर का वेग दिया। जगह-जगह के लोगो से वह बातचीत करते और उन्हे ब्यौरेवार आज्ञाए भेजते। उन्होने एक दिन मुकर्रर किया (यह नवम्बर मे मेरा जन्मदिन था) जो सारे हिदुस्तान मे उत्सव के रूप मे मनाया जाय और उस दिन मेरे भाषण के वे अश सभाओं मे पढे जायं,जिनपर मुझे सजा दी गई थी। उस दिन कई जगह लाठीचार्ज हुए, जुलूस और सभाएं बलपूर्वक तितर-बितर की गईं और यह अन्दाज किया गया था कि उस दिन देशभर में कोई पाच हजार गिरफ्तारिया हुई होगी। वह अपने ढग का एक अनोखा जन्मोत्सव था।

मेरी गिरफ्तारी इतनी जल्दी शायद इसलिए हुई कि मै करबन्दी-आन्दोलन के सिलसिले मे काम कर रहा था। मगर सच पूछिये तो मेरी गिरफ्तारी से बढ़कर उस आन्दोलन को बढानेवाली और कोई घटना नही हो सकती थी—खासकर उसी दिन जबकि किसान-सम्मेलन खतम हुआ था और उसके प्रतिनिधि इलाहाबाद मे मौजूद थे। इससे उनका उत्साह बहुत बढ गया और वे जिले के करीब-करीब हर गांव मे सम्मेलन का फैसला अपने साथ लेते गये। दो एक दिन मे ही जिले-भर मे खबर फैल गई कि कर-बन्दी-आन्दोलन शुरू हो गया है और हर जगह लोग खुशी-खुशी उसमे शरीक होने लगे।

करबन्दी करने की अपील हमने जमीदारों और किसानो दोनों से की थी। सिद्धान्त की दृष्टि से वह अपील किसी एक वर्ग के लिए नही थी। मगर अमली रूप मे कई जमीदारो ने अपना कर दे दिया और राष्ट्रीय सग्राम के प्रति जिनकी सहानुभूति थी ऐसे भी कई लोगो ने कर दे दिया। उनपर दबाव बहुत भारी था और उनके बहुत नुकसान उठाने की सम्भावना थी। जहा तक किसानो का सवाल है, वे तो मजबूत रहे। उन्होने लगान नही दिया और इस प्रकार हमारा आन्दोलन एक करबन्दी-आन्दोलन ही हो गया। इलाहाबाद जिले से वह सयुक्तप्रात के कुछ दूसरे जिलो मे भी फैल गया। कई जिलों मे उसका बाजाब्ता अख्तियार नही किया गया, न उसका एलान किया गया, परन्तु वास्तव मे किसानो ने कर देना रोक दिया और कई जगह तो भाव के गिर जाने के कारण वे दे ही नही सके।

जहां तक इस प्रान्त का सम्बन्ध है, करबन्दी-आन्दोलन का एक खास नतीजा दिखाई दिया। इससे हमारे सग्राम का आकर्षण केन्द्र शहरी प्रदेश से हटकर देहाती प्रदेशो मे चला गया। इससे आन्दोलन मे नवजीवन आ गया, जिसने उसकी बुनियाद को अधिक व्यापक और मजबूत बना दिया।

सरकारी दमन बढा। स्थानिक काग्रेस कमेटिया, यूथ-लीग आदि, जोकि अभी तक आश्चर्य के साथ चलती रही थी, गैर-कानूनी करार दी जाकर दबा दी गई। जेलो मे राजनैतिक कैदियो के साथ ज्यादा बुरा बर्ताव होने लगा। सरकार खास करके इससे चिढ़ गई कि लोग जेल से छूट जाने के बाद तुरन्त ही फिर जेल मे चले जाते थे। सजा के बावजूद भी सत्याग्रहियो को झुकाने मे असफल होने के कारण शासको का हौसला ढीला हो गया। जेल-शासन-सम्बन्धी अपराधो के कारण सयुक्तप्रान्त मे नवम्बर या दिसम्बर १९३० के शुरू में कुछ राजनैतिक कैदियो को बेत की सजा दी गई थी। इसकी खबर हमारे पास नैनी-जेल

मे पहुची। उससे हम क्षुब्ध हो उठे। हमने इस बेत लगाने के विरोध मे और इस बर्बरता के शिकार होनेवालो के प्रति हमदर्दी मे कोई निश्चित कार्रवाई करना तय किया। हमने तीन दिन—७२—घटे का पूरा उपवास किया।

हमे उपवास के दिनों मे कोई ज्यादा तकलीफ नही हुई और मुझे यह जानकर खुशी हुई कि उसमे वैसी सख्त तकलीफ जैसी कोई बात नही थी जिसका कि डर था। मगर एक बेवकूफी मैंने की। उपवास भर मैंने अपनी कडी कसरत जारी रक्खी थी जैसे दौड़ना और हाथ-पाव को झटके देने की कसरत वगैरा। मै नही समझता कि उससे मुझे कोई ज्यादा फायदा हुआ। खासकर उस हालत मे जबकि मेरी तबीयत पहले से ही कुछ खराब थी। इन तीन दिनों मे हम सबका वजन ७ से ८ पौण्ड तक घटा। इससे पहले महीने मे कोई १५ से २६ पौण्ड तक वजन हम हरेक का घट चुका था सो अलग!

बीच-बीच मे यदि ऐसी उत्तेजक घटनाओ से खलल न पड़ा होता तो हमारा जेल-जीवन शातिपूर्ण रहता। मौसम अच्छा था और जाड़ा तो इलाहाबाद मे बहुत ही मजेदार होता है। रणजित पडित क्या आये, हमारी बैरक को दुर्लभ लाभ मिल गया, क्योकि वह बागवानी बहुत कुछ जानते थे और शीघ्र ही वह हमारा वीरान अहाता फूलो और तरह-तरह के रगो से गुलजार हो गया। उन्होने तो उस तग और थोड़ी जगह में छोटे पैमाने पर गाल्फ खेलने की सुविधा भी कर दी थी।

नैनी-जेल मे हमारे सिर पर से हवाई जहाज उडकर जाया करते थे और यह हमारे लिए एक आनन्द और मनोरजन का विषय हो गया था। प्रातकाल के स्वच्छ नीले आसमान मे जब वह जहाज ऊपर उडता तो उसका दृश्य बड़ा ही सुन्दर मालूम होता था।

पण्डित मदनमोहन मालवीय भी, किसी दूसरी जेल से, नैनी

भेज दिये गए थे। वह हमसे अलग दूसरी बैरक मे रक्खे गये थे, लेकिन हम रोज उनसे मिलते थे और शायद बाहर की बनिस्बत वहा मै उनसे अधिक परिचय कर पाया। वह बडे खुश-मिजाज साथी थे। जीवनी-शक्ति से भरे पूरे और हर बात मे एक युवक की तरह दिलचस्पी लेनेवाले।

१ जनवरी १९३२ को अग्रेजी साल के नये दिन, कमला की गिरफ्तारी की खबर हमे मिली। मुझे इससे खुशी हुई, क्योकि वह बहुत दिनों से अपने दूसरे साथियो की तरह जेल जाने को बहुत उत्सुक थी। यो तो अगर वह मर्द होती तो वह और मेरी दोनो बहने तथा और भी दूसरी स्त्रिया बहुत पहले ही गिरफ्तार हो गई होती, मगर उस वक्त सरकार जहा तक हो सकता था स्त्रियो को गिरफ्तार करना टालती थी और इससे वह इतने अर्से तक बच रही और अब जाकर उसके मन की मुराद पूरी हुई। मैने सोचा, सचमुच उसे कितनी खुशी हुई होगी! मगर साथ ही मुझे कुछ डर भी लगा, क्योकि उसकी तन्दुरुस्ती हमेशा खराब रहती थी और मुझे अन्देशा था कि जेल मे कही उसे बहुत ज्यादा तकलीफ न हो।

गिरफ्तारी के वक्त एक पत्र-प्रतिनिधि वहां मौजूद था। उसने उससे एक सन्देश मागा। उसी क्षण झट से उसने एक छोटा-सा सन्देश दिया, जो उसके स्वभाव के अनुकूल ही था--"आज मुझे असीम प्रसन्नता है और इस बात का गर्व है कि मै अपने पति के पद-चिह्नो पर चल सकी हू। मुझे आशा है कि आप लोग इस ऊंचे झडे को नीचे न झुकने देंगे।" मुमकिन था कि अगर वह कुछ सोच पाती तो ऐसा सन्देश न देती, क्योकि वह अपने को पुरुषो के अत्याचारो से स्त्रियो के अधिकारो की रक्षा करने वाली योद्धा समझती थी। लेकिन उस समय हिन्दू-स्त्रीत्व के संस्कार उसमे प्रबल हो उठे और उनके प्रवाह मे पुरुषो के अत्याचार न जाने कहां बह गये?

: २९ :

पिताजी की बीमारी और उनका देहान्त

पिताजी कलकत्ता थे और उनकी हालत सन्तोषजनक नहीं थी। लेकिन कमला की गिरफ्तारी और सजा के समाचार सुनकर वह बहुत बेचैन हो गये और उन्होने इलाहाबाद लौटना तय किया। फौरन ही मेरी बहन कृष्णा को उन्होने इलाहाबाद रवाना किया और खुद घर के और लोगो के साथ कुछ दिन बाद चले। १२ जनवरी को वह मुझसे मिलने नैनी आये। मैंने उन्हे कोई दो मास बाद देखा था और उन्हे देखकर मेरे दिल को जो धक्का लगा उसे मै मुश्किल से छिपा सका। उनके चेहरे को देखकर मेरे दिल मे एक तरह की दहशत बैठ गई। क्योकि उन्होने मुझसे कहा कि कलकत्ते की बनिस्बत अब तो मै बहुत अच्छा हूं। उनके चेहरे पर वरम आ गया था और वह शायद यह समझते थे कि यह तो यों ही आ गया है।

उनके उस चेहरे का मुझे रह-रहकर खयाल हो आता था। वह किसी तरह उनके चेहरे जैसा न रहा था। अब पहली मर्तबा मेरे दिल मे यह डर पैदा हुआ कि उनके लिए खतरा सामने खडा है। मैंने हमेशा उनकी कल्पना बल और स्वास्थ्य के साथ-साथ ही की थी और उनके सम्बन्ध मे मौत का खयाल कभी मन मे नही आता था। मौत के खयाल पर वह हमेशा हंस दिया करते थे—उसे हंसी मे उड़ा दिया करते थे और हमसे कहा करते थे कि मै तो अभी बहुत दिन जीऊगा।

पहली गोलमेज-कान्फ्रेस के वे आखिरी दिन थे और उसमें जो अलकारिक भाषण हुए और आडम्बरयुक्त भाव प्रदर्शित किये गये वे हमारे मनोरजन का विषय बन गये थे।

हमे सचमुच इसका कुछ खयाल या परवा नही थी कि

गोलमेज-काफ्रेस ने क्या किया। वह हमसे बहुत दूर, अवास्तविक और खोखली थी और लडाई यहाँ हमारे कस्बो और गाँवो मे हो रही थी। हमें इस बात मे कोई भ्रम नही था कि हमारी लड़ाई जल्द ही खत्म हो जायगी, या खतरा सामने खड़ा है, मगर फिर भी १९३० की घटनाओ ने हमे अपने राष्ट्रीय बल और दमखम का इत्मीनान करा दिया और उस इत्मीनान के भरोसे हमने भावी का मुकाबला किया।

रैम्जे मैकडानल्ड साहब ने, सदा की तरह, एक सद्भावपूर्ण भाषण के द्वारा गोलमेज-काफ्रेस का उपसहार किया। उसमे कांग्रेसियो से ऐसी अपरोक्ष रीति से अपील की गई थी कि वे बुरा मार्ग छोड दे और भले आदमियो की टोली मे मिल जाय। ठीक इसी समय—१९३१ की जनवरी के बीच मे इलाहाबाद मे कांग्रेस की कार्य-समिति की एक बैठक हुई और दूसरी वातों के साथ-साथ इस भाषण और उसमे की गई अपील पर भी विचार किया।

बहुत कुछ पिताजी के आग्रह से कार्य-समिति ने बिलकुल न झुकने का प्रस्ताव पास किया था। उसके अखबारों मे छपने से पहले ही सर तेजबहादुर सप्रू और श्रीनिवास शास्त्री का एक तार पिताजी को मिला, जिसमे उनकी मार्फत काग्रेस से यह दरख्वास्त की गई थी कि वह इस विषय पर तबतक कोई फैसला न करे, जबतक कि उन्हे बातचीत करने का एक मौका न दिया जाय। वे लन्दन से विदा हो चुके थे। उन्हे इस आशय का जवाब दिया गया कि कार्य-समिति ने एक प्रस्ताव तो पास कर दिया है; लेकिन जबतक आप दोनो यहाँ न आ जायगे और आपसे बातचीत न हो जायगी, तबतक वह प्रकाशित नही किया जायगा।

बाहर यह जो कुछ हो रहा था उसका हमे जेल मे कुछ पता न था। हम इतना ही जानते थे कि कुछ होनेवाला है और इससे हम कुछ चिन्तित हो गये थे। हमे जिस बात का सबसे अधिक

ख़याल था, वह तो था २६ जनवरी के स्वतन्त्रता-दिवस का प्रथम वार्षिकोत्सव, और हम सोचते थे कि देखे यह किस तरह मनाया जाता है। बाद को हमने सुना कि वह सारे देश मे मनाया गया। सभाएँ की गईं और उनमे स्वाधीनता के प्रस्ताव का समर्थन किया गया और सब जगह वह प्रस्ताव पास किया गया।

२६ जनवरी को हम नैनी-जेल मे बीते हुए साल के कामो पर सिहावलोकन कर रहे थे और आगामी वर्ष को आशा की दृष्टि से देख रहे थे। इतने ही मे दोपहर को एकाएक मुझे कहा गया कि पिताजी की हालत बहुत नाजुक हो गई है और मुझे फौरन घर जाना होगा। पूछने पर पता चला कि मै रिहा किया जा रहा हूँ। रणजित भी मेरे साथ थे।

उसी शाम को हिन्दुस्तान की कितनी ही जेलो से वहुत-से दूसरे लोग भी छोडे गये। ये लोग थे कार्य-समिति के मूल और स्थानापन्न सदस्य। सरकार हमे आपस मे मिलकर हालात पर गौर करने का मौक़ा देना चाहती थी। इसलिए मै उसी शाम को हर हालत मे छूट ही जाता। पिताजी की तवीयत की वजह से कुछ घटे पहले रिहाई हो गई। २६ दिन का जेल-जीवन विताकर कमला भी उसी दिन लखनऊ-जेल से छोड दी गई। वह भी कार्य-समिति की एक स्थानापन्न मेम्वर थी।

पिताजी को मैने दो हफ्ते वाद देखा। १२ जनवरी को नैनी मे जव वह मिलने आये थे तव उनका चेहरा देखकर मेरे दिल को एक धक्का लगा था। तवसे अव उनकी तवीयत और ज्यादा खराव हो गई थी और उनके चेहरे पर ज्यादा वरम आ गया था। वोलने मे कुछ तकलीफ होती थी और दिमाग पर पूरा-पूरा काबू नही रहा था; लेकिन फिर भी उनकी सकल्प-शक्ति वैसी ही कायम रही थी और वह उनके शरीर और दिमाग को काम करने मे ताकत देती रही।

२६ जनवरी को, उसी दिन जिस दिन मै छोड़ा गया, गांधी-

जो दूसरे शहरों और सूबों से लोग आये थे उनमे से बहुतेरे चले गये। गाधीजी रह गये, कुछ और घनिष्ट मित्र, निकट सम्बन्धी और तीन नामी डाक्टर भी, जो उनके पुराने मित्र थे और जिनके लिए वह कहा करते थे कि मैने अपना शरीर उनके हाथो मे सौप दिया है। वे थे डाक्टर असारी, विधानचन्द्र राय और जीवराज मेहता। ४ फरवरी को उनकी हालत कुछ अच्छी दिखाई पडी और इसलिए यह तय किया गया कि उससे फायदा उठाकर उन्हे लखनऊ ले जाया जाय, जहा कि एक्स-रे द्वारा इलाज की सुविधाए है। उसी दिन उन्हे हम मोटर से ले गये। गाधीजी और कुछ लोग भी साथ गये। हम गये तो धीरे-धीरे, लेकिन फिर भी वह बहुत थक गये। दूसरे दिन थकावट दूर होती हुई मालूम हुई, लेकिन फिर भी कुछ चिन्ताजनक लक्षण दिखाई पडते थे। दूसरे दिन सुवह यानी ६ फरवरी को मै उनके बिछौने के पास बैठा हुआ उन्हे देख रहा था। रात उनकी तकलीफ और बेचैनी मे बीती थी। एकाएक मैने देखा कि उनका चेहरा शान्त हो गया और लड़ने की शक्ति खत्म हो गई। मैने समझा कि उन्हे नीद लग गई है और इससे मुझे खुशी भी हुई। मगर मा की निगाह तेज थी। वह रो पडी। मैने उसकी तरफ देखा और कहा कि उन्हे नीद लग गई है, वह जाग जायगे। मगर वह नीद तो उनकी आखिरी नीद थी और उसके बाद फिर जागना नही हो सकता था।

उसी दिन हम उनके शव को मोटर से इलाहाबाद लाये। मै उसके साथ बैठा। रणजित गाडी चला रहे थे और पिताजी का पुराना नौकर हरि भी साथ था। उसके पीछे दूसरी मोटर थी, जिसमे माँ और गांधीजी थे और उसके बाद दूसरी मोटरे थी। मै दिनभर भौचक्का-सा रहा। यह अनुभव करना मुश्किल था कि क्या घटना हुई है और एक के बाद एक हुई घटनाओ और बड़ी-बडी भीड़ो के कारण मै कुछ सोच भी न सका। सूचना मिलते ही लखनऊ मे बडी भीड़ जमा हो गई। वहा से शव को

लेकर इलाहाबाद आये। शव राष्ट्रीय झडे मे लपेटा हुआ था और ऊपर एक बड़ा झडा फहरा रहा था। मीलो तक जबरदस्त भीड़ उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करने को जमा हुई थी। घर पर कुछ अन्तिम विधियाँ की गई और फिर गंगा-यात्रा को चले। जबरदस्त भीड साथ थी। जाड़े के दिन थे। सन्ध्या का अधकार गगा-तट पर धीरे-धीरे फैल रहा था और चिता की ऊची-ऊची लपटो ने उस शरीर को भस्म कर दिया जिसका हमारे लिए और उनके इष्ट-मित्रों के लिए और हिन्दुस्तान के लाखों लोगों के लिए इतना मूल्य और महत्त्व था। गाधीजी ने छोटा-सा हृदयस्पर्शी भाषण दिया और फिर हम सब लोग चुपचाप घर चले आये। जब हम उदास और सुनसान लौट रहे थे, तब आकाश मे तारे तेजी से चमक रहे थे।

माँ को और मुझे हजारों सहानुभूति के सन्देश मिले। लार्ड और लेडी अर्विन ने माँ को एक सौजन्यपूर्ण सन्देश भेजा। इस बहुत भारी सद्भावना और सहानुभूति ने हमारे दुख और शोक की तीव्रता को कम कर दिया था। लेकिन सबसे ज्यादा और आश्चर्यजनक शान्ति और सान्त्वना तो मिली गाधीजी के वहाँ मौजूद रहने से, जिससे माँ को और हम सब लोगों को जीवन के उस सकटकाल का सामना करने का बल मिला।

: ३० :

दिल्ली का समझौता

जिस दिन और जिस वक्त पिताजी की मृत्यु हुई, उसी दिन और प्राय उसी समय बम्बई मे गोलमेज-कान्फ्रेंस के कुछ हिन्दुस्तानी मेम्बर जहाज से उतरे। श्री श्रीनिवास शास्त्री और सर तेजबहादुर सप्रू और शायद दूसरे कुछ लोग, जिनका ख़याल

अब मुझे नही है, सीधे इलाहाबाद आये। गाधीजी तथा कार्य-समिति के कुछ और सदस्य वहाँ पहले ही मौजूद थे। हमारे मकान पर खानगी बैठके हुई, जिसमे यह बताया गया कि गोलमेज-कांफ्रेस मे क्या-क्या हुआ ?

इन प्रतिनिधियो ने हमे गोलमेज-कांफ्रेस के सबध मे ऐसी मार्के की कोई बात नही कही, जिसे हम पहले से न जानते हो। हाँ, उन्होने यह अलबत्ता बताया कि वहाँ परदे के पीछे कैसी-कैसी साजिशे हुई और फलाँ 'लार्ड' या फलाँ 'सर' ने खानगी मे क्या-क्या किया ? लिबरल नेताओ के साथ हमारी जो कुछ बातचीत हुई, उसका कोई नतीजा न निकला। हमारी पिछली राय ही और मजबूत हो गई कि गोलमेज-कांफ्रेस के निर्णयों की कुछ भी वकत नही है। किसी ने—मै उनका नाम भूल गया हूँ—सुझाया कि गांधीजी वाइसराय को मुलाकात के लिए लिखे और उनके साथ खुलकर बातचीत कर ले। इसपर गाधीजी राजी हो गये, हालाँकि मै नही समझता कि उन्होने परिणाम की कोई आशा की हो। मगर अपने सिद्धान्त को सामने रखते हुए वह सदा विरोधियो के साथ, कुछ कदम आगे जाकर भी, मिलने और बातचीत करने को तैयार रहते है। चूँकि उन्हे अपने पक्ष की सच्चाई का पूरा विश्वास रहता है, इसलिए वह दूसरे पक्ष के लोगो को भी कायल करने की आशा रखते थे।

बातचीत का इन्तजाम फौरन हो गया और गाधीजी दिल्ली रवाना हुए। हमसे कहते गये कि अगर वाइसराय से काम-चलाऊ समझौते के बारे मे कोई बातचीत गम्भीर रूप से हुई तो मै कार्य-समिति के मेम्बरो को बुला लूंगा। कुछ ही दिनो बाद हमे दिल्ली का बुलावा आया। हम तीन हफ्ते तक वहाँ रहे। रोज मिलते और लम्बी-लम्बी बहस करके थक जाते। गाधीजी कई बार लार्ड अर्विन से मिले। मगर कभी-कभी बीच मे तीन-चार रोज खाली भी जाते। कभी-कभी देखने मे जरा-सी बात या कुछ शब्दो के

कारण ही गाडी रुक जाती। एक ऐसा शब्द था सविनय-भग को स्थगित कर देना। गाधीजी बराबर इस बात को स्पष्ट करते रहे कि सविनय-भंग आखिरी तौर पर न तो बन्द ही किया जा सकता है न छोड़ा ही जा सकता है, क्योकि यही एक-मात्र हथियार हिन्दुस्तान के लोगो के हाथ मे है। हॉ, वह स्थगित किया जा सकता है। लार्ड अर्विन को इस बात पर आपत्ति थी। वह ऐसा शब्द चाहते थे जिसका अर्थ निकलता हो सविनय-भंग छोड दिया गया। लेकिन यह गाधीजी को मजूर नही होता था। आखिर 'डिस्कन्टिन्यू' (रोक देना) शब्द इस्तेमाल किया गया। विदेशी कपड़े और शराब की दूकानो पर धरना देने की बावत भी लम्बी-चौड़ी बहस हुई। हमारा बहुतेरा समय समझौते की अस्थायी तजवीजो पर गौर करने मे लगा और मूलभूत वातो पर कम ध्यान दिया गया। शायद यह सोचा गया कि जब यह कामचलाऊ समझौता हो जायगा और रोज-रोज की लड़ाई रोक दी जायगी, तब अधिक अनुकूल वातावरण मे बुनियादी वातो पर गौर किया जा सकेगा। हम उस बातचीत को विराम-सन्धि की वार्ता मान रहे थे, जिसके बाद असली प्रश्नो पर आगे और बातचीत की जायगी।

गाधी-अर्विन बातचीत एकाएक रुक गई। कई दिनों तक वाइसराय ने गाधीजी को नही बुलाया और हमे ऐसा लगा कि बातचीत टूट गई। कार्य-समिति के सदस्य दिल्ली से अपने-अपने सूबो मे जाने की तैयारी कर रहे थे। जाने से पहले हम लोगो ने आपस मे भावी कार्य की रूप-रेखाओं और सविनय-भग पर (जो कि अभी उसूलन जारी था) विचार-विनिमय किया। हमे यकीन था कि ज्योही बातचीत के टूटने की बात पक्के तौर पर जाहिर हो जायगी, त्योंही हम सबके लिए फिर मिलकर बातचीत करने का मौका नही रह जायगा।

हम गिरफ्तारियों की उम्मीद ही रखते थे। हमने कहा गया

गाधीजी ने किसी से मेरी मानसिक व्यथा का हाल सुना और दूसरे दिन सुबह घूमने के वक्त अपने साथ चलने के लिए मुझे कहा। वडी देर तक हमने वातचीत की, जिसमे उन्होने मुझे यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि न तो कोई अत्यत महत्त्व की बात छोड दी गई है और न कोई सिद्धान्त ही त्यागा गया है। उन्होने धारा नम्बर २ का एक विशेष अर्थ लगाया, जिससे वह हमारी स्वतन्त्रता की माग से मेल खा सके। इसमे उनका आधार खासकर 'भारत के हित मे' शब्द थे। यह अर्थ मुझे खीचातानी का मालूम हुआ। मै उसका कायल तो नही हुआ, लेकिन उनकी बातचीत से मुझे कुछ सान्त्वना जरूर हुई।

एक-दो दिन तक मै वडी दुविधा मे पडा रहा। समझ न सका कि क्या करू? अब समझौते के विरोध का या उसे रोकने का तो कोई सवाल ही नही था। वह वक्त गुजर चुका था और मै जो-कुछ कर सकता था वह यह कि व्यवहार मे उसे स्वीकार करते हुए सिद्धान्तत अपने को उससे अलग रखू। उससे मेरे अभिमान को कुछ सान्त्वना मिल जाती, लेकिन हमारे पूर्ण स्वराज्य के वडे प्रश्न पर इसका क्या असर पड सकता था? तव क्या यह अच्छा न होगा कि मै उसे खूबसूरती के साथ मजूर कर लू और उसका अधिक-से-अधिक अनुकूल अर्थ लगाऊ, जैसाकि गाधीजी ने किया? समझौते के वाद ही फौरन अखवारवालो से वातचीत करते हुए गाधीजी ने उसी अर्थ पर जोर दिया और कहा कि हम स्वतन्त्रता के प्रश्न पर पूरे-पूरे अटल है। वह लार्ड अर्विन के पास गये और इस वात को विलकुल स्पष्ट कर दिया, जिससे कि उस समय या आगे कोई गलतफहमी न होने पावे। उन्होने उनसे कहा कि यदि काग्रेस गोलमेज-कान्फ्रेस मे अपना प्रतिनिधि भेजे तो उसका आधार एकमात्र स्वतन्त्रता ही हो सकता है और उसे पेश करने के लिए ही वहा जाया जा सकता है। अवश्य ही लार्ड अर्विन इस दावे को मान तो नही सकते थे, लेकिन उन्होने यह मंजूर किया कि हा, काग्रेस को इसे पेश करने का हक है।

इसलिए मैंने समझौते को मान लेना और दिल से उसके लिए काम करना तय किया। यह बात नही कि ऐसा करते हुए मुझे बहुत मानसिक और शारीरिक क्लेश न हुआ हो। मगर मुझे बीच का कोई रास्ता दिखाई नही देता था।

दिल्ली समझौते के बाद कराची मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। पिछली किसी भी काग्रेस की अपेक्षा कराची-काग्रेस मे तो गाधीजी की और भी वडी निजी विजय हुई। उसके सभापति सरदार पटेल थे, जो देश के सबसे लोकप्रिय और समर्थ व्यक्तियो मे से एक थे। गुजरात की अनेक लडाइयो मे विजय प्राप्त करके यश प्राप्त किया था। फिर भी उसमे प्रधानता तो गाधीजी की ही थी।

कराची-कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव दिल्ली-समझौते और गोलमेज काफ्रेंस के सबध मे था। कार्यसमिति का प्रस्ताव होने के कारण उसे मैंने स्वीकार किया था, किन्तु जब गाधीजी ने मुझे खुले अधिवेशन मे उसे पेश करने के लिए कहा तो मैं जरा हिचकिचाया। वह मेरी तबीयत के खिलाफ था। फिर भी विल्कुल आखरी घड़ी मे मैंने उस प्रस्ताव को पेश करने का निश्चय किया। अपने भाषण मे मैंने अपने हृदय के भाव ज्यो-के-त्यो रख दिये। मेरा वह भाषण जो ऐन मौके पर अन्त स्फूर्ति से दिया गया और हृदय की गहराई से निकला था, जिसमे न कोई अलकार था न सुन्दर शब्दावली—शायद मेरे उन कई भाषणो से ज्यादा सफल रहा, जिनके लिए पहले से ध्यान देकर तैयारी करने की जरूरत हुई थी।

मैं और प्रस्तावों पर भी वोला था। इनमे भगतसिह, मौलिक अधिकार और आर्थिक नीति के प्रस्ताव उल्लेखनीय है। आखिरी प्रस्ताव मे मेरी खास दिलचस्पी थी, क्योकि एक तो उसका विषय ही ऐसा था और दूसरे उसके द्वारा काग्रेस मे एक नए दृष्टिकोण का प्रवेश होता था। अवतक काग्रेस सिर्फ राष्ट्रीयता की ही दिशा में सोचती थी और आर्थिक प्रश्नो से बचती रहती थी। जहां तक

ग्राम-उद्योगों से और आम तौर पर स्वदेशी को वढावा देने से ताल्लुक था, उसको छोड़कर कराची वाले इस प्रस्ताव के द्वारा मूल उद्योगो और नौकरियों के राष्ट्रीयकरण और ऐसे ही दूसरे उपायो के प्रचार के द्वारा गरीबो का बोझा कम करके अमीरो पर कर वढाने के लिए एक वहुत छोटा कदम, समाजवाद की दिशा मे उठाया गया, लेकिन वह समाजवाद कतई न था। पूजीवादी राज़्य भी उसकी प्राय हर बात को आसानी से मजूर कर सकता है।

हम सव कराची मे ही थे कि कानपुर के हिन्दू-मुस्लिम दगे की खवर हमे मिली। इसके वाद ही दूसरा समाचार यह मिला कि गणेशशकर विद्यार्थी को कुछ मजहवी दीवाने लोगो ने, जिनकी मदद के लिए वह वहा गये थे, कत्ल कर डाला। वे भयकर और पाशविक दगे ही क्या कम बुरे थे? लेकिन गणेशजी की मृत्यु ने हमे उनकी वीभत्सता जिस तरह हमारे हृदय पर अकित कर दी वैसी और कोई चीज नही कर सकती थी। उस काग्रेस-कैम्प मे हजारो आदमी उन्हे जानते थे और युक्तप्रांत के हम सव लोगो के वह अत्यन्त प्यारे साथी और दोस्त थे। जवामर्द और निडर, दूरदर्शी और निहायत अक्लमन्द सलाहकार, कभी हिम्मत न हारनेवाले, चुपचाप काम करने वाले, नाम, पद और प्रसिद्धि से दूर भागनेवाले। अपनी जवानी के उत्साह मे झूमते हुए वह हिन्दू-मुस्लिम-एकता के लिए, जो उन्हे इतनी प्यारी थी और जिसके लिए उन्होने अवतक कार्य किया था, अपना सिर हथेली पर लेकर खुशी-खुशी आगे वढे थे कि वेवकूफ हाथो ने उन्हे जमीन पर मार गिराया और कानपुर को और सूवे को एक अत्यन्त उज्ज्वल रत्न से वंचित कर दिया। जव यह खवर पहुची तो कराची के यू० पी० कैम्प मे शोक की घटा छा गई और ऐसा मालूम हुआ कि उसकी शान चली गई। लेकिन फिर भी उसके दिल मे यह अभिमान था कि गणेशजी ने विना पीछे कदम उठाये मौत का मुकावला किया और उन्हे ऐसी गौरवपूर्ण मौत नसीव हुई।

: ३१ :

लंका में विश्राम

दिल्ली समझौते के बाद ही मेरी सेहत कुछ खराब हो गई। जेल मे भी मेरी तबीयत कुछ खराब रही थी। उसके बाद पिताजी की मृत्यु से गहरा धक्का लगा और फिर फ़ौरन ही दिल्ली मे सुलह की चर्चा का जोर पड़ा। यह सब मेरे स्वास्थ्य के लिए हानिकर सावित हुआ।

मेरे डाक्टरो ने मुझपर जोर दिया कि मुझे कुछ आराम करना चाहिए और आव-हवा वदलनी चाहिए। मैने लंका द्वीप मे एक महीना गुजारना तय किया। हिन्दुस्तान वडा भारी देश होने पर भी, इसमे स्थान-परिवर्तन या मानसिक विश्राम की असली सम्भावना दिखाई न दी, क्योकि मै जहा भी जाता वहां राजनैतिक साथी मिलते ही, और वही समस्याए भी मेरे पीछे-पीछे पहुच जाती। लका ही हिन्दुस्तान से सवसे नजदीक की जगह थी, इसलिए हम लका ही गये—कमला, इन्दिरा और मै। १९२७ मे यूरोप से लौटने के वाद यही मेरी पहली तातील थी, यही पहला मौका था जव मेरी पत्नी, कन्या और मैने एक-साथ शान्ति से कही विश्राम किया हो और हमे कोई चिन्ताएं न रही हो। ऐसा विश्राम फिर नही मिला और मै सोचता हू कि शायद मिलेगा भी या नही।

फिर भी, दरअसल, हमे लका मे नुवारा एलीया में दो हफ्तों के सिवा ज्यादा विश्राम नही मिला। वहा के सभी वर्गो के लोगों ने हमारे प्रति वहुत ही आतिथ्य और मित्र-भाव प्रदर्शित किया। यह इतनी सद्भावना लगती तो वहुत अच्छी थी, मगर परेशानी मे भी डाल देती थी। नुवारा एलीया मे वहुत से श्रमिक, चाय-वागो के मजदूर और दूसरे लोग रोज़ कई मील चलकर आया करते थे और अपने साथ अपनी प्रेम-पूर्ण भेंट की चीजें—जंगल के

फूल, सब्जियां, घर का मक्खन—भी लाया करते थे। हम तो उनसे प्राय बात भी नही कर सकते थे, एक-दूसरे की तरफ देख भर लेते थे और मुस्करा देते थे। हमारा छोटा-सा घर उनकी भेट की इन कीमती चीजो से, जो वे अपनी दरिद्रावस्था मे भी हमे दे जाते थे, भर गया था। ये चीजे हम वहा के अस्पतालो और अनाथालयो को भेज दिया करते थे।

हमने उस द्वीप की मशहूर चीजो और ऐतिहासिक खडहरो, बौद्ध मठो और घने जगलो को देखा। अनुराधापुर मे मुझे बुद्ध की एक पुरानी बैठी हुई मूर्त्ति बहुत पसन्द आई। एक साल बाद जब मै देहरादून जेल मे था, तब लका के एक मित्र ने इस मूर्त्ति का चित्र मेरे पास भेजा दिया था, 'जिसे मै अपनी कोठरी मे अपने छोटे-से टेबल पर रक्खे रहता था। यह चित्र मेरा बडा मूल्यवान साथी बन गया था और बुद्ध की मूर्त्ति के गभीर शान्त भावो से मुझे बड़ी शान्ति और शक्ति मिलती थी, जिससे मुझे कई बार उदासी के मौको पर बडी मदद मिली।

बुद्ध हमेशा मुझे बहुत आकर्षक प्रतीत हुए है। इसका कारण बताना तो मुश्किल है, मगर वह धार्मिक नही है, क्योंकि बौद्ध धर्म के आसपास जो मताग्रह जम गये है उनमे मुझे कोई दिलचस्पी नही है। उनके व्यक्तित्व ने ही मुझे आकर्षित किया है। इसी तरह ईसा के व्यक्तित्व के प्रति भी मुझे बड़ा आकर्षण है।

मैंने मठों मे और सड़कों पर बहुत-से बौद्ध-भिक्षुओं को देखा, जिन्हे हर जगह, जहां कही वे जाते थे, सम्मान मिलता था। करीब-करीब सभी के चेहरो पर शान्ति और निश्चलता का तथा दुनिया की फिक्रो से एक विचित्र वैराग्य का, मुख्य भाव था। आमतौर पर उनके चेहरे से बुद्धिमत्ता नही झलकती थी, उनकी सूरत से दिमाग के अन्दर होने वाला भयकर सघर्ष नही मालूम पडता था। जीवन उन्हे महासागर की ओर शान्ति से बहती हुई नदी के समान दिखाई देता था। मै उनकी तरफ कुछ रश्क के

साथ, आधी और तूफान से बचाने वाला शान्त बन्दरगाह पाने की एक हल्की उत्कण्ठा के साथ, देखता था। मगर मै तो जानता था कि मेरी किस्मत मे और ही कुछ है, उसमे तो आधी और तूफान ही हैं। मुझे कोई शान्त बदरगाह मिलने वाला नही है, क्योकि मेरे भीतर का तूफान भी उतना ही तेज है जितना वाहर का। और अगर मुझे कोई ऐसा बन्दरगाह मिल भी जाय, जहां इत्तिफाक से आधी की प्रचण्डता न हो तो भी क्या वहा मै सतोष और सुख से रह सकूगा ?

कुछ समय के लिए तो वह द्वीप खुशनुमा ही था। वहा आदमी पडा रह सकता था, स्वप्न देख सकता था और उष्ण-कटि-बन्ध का शान्तिप्रद और जीवनदायी आनन्द अपने अन्दर भर सकता था। लका द्वीप उस समय मेरी भी वृत्ति के अनुकूल था और उसकी शोभा देखकर मेरा हृदय हर्ष से भर गया। विश्राम का हमारा महीना जल्दी ही खतम हो गया और हार्दिक दु ख के साथ हम वहा से विदा हुए। उस भूमि की और वहा के लोगों की कई बाते अब भी मुझे याद आया करती है , जेल मे मेरे लम्बे और सूने दिनो मे भी यह मीठी याद मेरे साथ रही। एक छोटी-सी घटना मुझे याद है। वह शायद जाफना के पास हुई थी। एक स्कूल के शिक्षको और लडको ने हमारी मोटर रोक ली और अभि-वादन के कुछ शब्द कहे। दृढ और उत्सुक चेहरे लिये लडके खड़े रहे और उनमे से एक मेरे पास आया। उसने मुझसे हाथ मिलाया। बिना कुछ पूछे या दलील किये उसने कहा—"मै कभी लडखडाऊगा नही।" उस लडके की उन चमकती हुई आंखों की, उस आनन्दपूर्ण चहरे की, जिसमे निश्चय की दृढता भरी हुई थी, छाप मेरे मन पर अब भी पडी हुई है। मुझे पता नही कि वह कौन था, उसका कोई पता-ठिकाना मेरे पास नही है, मगर किसी-न-किसी प्रकार मुझे यह विश्वास होता है कि वह अपने शब्दो का पक्का रहेगा और जब जीवन की विषम समस्याओं का मुकाबला उसे करना होगा तब वह लड़खडायेगा नही, पीछे नही

रहेगा।

बम्बई से लंका को रवाना होने के सात हफ्ते बाद हम फिर बम्बई आ गये और मै फौरन ही कांग्रेस की राजनीति के भवर मे कूद पडा। कार्य-समिति की बैठके कई जरूरी मामलो पर विचार करने के लिए होनेवाली थी—हिन्दुस्तान की स्थिति तेजी से बदलती और गम्भीर होती जाती थी, यू० पी के किसानो का प्रश्न जटिल हो गया था, खान अब्दुलगफ्फार खा के नेतृत्व मे सीमा-प्रान्त मे लाल-कुर्ती दल की आश्चर्यजनक प्रगति हुई थी, बगाल मे अत्यन्त विक्षोभ की दशा हो गई थी और उसमे क्रोध और असन्तोष अन्दर-ही-अन्दर बढ गया था, हमेशा की साम्प्रदायिक समस्या तो थी ही और काग्रेस के लोगो और सरकारी अफसरों के बीच कई तरह के मामलो मे छोटे-छोटे कई स्थानीय झगडे खडे हो गए थे, जिनमे दोनों पक्ष एक-दूसरे पर दिल्ली-समझौते को तोड़ने का इलजाम लगाते थे। इसके अलावा यह सवाल भी बार-बार उठता था कि क्या काग्रेस गोलमेज-कान्फ्रेस मे शामिल होगी ? क्या गाधीजी को वहा जाना चाहिए ?

: ३२ :

समझौता-काल में दिक्कतें

गाधीजी को गोलमेज-कान्फ्रेस के लिए लन्दन जाना चाहिए या नही ? यह सवाल बराबर उठता रहता था और इसका कोई निश्चित जवाव नही मिलता था। आखिरी मिनट तक कोई भी नही जानता था, काग्रेस-कार्य-समिति और खुद गाधीजी भी नही जानते थे। क्योकि जवाव का आधार तो कई वातो पर था और नई-नई घटनाए परिस्थिति को वदल रही थी। इस सवाल और जवाव की तह मे असली मुश्किल समस्याए खडी थी।

हिन्दुस्तान मे परिस्थिति तेजी से वदल रही थी। सारे देश

मे ऐसा हो रहा था,—खासकर बगाल, युक्तप्रान्त और सीमा-प्रात मे। बगाल मे तो दिल्ली के समझौते से कोई खास फर्क नही पडा और तनाव जारी रहा, बल्कि और भी ज्यादा हो गया। सविनय-भग के कुछ कदी छोड दिये गये। लेकिन हजारों राजनैतिक कैदी, जो नाम के लिए सविनय-भंग के कैदी नही समझे जा सकते थे, जल म ही रहे। नजरवन्द भी जेलो या नजरवन्द-कैम्पों मे ही सडते रहे। राजद्रोहात्मक भाषणो या दूसरी राजनैतिक प्रवृत्तियों के कारण नई गिरफ्तारिया अक्सर हो जाती थी और आमतौर पर यही महसूस हो रहा था कि सरकार की तरफ से हमला अव भी बन्द नही हुआ है, वह जारी है। काग्रेस के लिए आतकवाद के कारण बगाल की समस्या हमेशा वहुत ही कठिन रही है। काग्रेस की सामान्य प्रवृत्तियो और सविनय-भग के मुकाबले आतकवादी हलचले तो वहुत थोडी और वहुत छोटी-सी रही है। मगर उनसे शोर ज्यादा मचता था और उनकी तरफ ध्यान वहुत खिच जाता था। इन हलचलो से दूसरे प्रातों की तरह काग्रेस का काम होना मुश्किल हो गया था। क्योंकि आतकवाद से ऐसा वातावरण पैदा हो जाता था, जो शातिपूर्ण लडाई के लिए अनुकूल न था। लाजिमी तौर पर इसके कारण सरकार ने सख्त-से-सख्त दमन किया, जोकि आतकवादी और गैर-आतकवादी वहुत-कुछ दोनो पर निष्पक्ष समानता से पडा।

युक्तप्रान्त में किसानो की स्थिति खराव होती जा रही थी। प्रातीय सरकार इस सवाल पर टालमटोल करने की कोशिश कर रही थी। उसने लगान और मालगुजारी के छूट के फैसले को आगे धकेल दिया और जवरदस्ती लगान-वसूली शुरू कर दी। सामूहिक वेदखलिया और कुर्कियां होने लगी। जव हम लंका मे थे तभी जवरदस्ती लगान-वसूली की कोशिश के कारण, दो या तीन जगहो पर किसानो के दगे हो गए थे। ये दगे थे तो मामूली से ही, मगर वदकिस्मती से इनमे जमींदार या इनके कारिन्दे मर

गये थे। गांधीजी युक्तप्रात के गवर्नर सर माल्कम हेली से किसान
की परिस्थिति पर वातचीत करने नैनीताल गये थे (उस वक्त भ
मैं लका मे ही था), मगर उसका कोई अच्छा नतीजा नह
निकला। जब सरकार ने छूट की घोषणा की तो वह उम्मी
से बहुत कम थी। देहात मे लगातार होहल्ला मचने और बढ
लगा। ज्यो-ज्यो जमीदार और सरकार दोनो का मिलाकर दबा
बढता गया और हजारो किसान अपनी जमीन से बेदखल कि
जाने लगे और उनकी छोटी-छोटी मिल्कियत छीनी जाने लगी
त्यो-त्यो ऐसी स्थिति पैदा होती गई कि जिससे किसी भी दूस
देश मे एक बडा किसान-विप्लव खडा हो सकता था। मे
खयाल है कि यह काग्रेस की कोशिश का ही नतीजा था कि
जिससे किसानो ने कोई हिसात्मक कार्य नही किये। मगर खु
उनपर जो बल-प्रयोग हुआ उसका क्या पूछना!

बगाल की तरह, सीमाप्रात मे भी दिल्ली के समझौते
कोई शाति नही हुई। वहा विक्षोभ का वातावरण निरन्तर बन
रहा। वहा की हुकूमत विशेष कानूनो, आर्डिनेन्सो औ
छोटे-छोटे कुसूरों पर भारी-भारी सजाओ के कारण एक फौज
हुकूमत के समान हो रही थी। इस हालत का विरोध करने के लि
खान अब्दुलगफ्फार खा ने बडा आन्दोलन उठाया, जिससे स
कार की निगाह मे वह बहुत खटकने लगे। वह छ. फुट ती
इच ऊचे पूरे पठान, मर्दानगी के साथ, गाव-गाव पैदल जाते
और जगह-जगह 'लालकुर्ती' दल के केन्द्र कायम करते थे। जह
कही वह या उनके ख़ास-खास साथी जाते थे वहां-वहां वह लाल
कुर्ती-दल का एक सिलसिला बनाकर छोड़ जाते थे और जल्द
ही सारे प्रांत मे 'खुदाई खिदमतगार' की शाखाए फैल गई।
विलकुल शान्तिपूर्ण थे और उनके खिलाफ गोल-मोल आरो
लगाये जाने पर भी, आज तक हिसा का कोई एक भी निश्चि
अभियोग नही ठहर सका है। मगर चाहे वे शातिपूर्ण रहे हं
या नही, उनका पूर्व-इतिहास तो युद्ध और हिंसा का रहा था औ

वे उपद्रवी सीमाप्रदेश के पास बसे हुए थे इसलिए इस अनुशासन-युक्त आन्दोलन के, जिसका हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय-आन्दोलन से गहरा ताल्लुक था, तेजी से बढने के कारण सरकार घवरा गई। मेरा खयाल है कि उसने इस आन्दोलन के शाति और अहिसा के दावे पर कभी विश्वास नही किया। मगर, यदि उसने विश्वास भी कर लिया होता तो भी उसके हृदय मे इसके कारण दहशत और झुझलाहट ही पैदा हुई होती। इसमे उसे इतनी असली और भीतरी शक्ति दिखाई दी कि वह उसे शाति से देखती नही रह सकती थी।

इस बडे आन्दोलन के मुखिया, विला उज्र, खान अब्दुल-गफ्फार खा ही थे—जिन्हे 'फख्रे-अफगान','फख्रे-पठान', 'गांधी-ए-सरहद',वगैरा नामो से याद किया जाने लगा। उन्होने सिर्फ अपने चुपचाप और एक-निष्ठ काम के वल पर, जिसमे न वह मुश्किलों से डरे न सरकारी दमन से, सीमाप्रांत मे आश्चर्यजनक लोक-प्रियता पा ली थी। जैसे कि राजनीतिज्ञ आमतौर पर हुआ करते है,उस तरह के राजनीतिज्ञ न वह थे, न है। वह राजनैतिक चालाकियो और पैतरेवाजियो को नही जानते। वह तो एक ऊंचे और सीधे—शरीर और मन दोनो मे—आदमी है। वह शोर-गुल और वकवास से नफरत करते है। वह हिन्दुस्तान की आजादी के ढांचे के अन्दर अपने सीमा-प्रातीय लोगो के लिए भी आजादी चाहते है, मगर विधानो और कानूनी वातो के वारे मे उनका दिमाग सुलझा हुआ नही है और न उनमे उन्हे कोई दिलचस्पी ही है। किसी भी चीज को पाने के लिए जोरदार काम की ज़रूरत है और गाधीजी ने ऐसे शातिपूर्ण काम का एक वढिया तरीका, जो उन्हें जच गया, वता ही दिया था। इसलिए ज्यादा वहस मे न पडते हुए और अपने सगठन के लिए क़ायदो के मसविदे के फेर मे न पडकर, उन्होंने सीधा सगठन करना ही शुरु कर दिया और उनमें उन्हे खूव कामयावी मिली।

गाधीजी की तरफ उनका रुझान खासतौर पर हो गया। पहले

तो अपने-आपको पीछे ही रखने के लजीले स्वभाव के कारण वह उनसे दूर-दूर रहे। बाद मे कई मामलो पर बहस करने के लिए उन्हे उनसे मिलना पड़ा और उनका ताल्लुक बढा। यह ताज्जुब की वात है कि इस पठान ने अहिसा को उसूलन हममे से कई लोगो की बनिस्बत ज्यादा कैसे मान लिया? और चूकि उनका अहिसा पर पक्का यकीन था, इसी कारण वह अपने लोगो को समझा सके कि उभाड़े जाने पर भी शाति रखने का वड़ा भारी महत्त्व है। यह कहना तो बिल्कुल गलत ही होगा कि सीमा-प्रात के लोगो ने कभी भी या छोटी भी हिसा करने का विचार पूरी तरह से छोड दिया है, जैसाकि किसी भी प्रात के लोगो के बारे मे आमतौर पर यह कहना बिलकुल ग़लत होगा। आम जनता तो भावुकता की लहरो मे बहा करती है और जब इस तरह की लहर उठ खड़ी हो तव वह क्या करेगी यह पहले से नही कहा जा सकता। मगर अपने-आप पर काबू और जब्त रखने की जो मिसाल सीमा-प्रात के लोगों ने १९३० मे और बाद के बरसों मे पेश की थी वह विलक्षण ही थी।

१९३० मे हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय आदोलन कुछ वक्त के लिए देश की बढती हुई सामाजिक शक्तियों के भी अनुकूल वैठ गया, जिससे उसे बडी ताकत मिल गई। उसमे वास्तविकता मालूम होने लगी और ऐसा लगने लगा कि मानो वह सचमुच इतिहास के साथ कदम-ब-कदम आगे बढ रहा है। काग्रेस उस राष्ट्रीय आदोलन की प्रतिनिधि थी और उसकी प्रतिष्ठा बढने से मालूम होता था कि उसकी शक्ति और सत्ता वढ़ रही है। यह कुछ-कुछ अस्पष्ट, कुछ बे-अन्दाज, कुछ जबान से न बयान किया जाने-जैसा तो था; किन्तु फिर भी वहुत कुछ मौजूद था ही। निस्सन्देह किसान लोग काग्रेस की तरफ झुके और उन्होने ही उसकी असली शक्ति वनाई। निचले मध्यम-वर्ग ने उसे सवसे मजवूत सैनिक दिये। ऊपरी मध्यम-वर्ग ने भी इस वातावरण से

घवराकर कांग्रेस से दोस्ती बनाये रखने मे ही ज्यादा भलाई देखी। ज्यादातर सूती मिलो ने कांग्रेस के बनाये इकरारनामों पर दस्तख़त कर दिये, और वे ऐसे काम करने से डरने लगी जिनसे कांग्रेस उनसे नाराज हो जाय। जब कुछ लोग लन्दन मे बैठे पहली गोलमेज-कान्फ्रेंस मे बड़े-बडे कानूनी प्रश्नो पर बातचीत कर रहे थे, उस वक्त मालूम हो रहा था कि आम लोगों के प्रतिनिधि की हैसियत से कांग्रेस के पास ही धीरे-धीरे और अनजान में असली ताकत चली जा रही है। दिल्ली के समझौते के बाद भी यह भ्रम बढता ही रहा—किन्ही अभिमान-भरे भाषणो के कारण नही, बल्कि १९३० और बाद की घटनाओ के कारण। इसमे शक नही कि शायद कांग्रेस के नेताओ को ही सबसे ज्यादा यह पता था कि सामने क्या-क्या कठिनाइया और खतरे आनेवाले हैं, इसलिए उनको मामूली न समझने की उन्होने पूरी फिक्र रक्खी।

देश मे बढनेवाली बराबर की दो समान सत्ताओ की हस्ती का अस्पष्ट भान कुदरती तौरपर सरकार को बहुत ही चुभनेवाला था। असल मे, इस धारणा के लिए कोई असली बुनियाद तो थी नही, क्योंकि दृश्य सत्ता तो सोलहों आना सरकारी अधिकारियों के हाथ मे ही थी, फिर भी लोगो के दिमागो मे दो समान सत्ताओं के अस्तित्व का भान था, इसमे तो शक ही नहीं है। सत्तावादी और अपरिवर्तनीय शासन-तन्त्र के लिए तो यह स्थिति चलने देना असम्भव था और इसी विचित्र वातावरण से अधिकारी बेचैन हो गए, न कि गावो के कुछ ऐसे-वैसे भाषणो या जुलूसों से, जिनकी कि उन्होने बाद मे शिकायत की। इसलिए संघर्ष होना लाजमी दीखने लगा। कांग्रेस अपनी ख़ुशी से आत्मघात नही कर सकती थी और सरकार भी इस दुहरी सत्ता के वातावरण को बरदाश्त नही कर सकती थी और कांग्रेस को कुचल डालने पर तुली हुई थी। यह संघर्ष दूसरी गोलमेज-कान्फ्रेंस के कारण रुका रहा। किसी-न-किसी कारण से, ब्रिटिश-सरकार गाधीजी को लन्दन बुलाने को बहुत उत्सुक थी

और इसीसे जहा तक हो सके कोई भी ऐसा काम नही करती थी जिसमे उनका लन्दन जाना रुक जाय।

इतने पर भी सघर्ष की भावना बढती ही गई और हमे दीखने लगा कि सरकार का रुख सख्त हो रहा है। दिल्ली के समझौते के बाद ही लार्ड अर्विन हिंदुस्तान से चले गये और लार्ड विलिगडन वाइसराय बनकर आये। यह खबर फैलने लगी कि नया वाइस-राय बडा सख्त आदमी है और पिछले वाइसराय की तरह समझौते करनेवाला नही है। परिस्थिति की गतिविधि के कारण सरकार की नीति भी धीरे-धीरे बदलती गई। सिविल-सर्विस के उच्च-अधिकारियो को काग्रेस के साथ समझौते या व्यवहार करने की बात पसंद नही थी। शासन के सम्बन्ध मे उनकी सारी तालीम और सत्तावादी धारणाएं इसके खिलाफ थी। उनके दिमाग मे यह खयाल था कि उन्होने गाधीजी के साथ बिलकुल बराबरी का-सा बरताव करके काग्रेस के प्रभाव और गाधीजी के रुतबे को बढा दिया है और यह वक्त है कि उनको थोडा-सा नीचा दिखाया जाय। यह खयाल बड़ी बेवकूफी का था, मगर हिन्दुस्तान की सिविल-सर्विस मे विचारों की मौलिकता तो कभी मानी ही नही गई है। ख़ैर, कुछ भी कारण हो, सरकार सख़्ती से तन गई और उसने अपना पजा और भी मजबूती से जमाया।

वाइसराय और दूसरे अधिकारियों से लम्बी-लम्बी बातचीत करने के लिए गाधीजी दो बार शिमला गये। उन्होने उस समय के मौजूदा कई सवालो पर बातचीत की और बगाल के अलावा, जो सरकार को सबसे ज्यादा चितित कर रहा मालूम पडता था, ख़ासकर सीमा-प्रात के लालकुर्ती-दल-आदोलन और युक्तप्रात के किसानो की स्थिति इन दो विषयो पर बातचीत हुई।

शिमला मे गाधीजी ने मुझे भी बुला लिया था और मुझे भारत-सरकार के कुछ अधिकारियो से मिलने के भी मौके मिले। मै सिर्फ युक्तप्रांत के बारे मे ही बातचीत करता था। बड़ी

साफ-साफ बाते हुई और छोटे-छोटे आरोपों और प्रत्यारोपों की तह मे जो असली सघर्ष की बाते छिपी हुई थी, उनपर भी बहस हुई। मुझे याद है कि मुझसे कहा गया कि फरवरी १९३१ मे ही सरकार की ऐसी स्थिति थी कि वह ज्यादा-से-ज्यादा तीन महीने के अन्दर सविनय-भग के आदोलन को दवा सकती थी। उसने अपना सारा यन्त्र तैयार कर लिया था और उसे चालू कर देने की, केवल बटन दवा देने भर की, आवश्यकता थी। मगर उसने यह सोचकर कि, अगर हो सके तो, बल-प्रयोग के बजाय आपस मे मिलकर समझौता कर लेना शायद अच्छा होगा, आपसी बात-चीत करके देखना तय किया था, और इसीका नतीजा था कि दिल्ली का समझौता हो गया। अगर समझौता न हुआ होता तो बटन तो मौजूद था ही, जो पल-भर मे दवाया जा सकता था और इसमे यह भी इशारा मालूम होता था कि अगर हमने ठीक बर्ताव न किया तो फिर जल्दी ही बटन दवा देना पडेगा। यह सारी बात बड़ी नम्रता से और साफ़-साफ कही गई थी और हम दोनों ही जानते थे कि हमारे सारे प्रयत्नो के बावजूद और हम चाहे कुछ भी कहे या करे, सघर्ष होना तो लाजिमी था।

जहां तक गोलमेज-कान्फ्रेस मे जाने का सवाल था, गांधीजी की पहली शिमला-यात्रा का कोई नतीजा न निकला। दूसरी यात्रा अगस्त के आखिरी हफ्ते मे हुई। जाने या न जाने का आखिरी फ़ैसला तो करना ही था, मगर फिर भी उन्हे हिन्दुस्तान छोड़ने का निश्चय करना मुश्किल हो गया। बगाल मे, सीमा-प्रांत मे और युक्तप्रांत मे उन्हे मुसीबत आती हुई दीख रही थी और जबतक उन्हे हिन्दुस्तान में शांति रहने का आश्वासन न मिल जाय, वह जाना नहीं चाहते थे। अन्त मे एक तरह का समझौता सरकार के साथ हो गया, जो एक वक्तव्य और परस्पर के पत्र-व्यवहार के रूप मे था। यह बिलकुल ही आखिरी घड़ी में किया गया, ताकि वह उस जहाज से जा सके जिसमे गोलमेज-

काग्रेस के प्रतिनिधि जा रहे थे। वास्तव मे यह, एक तरह से बिलकुल ही आखिरी घडी मे हुआ था, क्योंकि आखिरी ट्रेन छूट चुकी थी, शिमला से कालका तक एक स्पेशल ट्रेन तैयार कराई गई और कालका से छूटनेवाली गाडी पकडने के लिए दूसरी गाडिया रोक दी गई।

मै उनके साथ शिमले से बम्बई तक गया और वहा अगस्त के एक सुन्दर प्रभात मे मैने उन्हे विदाई दी और वह अरब के समुद्र और सुदूर पश्चिम की तरफ बढ चले। अगले दो साल तक के लिए मेरे लिए उनके ये अतिम दर्शन थे।

: ३३ :

दूसरी गोलमेज-परिषद्

गाधीजी गोलमेज-परिषद् मे शामिल होने के लिए काग्रेस के एक-मात्र प्रतिनिधि की हैसियत से लन्दन गये थे। बडी लम्बी बहस के बाद हम लोगो ने यही तय किया था कि किसी दूसरे प्रतिनिधि की जरूरत नही। यह बात कुछ हद तक तो इसलिए की गई कि हम यह चाहते थे कि हम ऐसे नाजुक वक्त मे अपने सब अच्छे आदमियो को हिदुस्तान मे ही रक्खे। उन दिनो हालात को बहुत होशियारी के साथ सम्हालते रहने की सख्त जरूरत थी। हम लोग यह महसूस करते थे कि लन्दन मे गोलमेज-काफ्रेस होने के बावजूद आकर्षण का केन्द्र तो हिन्दुस्तान मे ही था और हिन्दुस्तान मे जो कुछ होगा, लन्दन मे उसकी प्रतिध्वनि जरूर होगी। हम चाहते थे कि अगर मुल्क मे कोई गड़वड़ हो तो हम उसे देखे और अपने सगठन को ठीक हालत मे बनाये रखे। लेकिन सिर्फ एक प्रतिनिधि भेजने का हमारा असली कारण यही न था। अगर हम वैसा करना जरूरी और मुनासिब समझते तो हम बिला-शक दूसरे को भी भेज सकते थे, लेकिन हम लोगो ने जान-बूझकर

ऐसा नही किया।

हम गोलमेज-कान्फ्रेंस मे इसलिए शामिल नही हो रहे थे कि हम विधान-सम्वन्धी छोटी-मोटी वातो पर ऐसी वाते और वहस करे जिनका कभी खात्मा ही न हो। उस अवस्था मे हमे इन तफसीलों मे कोई दिलचस्पी नही थी। उनपर तो तभी गौर किया जा सकता था जबकि खास-खास वुनियादी मामलों मे ब्रिटिश सरकार के साथ हमारा कोई समझौता हो जाता। असली सवाल तो यह था कि लोकतन्त्रीय हिन्दुस्तान को कितनी ताकत सौपी जाती है। यह बात तय हो जाने के बाद राजीनामे का मसविदा वनाने और उसकी तफसीले तय करने का काम तो कोई भी वकील कर सकता था। इन मूल वातो पर काग्रेस की स्थिति वहुत साफ और सीधी थी और उसपर वहस करने का भी ऐसा ज्यादा मौका न था। हम लोगों को यह मालूम होता था कि हम लोगो के लिए यही गौरवपूर्ण रास्ता है कि हमारा सिर्फ एक ही प्रतिनिधि जाय और वह प्रतिनिधि हमारा लीडर हो। वह वहा जाकर हमारी स्थिति साफ कर दे। यह वतावे कि हमारी स्थिति कितनी युक्ति-सगत है और किस तरह उसको मजूर किये विना गति नही है। अगर हो सके तो ब्रिटिश-सरकार को इस बात के लिए राजी करले कि वह काग्रेस की वात मान ले। हम जानते थे कि यह वात तो वहुत मुश्किल है, और उस वक्त जैसी हालत थी उसको देखते हुए तो वह विलकुल ही सम्भव नही थी, लेकिन हमारे पास भी तो इसके सिवाय कोई चारा न था। हम अपनी उस स्थिति को नही छोड़ सकते थे। न हम उन उसूलों और आदर्शो को ही छोड सकते थे जिनसे हम वंधे हुए थे और जिनमे हमे पूर्ण विश्वास था। अगर हमारी तकदीर सिकन्दर हो और इन वुनियादी वातों मे राजीनामे की कोई सूरत निकल आती तो वाकी वाते अपने-आप आसानी से तय हो जाती। वल्कि सच वात तो यह है कि हम लोगो मे आपस मे यह तय हो गया था कि अगर किसी तरह से ऐसा राजीनामा हो जाय तो गांधीजी हम कुछ को

या कार्य-समिति के तमाम मेम्बरों को फौरन लन्दन बुल
जिससे कि हम वहां जाकर समझौते की तफसील तय क
काम कर सके। हम लोगो को वहा जाने के लिए तैयार
था और जरूरत पडती तो हम लोग हवाई जहाजो मे उड
जाते। इस तरह हम बुलाये जाने पर दस दिन के अन्दर
पास पहुच सकते थे।

लेकिन अगर बुनियादी बातों मे शुरू मे कोई समझौत
होता तो आगे और तफसील मे, समझौते की बाते कर
सवाल ही नही पैदा होता। न काग्रेस के दूसरे प्रतिनिधि
गोलमेज-कान्फ्रेंस मे जाने की कोई जरूरत पड़ती। इसीलिए
सिर्फ गाधीजी को ही वहां भेजना तय किया। कार्य-समि
एक और सदस्या श्रीमती सरोजिनी नायडू भी गोलमेज-
मे शामिल हुई, लेकिन वह वहा काग्रेस की प्रतिनिधि होक
गई थी। उनको तो वहा हिन्दुस्तानी स्त्रियो के प्रतिनिधि-
बुलाया गया था और कार्य-समिति ने उन्हे इजाजत दी थी
इस हैसियत से उस कान्फ़्रेंस में शामिल हो सकती है।

लेकिन ब्रिटिश सरकार का इस तरह का कोई इरादा
कि इस मामले मे वह हमारी मर्जी के मुताबिक काम करे।
कार्य-पद्धति तो यह थी कि परिषद् गौण और बेमतलब की
छोटी बातों पर चर्चा करके थक जाय। तबतक मूल और
सवालों पर विचार करने का काम टलता रहे। जब कभी
सवालों पर गौर भी हुआ तब सरकार ने चुप्पी साध ली।
हां या ना करने से साफ इन्कार कर दिया और सिर्फ यह
किया कि सरकार अपनी राय बाद को अच्छी तरह सोच-वि
कर देगी। असल मे उसके पास तुरप का पत्ता तो था साम्प्रदा
सवाल और उसका उसने पूरा-पूरा इस्तेमाल किया। कांफ्रे
इसी सवाल का बोलबाला था।

कांफ्रेंस के ज्यादातर हिन्दुस्तानी मेम्बर सरकार की

चालों के जाल मे फंस गये। ज्यादा तो राजी-खुशी से और कुछ थोड़े-से मजबूरी से। कांफ्रेस क्या थी, भानमती का पिटारा था। उसमे शायद ही कोई ऐसा हो जो अपने अलावा किसी दूसरे का प्रतिनिधि हो। कुछ आदमी काबिल थे और मुल्क मे उनकी इज्जत भी थी, लेकिन बाकी बहुत-से लोगो की बाबत यह बात भी नही कही जा सकती थी। कुल मिलाकर राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से वे हिन्दुस्तान मे राजनीतिक उन्नति के सबसे ज्यादा विरोधी दलों के प्रतिनिधि थे। ये लोग इतने फिसड्डी और प्रगति-विरोधी थे कि हिन्दुस्तान के लिबरल, जो हिन्दुस्तान मे बहुत ही माडरेट और फूक-फूक कर कदम रखने-वाले माने जाते है, इनकी जमात मे वही प्रगति के बड़े भारी हामी बनकर चमके। ये लोग हिन्दुस्तान मे ऐसे स्थापित स्वार्थ रखने-वालो के प्रतिनिधि थे, जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद से बधे हुए थे और तरक्की और रखवाली के लिए उसीका भरोसा रखते थे। सबसे ज्यादा मशहूर प्रतिनिधि तो साम्प्रदायिक झगडो के सिल-सिले मे जो 'छोटी' और 'बडी' जातिया थी उनके थे। ये टोलिया उन उच्च वर्गवालो की थी जो कुछ भी मानने को तैयार न थे और जो आपस मे कभी मिल ही नही सकते थे। राजनीतिक दृष्टि से वे हर किस्म की प्रगति के एकदम विरोधी थे और उनकी दिल-चस्पी केवल एक बात मे थी कि किसी तरह अपने फिरके के लिए कुछ फायदे की बात हासिल कर ले, फिर चाहे ऐसा करने मे हमे अपनी राजनीतिक प्रगति को भी छोडना पडे। बल्कि सच बात तो यह है कि उन्होने खुल्लमखुल्ला यह एलान कर दिया था कि जबतक उनकी साम्प्रदायिक मागे पूरी नही की जायंगी, तब-तक वे राजनीतिक आज़ादी लेने को राजी न होगे। यह एक असा-धारण दृश्य था और उससे हमे बडे दुःख के साथ यह बात साफ-साफ दिखाई देती थी कि एक गुलाम कौम किस हद तक गिर सकती है और वह साम्राज्यवादियो के खेल मे किस तरह शत-रंज का मोहरा बन सकती है। यह सही था। राजा-महाराजाओं,

लार्डो, सरों और दूसरे बडे-बड़े उपाधिधारी लोगों की उस भीड की बाबत यह नही कहा जा सकता कि वह हिन्दुस्तान के लोगो की प्रतिनिधि है। गोलमेज-कान्फ्रेस के मेम्बर ब्रिटिश-सरकार के नामजद थे और अपनी दृष्टि से सरकार ने जो चुनाव किया था वह बहुत अच्छा किया था। फिर भी महज यह बात कि ब्रिटिश-अधिकारी हम लोगो का ऐसा इस्तेमाल कर सकते है, यह दिखाती है कि हम लोगो मे कितनी कमजोरिया है और हम लोग कैसी अजीब आसानी के साथ असली बातो से हटाकर एक-दूसरे की कोशिशो को बेकार करने के काम मे लगाये जा सकते है।

यह तो ठीक ही था कि साम्राज्यवादी, सामतवादी, व्यवसाय और धार्मिक तथा साम्प्रदायिक लोगो के स्थापित स्वार्थो के इस समाज मे ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधि-मडल का नेतृत्व हमेशा के मुताबिक सर आगाखा के हाथ मे रहे, क्योकि वह कुछ हद तक इन सब स्वार्थो से स्वयं सपन्न थे। कोई एक पुश्त से ज्यादा ब्रिटिश साम्राज्यवाद से और ब्रिटिश शासक श्रेणी से उनका बहुत नजदीकी सम्बन्ध रहा। वह ज्यादातर इग्लैंड मे ही रहते है। इसलिए वह हमारे शासको के स्वार्थो और उनके दृष्टिकोण को पूरी तरह समझ सकते है और उनका प्रतिनिधित्व कर सकते है। उस गोलमेज-कान्फ्रेस मे साम्राज्यवादी इग्लैड के वह बहुत योग्य प्रतिनिधि हो सकते थे; लेकिन आश्चर्य तो यह था कि वह हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि समझे जाते थे!

कान्फ्रेस मे हमारे खिलाफ पलडा बुरी तरह से भारी था और यद्यपि हमे उससे कभी कोई उम्मीद न थी, फिर भी उसकी कार्रवाइयो को पढ-पढकर हमे हैरत होती थी और दिन-दिन उससे हमारा जी ऊबता जाता था। हमने देखा कि राष्ट्रीय और आर्थिक समस्याओं की सतह को खरोचने की कैसी दयनीय और वाहियात ढग से मामूली कोशिश की जा रही है! कैसे-कैसे पैक्ट और कैसी-कैसी साजिशे हो रही है! कैसी-कैसी चाले चली जा रही है!

हमारे ही कुछ देशभाई ब्रिटिश अनुदार दल के सबसे ज्यादा प्रतिगामी लोगों से मिल गये है। टुच्चे-टुच्चे मामलो पर बाते चलती थी और सो भी खत्म ही न होती थी, जो असली बाते है उनको जानबूझ कर टाला जा रहा है। ये प्रतिनिधि बडे-बड़े स्थापित स्वार्थों के और खासकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हाथ की कठपुतली बने हुए है। वे कभी तो आपस मे लडते-झगडते है और कभी एक-साथ बैठकर दावते खाते तथा एक-दूसरे की तारीफ करते है। शुरू से लेकर अखीर तक सब मामला नौकरियो का था। छोटे ओहदे, हिंदुओ के लिए कितनी नौकरिया और कुर्सिया तथा सिक्खो और मुसलमानो के लिए कितनी ? और एग्लो-इडियनों तथा यूरोपियनो के लिए कितनी ? लेकिन ये सब ओहदे ऊंचे दरजे के अमीर लोगो के लिए थे, जन-साधारण के लिए उनमे कुछ न था। कोई यह नही सोचता था कि हिन्दुस्तान के लिए आजादी की, असली स्वतन्त्रता की, भारत को लोकतन्त्री सत्ता सौपे जाने की, हिन्दुस्तान के लोगो के सामने जो भारी और जरूरी आर्थिक समस्याए मौजूद है उनके हल करने की भी कोई जरूरत है ? क्या इसीके लिए हिन्दुस्तान मे इतनी मर्दानगी से लडाई लड़ी गई थी ? क्या हम सुन्दर आदर्शवाद और त्याग की दुर्लभ मलय-समीर को छोड़कर इस गन्दी हवा को ग्रहण करेंगे ?

उस राजसी महल मे और इतने विभिन्न लोगो की भीड़ में गाधीजी बिलकुल अकेले मालूम होते थे। उनकी पोशाक से, या उनकी कोई पोशाक ही न होने की वजह से, बाकी सब लोगो मे उन्हे आसानी से पहचाना जा सकता था। लेकिन उनके आसपास अच्छे सजे-धजे लोगो की जो भीड़ बैठी हुई थी उसके विचार और दृष्टिकोण मे तथा गाधीजी के विचारो और उनके दृष्टि-बिन्दु मे और भी ज्यादा फर्क था। उस कान्फ्रेंस मे उनकी स्थिति बहुत ही मुश्किल थी। इतनी दूर बैठे-बैठे हम इस बात पर आचरज करते थे कि वह इसे कैसे बरदाश्त कर रहे है ? लेकिन आश्चर्य-

जनक धीरज के साथ वह अपना काम करते रहे और समझौते की कोई-न-कोई वुनियाद ढूढने के लिए उन्होने कई कोशिशे की। एक विलक्षण बात उन्होने ऐसी की, जिसने फौरन यह दिखला दिया कि किस तरह साम्प्रदायिक भाव ने दरअसल राजनैतिक प्रतिगामिता को अपनी ओट मे छिपा रखा था। मुसलमान प्रतिनिधियो की तरफ से कांफ्रेस मे जो साम्प्रदायिक मागें पेश की गई थी, उनको गांधीजी पसन्द नही करते थे। उनका खयाल था और उनके साथी कुछ राष्ट्रीय विचार के मुसलमानो का भी यही खयाल था कि इनमे से कुछ मागे तो आजादी और लोक-तत्र के रास्ते मे रोडा अटकानेवाली है। लेकिन फिर भी उन्होंने कहा कि मैं इन सव मागों को 'बिना किसी ऐतराज के मानने को तैयार हूं, बशर्ते कि मुसलमान-प्रतिनिधि राजनीतिक माग यानी आजादी के मामले मे मेरा तथा काग्रेस का साथ दे।'

उनका यह प्रस्ताव खुद अपनी तरफ से था; क्योकि उनकी जैसी हालत थी, उसमे काग्रेस को वह किसी वात से नही बाध सकते थे। लेकिन उन्होने वादा किया कि मैं काग्रेस मे इस बात के लिए जोर दूगा कि ये मागे मान ली जायं। और कोई भी शख्स जो काग्रेस मे उनके असर को जानता था, इस बात मे किसी तरह का शक नही कर सकता था कि वह काग्रेस से उन मागो को मनवाने मे कामयावी हासिल कर सकते थे, लेकिन मुसलमानो ने गांधीजी के इस प्रस्ताव को मजूर नही किया। सचमुच इस वात की कल्पना करना जरा मुश्किल है कि आगाखा साहब हिन्दुस्तान की आजादी के हामी हो जायगे। लेकिन इससे इतनी वात साफ-साफ़ दिखाई दे दी गई कि असली झगडा साम्प्रदायिक नही था। यद्यपि काफ्रेस मे साम्प्रदायिक प्रश्न की ही धूम थी। असल मे तो राज-नैतिक प्रतिगामिता ही सव तरह की तरक़्की के रास्ते को रोक रही थी और वही साम्प्रदायिक प्रश्न की आड मे छिपी हुई टट्टी की ओट मे शिकार करती रही। कांफ्रेस के लिए अपने नामजद

प्रतिनिधियो का चुनाव बडी चालाकी से करके ब्रिटिश-सरकार ने इन उन्नति-विरोधी लोगो को वहां जमा किया था और कान्फ्रेस की कार्रवाई की गतिविधि अपने हाथ मे रखकर उसने साम्प्रदायिक सवाल को मुख्य और एक ऐसा सवाल वना दिया था, जिसपर आपस मे कभी न मिल सकने वाले वहा पर इकटठे हुए लोगो मे कभी कोई समझौता हो ही नही सकता था।

इस कोशिश मे ब्रिटिश-सरकार को कामयावी मिली और इस कामयाबी से उसने यह सावित कर दिया कि अभीतक उसमे न सिर्फ अपने साम्राज्य को कायम रखने की वाहरी ताकत ही है, वल्कि कुछ दिनो तक और साम्राज्यवादी-परम्परा को चला ले जाने के लिए चालाकी और कूटनीति भी उसके पास है। हिन्दुस्तान के लोग नाकामयाव रहे, यद्यपि गोलमेज-कान्फ्रेस न तो उनकी प्रतिनिधि ही थी और न उसकी ताकत से हिन्दुस्तान के लोगो की ताकत का अन्दाजा ही लगाया जा सकता था। उनके नाकामयाव होने की खास वजह यह थी कि उनके पास उनके उद्देश्य के पीछे कोई विचार-धारा न थी, इसलिए उन्हे आसानी से अपनी असली जगह से हटाया तथा गुमराह किया जा सकता था। वे इसलिए असफल हुए कि वे अपने मे इतनी ताकत नही महसूस करते थे कि वे उन स्थापित स्वार्थ रखनेवालो को धता वता दे, जो उनकी तरक्की के लिए भार-स्वरूप वने हुए थे। से असफल रहे, क्योकि उनमे मजहवीपन की अति थी और उनके साम्प्रदायिक भाव आसानी से भडकाये जा सकते थे। थोड़े मे वे इसलिए असफल हुए कि अभीतक वे इतने आगे नही वढे हुए थे, न इतने मजवूत ही थे, कि कामयाव होते।

वह कान्फ्रेस, जहां साजिशो, मौकापरस्ती और जालसाजियो का वोलवाला था, हिन्दुस्तान की विफलता नहीं कहला सकती। वह तो वनाई ही ऐसी गई थी, जिससे असफल होती।

उसकी नाकामयाबी का कुसूर हिन्दुस्तान के लोगो के मत्थे नही मढा जा सकता। लेकिन उसे इस बात मे जरूर सफलता मिली कि उसने हिन्दुस्तान के असली सवालों से दुनिया का ध्यान हटा दिया और खुद हिन्दुस्तान मे उसकी वजह से लोगो की आंखे खुल गई, उनका उत्साह मर गया तथा उन्होने उससे अपनी जिल्लत-सी महसूस की। उसने प्रतिगामी लोगो को फिर अपना सिर उठाने का मौका दे दिया।

हिन्दुस्तान के लोगों के लिए तो सफलता या असफलता खुद हिन्दुस्तान मे होनेवाली घटनाओ से हो सकती थी। हिन्दुस्तान मे जो मजबूत राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था, वह लन्दन मे होनेवाली चालबाजियो से ठण्डा नही पड सकता था। राष्ट्रीयता मध्यमवर्ग के लोगो और किसानो की असली और तात्कालिक जरूरतो को दिखलाती थी। उसीके जरिये वे अपने मसलो को हल करना चाहते थे, इसलिए उस आन्दोलन की दो ही सूरते हो सकती थी—एक तो यह कि वह कामयाब होता, अपना काम पूरा करता और किसी ऐसे दूसरे आन्दोलन के लिए जगह खाली कर देता, जो लोगो को प्रगति और आजादी की सड़क पर और भी आगे ले जाता, दूसरी यह कि कुछ वक्त के लिए उसे जबरदस्ती दबा दिया जाता। असल मे कान्फ्रेस के बाद फौरन हिन्दुस्तान मे लडाई छिड़ने को और कुछ वक्त के लिए बेबसी से ख़तम हो जाने को थी। दूसरी गोलमेज-कान्फ्रेस का इस लडाई पर कोई ऐसा ज्यादा असर नही पड सका, पर उसने कुछ हद तक हमारी लड़ाई के ख़िलाफ वातावरण जरूर बना दिया।

: ३४ :

सुलह का खात्मा

नवम्बर १९३१ मे मै कुछ दिनो के लिए कलकत्ता गया।

वहा मेरा कार्यक्रम बहुत भरा-पूरा रहा और निजी तौर पर लोगों और समूहों से मिलने के अलावा मैंने कई सार्वजनिक सभाओं मे भाषण भी दिये। इन सब सभाओ मे मैंने आतकवाद के प्रश्न पर भी चर्चा की और यह बताने की कोशिश की कि हिंदुस्तान की आजादी के लिए वह कितना गलत, बेकार और हानिकारक है। मैंने आतकवादियो को बुरा नही कहा, न मैंने अपने कुछ ऐसे देशवासियो की तरह उन्हे 'कायर' ही कहा, जिन्होने शायद ही कभी पराक्रम या खतरे का कोई काम करने का साहस किया हो। मुझे हमेशा यह बडी बेवकूफी की बात मालूम हुई है कि ऐसे स्त्री या पुरुष को, जो लगातार अपनी जान को हथेली पर लिये रहता है, 'कायर' कहा जाय। इसका असर उस आदमी पर यह होता है कि वह अपने डरपोक समालोचको को, जो दूर खड़े रहकर ही चिल्लाते है लेकिन कर कुछ भी नही सकते, तिरस्कार की निगाह से देखने लगता है।

कलकत्ते से रवाना होने के लिए स्टेशन पर जाने से थोड़ी देर पहले वहां शाम को मेरे पास दो युवक आए। वे बहुत ही कम उम्र के, करीब बीस-बीस साल के, नौजवान थे। उनके चेहरे फीके थे और उनपर घबराहट झलक रही थी। उनकी आखे चमकदार थी। मुझे मालूम नही कि वे कौन थे; लेकिन मै अटकल से समझ गया कि उनका काम क्या था। वे मेरे आतकवादी हिसा के विरुद्ध प्रचार करने के कारण मुझपर बहुत गुस्सा थे। उन्होने कहा कि उससे नवयुवको पर बहुत बुरा असर पड रहा है और इस तरह मेरा हस्तक्षेप करना वे पसन्द नही करते है। हमने थोड़ी-सी बहस भी की, लेकिन वह बडी जल्दी-जल्दी मे हुई, क्योकि मेरे रवाना होने का समय आ रहा था। मेरा खयाल है कि उस समय हमारी आवाज तेज और हमारा मिजाज कुछ गरम हो गया था। मैंने उनसे कुछ कडी बाते भी कह दी थी और जब मै उन्हे वही छोडकर चलने लगा, तो उन्होने मुझे अन्तिम चेतावनी दी

"अगर आगे भी आपका यही रुख रहा तो हम आपके साथ वही बर्ताव करेंगे जैसा कि हमने दूसरो के साथ किया है।"

मै कलकत्ता से चल तो दिया, मगर रात को गाडी मे अपनी [...]ं पर लेटे-लेटे मेरे दिमाग मे उन्ही दोनों लडको के उत्तेजित [...]ूरे बहुत देर तक चक्कर काटते रहे। उनमे जीवन और जोश [...]ा हुआ था। अगर वे ठीक रास्ते पर लग जाते तो कितने अच्छे [...] सकते थे! मुझे दुःख हुआ कि मैंने उनके साथ जल्दी-जल्दी [...]ाते की और कुछ रूखा व्यवहार किया। काश! मुझे लम्बी बात-[...]त करने का मौका मिलता! शायद मै उन्हे दूसरी दिशाओं मे, [...]दुस्तान की सेवा और आजादी के रास्ते मे, जिसमे कि साहस [...]र आत्म-त्याग के मौकों की कमी न थी, अपने होनहार जीवन [...] लगाने की बात सुझा सकता। उस घटना के बाद भी मै [...]सर उन लोगों का विचार किया करता हू। मुझे उनके नाम [...]लूम न हो सके, और न उनका मुझे बाद मे भी कुछ पता लगा। [...]ई बार सोचता हूं कि न जाने वे मर चुके है या अण्डमन के [...]ओ की किन्ही कोठरियो मे बन्द है।

दिसम्बर का महीना था। इलाहाबाद मे दूसरी किसान-[...]फ्रेंस हुई, और फिर मै हिन्दुस्तानी-सेवा-दल के अपने पुराने [...]ी डाक्टर एन० एस० हार्डिकर को दिये अपने पिछले वादे को [...] करने के लिए जल्दी मे कर्नाटक गया। सेवा-दल राष्ट्रीय [...]दोलन का एक अंग था। वह हमेशा काग्रेस का सहायक रहा, [...]पि उसका सगठन बिलकुल अलग ही था। लेकिन १९३१ की [...]मियों मे कार्य-समिति ने उसे बिलकुल काग्रेस मे शामिल करने [...] उसे कांग्रेस का ही स्वयसेवक-विभाग बना लेने का निश्चय [...] लिया। ऐसा हो भी गया, और वह विभाग हार्डिकर को और [...] सौपा गया। दल का हेडक्वार्टर हुबली (कर्नाटक) शहर मे [...]हा और हार्डिकर ने मुझे दल-सम्बन्धी कई कामो के लिए वहा [...]या था। वहा से वह मुझे कुछ दिन के लिए कर्नाटक मे दौरा

करने को ले गए। वहां सब जगह लोगों मे जबरदस्त जोश देखकर मै दंग रह गया। लौटते हुए मै शोलापुर भी गया, जिसका नाम फौजी कानून (मार्शल लॉ) के दिनो मे मशहूर हो चुका था।

कर्नाटक के उस दौरे ने मेरे लिए बिदाई के समारोह का रूप धारण कर लिया। मेरे भाषण विदाई के गीत-जैसे लगते थे; लेकिन उनमे संगीत की बजाय लड़ाई का सुर था। युक्तप्रान्त से जो खबर मिली वह निश्चित और स्पष्ट थी। सरकार ने वार कर दिया था और सख्त वार किया था। इलाहाबाद से कर्नाटक जाते हुए मैं कमला के साथ बम्बई गया था। वह फिर बीमार हो गई थी। मैंने बम्बई मे उसके इलाज की व्यवस्था कर दी। बम्बई मे ही, और लगभग हमारे इलाहाबाद से वहा पहुंचने के बाद ही, हमे यह पता लगा कि भारत-सरकार ने युक्तप्रान्त के लिए एक खास 'आर्डिनेन्स' निकाल दिया है। सरकार ने निश्चय कर लिया था कि वह गाधीजी के आने की बाट न देखेगी, हालाकि गांधीजी जहाज पर चल दिये थे और जल्दी ही बम्बई आ जाने वाले थे। कहने को तो यह आर्डिनेन्स किसानो के आन्दोलन के ही लिए निकाला गया था, लेकिन वह इतना ज्यादा विस्तृत था कि उससे हर प्रकार की राजनीतिक या सार्वजनिक प्रवृत्ति असम्भव हो गई। उसमे बच्चो या नाबालिगो के अपराधो के लिए माता-पिताओ या सरक्षको को सजा देने का विधान भी किया गया।

मै इलाहाबाद वापस जाने और कर्नाटक का दौरा बन्द कर देने को उत्सुक था। मुझे लगा कि मुझे तो अपने सूबे मे अपने साथियो के साथ रहना चाहिए और जब अपने घर-आंगन में इतनी घटनाए हो रही हों, तब उनसे बहुत दूर रहना मेरे लिए एक कठोर परीक्षा ही थी। फिर भी मैंने निश्चय किया कि मैं कर्नाटक के कार्यक्रम को पूरा ही कर डालूं। मेरे बम्बई आने पर कुछ मित्रों ने मुझे सलाह दी कि मै गांधीजी की वापसी तक ठहरा रहूं। वे एक ही सप्ताह बाद आनेवाले थे। मगर यह असभव था। इलाहाबाद

से पुरुषोत्तमदास टंडन और दूसरे लोगो की गिरफ्तारी की खबर आई। इसके अलावा हमारी प्रान्तीय कांफ्रेस भी इटावा मे उसी हफ्ते मे होने वाली थी। इसलिए मैंने तय किया कि मै पहले इलाहाबाद जाऊ और फिर एक हफ्ते बाद, अगर आजाद रहा तो, गाधीजी से मिलने और कार्य-समिति की वैठक मे सम्मिलित होने को बम्बई लौट आऊ। कमला को मैंने रोग-शय्या पर बम्वई मे ही छोड़ा।

मुझे इलाहाबाद पहुॅचने से पहले ही, छिउकी स्टेशन पर नए आर्डिनेन्स के अनुसार एक हुक्म मिला। इलाहाबाद स्टेशन पर उसी हुक्म की दूसरी नकल मुझे देने की कोशिश की गई और मेरे मकान पर भी एक तीसरे व्यक्ति ने ऐसा ही तीसरा प्रयत्न किया। जाहिर था कि सरकार कोई भी जोखिम उठाना नही चाहती थी। उस हुक्म के मुताबिक मै इलाहाबाद म्युनिसिपल हद के अन्दर नजरबन्द कर दिया गया और मुझसे कहा गया कि मुझे किसी भी सार्वजनिक सभा या समारोह मे शामिल नही होना चाहिए, किसी सभा मे भाषण न करना चाहिए। किसी अखबार, पत्रिका या पर्चे मे कोई लेख नही लिखना चाहिए। और भी कई पाबन्दियां लगा दी गई थी। मुझे मालूम हुआ कि मेरे साथियो के नाम भी, जिनमे तसद्दुक अहमदखा शेरवानी भी थे, इसी प्रकार के हुक्म जारी किये गए थे। दूसरे दिन सवेरे ही मैंने जिला-मैजिस्ट्रेट को जिसने हुक्म जारी किये थे लिख दिया कि मुझे क्या करना चाहिए या क्या न करना चाहिए, इसकी वावत मै आपसे हुक्म लेना नही चाहता, मै अपना साधारण काम साधारण रूप से करूगा और अपने काम के सिलसिले मे इस हफ्ते मै गाधीजी से मिलने और कार्य-समिति की, जिसका मै सेक्रेटरी हू, वैठक मे शरीक होने वम्वई जाने वाला हू।

एक नई समस्या भी हमारे सामने खड़ी हो गई। हमारी युक्तप्रान्तीय-कांफ्रेंस इसी हफ्ते इटावा मे होने वाली थी। वम्वई

से मैं इस कांफ्रेंस को स्थगित करवाने की तजवीज पेश करने के इरादे से आया था, क्योंकि एक तो वह गांधीजी के आने के दिनों में ही होने वाली थी और दूसरे सरकार से अभी संघर्ष भी टालना था। लेकिन मेरे इलाहाबाद आने से पहले ही यू० पी० सरकार की तरफ से हमारे प्रधान शेरवानी साहब के पास एक ताकीदी खत आया था, जिसमें पूछा गया था कि क्या आपकी कांफ्रेंस में किसानों की समस्या पर भी विचार किया जायगा? क्योंकि अगर ऐसा होने वाला हो तो सरकार कांफ्रेंस को ही बन्द कर देगी। यह तो साफ जाहिर था कि कांफ्रेंस का खास उद्देश्य किसानों की समस्या पर विचार करना था, जिससे कि सारे प्रान्त में खलबली मच रही थी। कांफ्रेंस करना और उसमें इस सवाल पर गौर न करना तो मूर्खता की हद थी और अपने-आपकी हंसी कराना ही था। कुछ भी हो, हमारे प्रधान को या और किसीको भी यह अख्तियार न था कि वह कांफ्रेंस को किसी बात के लिए पहले से बांध दे। सरकार की धमकी के बिना भी हम कुछ लोगों का तो यह इरादा था ही कि कांफ्रेंस स्थगित की जाय, मगर इस धमकी से तो बात ही और हो गई। हममें से कई लोग तो ऐसे मामलों में कुछ-कुछ आग्रही थे और सरकार द्वारा हमें ऐसा हुक्म दिया जाना किसीको अच्छा न लगा। फिर भी बड़ी बहस के बाद हमने तय कर लिया कि इस वक़्त अपने स्वाभिमान को पी जाना चाहिए और कांफ्रेंस को स्थगित कर देना चाहिए। हमने यह फ़ैसला इसलिए किया कि हम गांधीजी के आने तक लड़ाई को, जो शुरू तो हो ही चुकी थी, किसी भी हालत में ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहते थे। हम उन्हें ऐसी परिस्थिति के अंदर नहीं डाल देना चाहते थे, जिसमें वह बागडोर अपने हाथ में न ले सकें। हमारे प्रान्तीय कांफ्रेंस को स्थगित कर देने पर भी इटावा में पुलिस और फौज का खूब प्रदर्शन किया गया, कुछ, भूले-भटके प्रतिनिधि, जो वहां पहुंच गए थे, गिरफ्तार कर लिये गए और वहां लगी स्वदेशी प्रदर्शनी पर फौज ने कब्जा कर लिया।

शेरवानी ने और मैंने २६ दिसम्बर की सुबह को इलाहाबाद से बम्बई रवाना होना तय किया। शेरवानी को कार्य-समिति की मीटिंग मे यू० पी० की स्थिति पर विचार करने के लिए ख़ास तौर पर बुलावा दिया गया था। हम दोनों को ही आर्डिनेन्स के मुताबिक यह हुक्म मिल चुके थे कि हम इलाहाबाद शहर न छोडे। कहा गया था कि आर्डिनेन्स यू० पी० के इलाहाबाद और दूसरे जिलो मे लगानबन्दी की हलचलो के खिलाफ जारी किया गया है। यह समझना तो सरल था ही कि सरकार को हमारा इन देहाती हिस्सो मे जाना बन्द करना ही चाहिए। मगर यह भी साफ था कि हम बम्बई शहर मे जाकर किसानो का आन्दोलन नही चला सकते थे और अगर वास्तव मे आर्डिनेन्स किसानो की परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए ही जारी किया गया था तो हमारे प्रान्त से दूर चले जाने का तो स्वागत ही किया जाना चाहिए था। आर्डिनेन्स के जारी हो जाने के समय से हमारी आम नीति उससे बचते रहने की ही रही और हम सघर्ष को टालते ही रहे, हांलाकि बाज-बाज लोगो ने हुक्म-उदूली कर दी थी। जहां तक यू० पी० काग्रेस का सम्बन्ध था, यह बात साफ थी कि वह,कम-से-कम फिलहाल सरकार से लड़ाई करने से बचना या उसे टालना ही चाहती थी। शेरवानी और मै बम्बई जा रहे थे, जहा कि गाधीजी और कार्य-समिति इन मामलो पर गौर करती और यह किसी को मालूम नही था, और मुझे तो बिलकुल ही निश्चय नहीं था कि उनके आखिरी फैसले क्या होते!

इन सब विचारों से मुझे खयाल होता था कि हमे बम्बई जाने दिया जायगा, और कम-से-कम उस समय के लिए ही सही, हमारी शहर की नजरबन्दी के कानूनी आज्ञा-भंग को सरकार सह लेगी। लेकिन मेरा दिल कुछ और ही कह रहा था।

ज्योंही हम रेल मे बैठे, हमने सवेरे के अखबारों मे नए सीमा-प्रान्तीय आर्डिनेन्स और अब्दुलगफ़्फार खां तथा डाक्टर खान-

साहब की गिरफ़्तारी का हाल पढा । बहुत जल्दी ही हमारी बम्बई-मेल, रास्ते के एक छोटे से स्टेशन इरादतगंज पर, जहां आमतौर पर वह नही ठहरा करती थी, अचानक ठहर गई और हमे गिरफ्तार करने के लिए पुलिस अफसर आ गए। रेलवे लाइन के पास ही एक 'ब्लैक मैरिया' (जेल की मोटर) खड़ी थी, और कैदियो की इस लारी मे मै और शेरवानी दाखिल हुए। वह तेजी से चली और हम नैनी-जेल मे जा पहुचे। वह 'बाक्सिग दिवस' का प्रात काल था और वह पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट—जो हमे गिरफ्तार करने आया था, अग्रेज था—दु खी और उदास दिखाई दिया। मुझे दु ख है कि हमने उसका क्रिसमस त्यौहार बिगाड़ दिया था।

और इस तरह हम जेल मे आ पहुंचे—

'एक घडी भर तू सारा आह्लाद भुला दे,
और, वेदना मे ही अब कुछ काल बिता दे ।'[1]

: ३५ :

गिरफ्तारियां, आर्डिनेंस और ज़ब्तियां

हमारी गिरफ्तारी के दो दिन बाद ही गाधीजी बबई मे उतरे और तभी उन्हे यहां की नई और ताज़ी घटनाओं का हाल मालूम हुआ। उन्होने लन्दन मे ही बगाल-आर्डिनेस की खबर सुन ली थी और वह उससे बहुत दुखी हुए थे। अब उन्हे मालूम हुआ कि उनके लिए यू० पी० और सीमा-प्रान्तीय आर्डिनेसो के रूप मे बड़े दिन की भेट तैयार थी और सीमाप्रान्त और यू० पी० मे उनके कुछ सबसे घनिष्ठ साथी गिरफ्तार हो चुके थे। अब तो पासा पड चुका दीखता था और शान्ति की सारी आशा मिट चुकी थी, फिर भी उन्होने रास्ता ढूंढने की कोशिश की और इसके लिए वाइसराय

---

[1] शेक्सपियर के अंग्रेजी पद्य का भावानुवाद ।

लार्ड विलिग्डन से मुलाकात चाही। उन्हे नई दिल्ली से बताया गया कि मुलाकात कुछ खास शर्तो पर ही हो सकेगी। वे शर्ते ये थी कि वह बंगाल, युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त की ताजी घटनाओ और नए आर्डिनेसो और उनके मुताबिक हुई गिरफ्तारियो के बारे मे बातचीत न करे (यह बात मैं अपनी याद से लिख रहा हूँ, क्योकि मेरे सामने वाइसराय के जवाब की नकल नही है)। यह समझ म नही आता कि सरकार इन विषयो के अलावा, जो कि देश मे खलबली मचा रहे थे और जिनपर बात करने का निषेध कर दिया था, और किन विषयो पर गाधीजी या काग्रेस के अन्य किसी नेता से बातचीत करने की आशा करती थी। अब यह बिलकुल साफ प्रकट हो गया कि भारत सरकार ने काग्रेस को कुचल डालने का निश्चय कर लिया है और वह उससे कोई नाता नही रखना चाहती। कार्य-समिति के पास सविनय-आज्ञा-भग फिर चालू कर देने के सिवा और कोई रास्ता न रहा। कार्य-समितिवालो को किसी भी समय अपने गिरफ्तार हो जाने की आशका हो गई थी और बरबस विदा होने के पहले वे देश का आगे के लिए मार्ग-प्रदर्शन कर देना चाहते थे, इसी दृष्टि से अस्थायी तौर पर सविनय-भग का प्रस्ताव पास किया गया और गाधीजी ने वाइसराय से मुलाकात करने की दुबारा कोशिश की। उन्होने वाइसराय को बिना शर्त के मुलाकात देने के लिए तार दिया। सरकार का जवाब गाधीजी और काग्रेस के सभापति सरदार पटेल की गिरफ्तारी के रूप मे मिला और साथ ही वह बटन भी दबा दिया गया, जिससे सारे देश मे भयकर दमन का दौर शुरू हो गया। यह तो स्पष्ट ही था कि चाहे दूसरा कोई लडाई चाहता हो या न चाहता हो; लेकिन सरकार तो लडाई के लिए बेचैन थी और पहले से ही जरूरत से ज्यादा तैयार बैठी थी।

४ जनवरी सन १९३२ एक महत्त्वपूर्ण दिन था। उसने बातचीत और बहस का अन्त कर दिया। उस दिन सवेरे ही गाधीजी

और कांग्रेस के अध्यक्ष वल्लभभाई गिरफ्तार कर लिये गए और विना मुकदमा चलाये, राजवन्दी वना लिये गए। चार नए आर्डिनेंस जारी कर दिये गए, जिनके द्वारा मैजिस्ट्रेटों और पुलिस-अफसरों को व्यापक-से-व्यापक अधिकार मिल गए। नागरिक स्वतन्त्रता की हस्ती मिट गई और जन और धन दोनो पर ही अधिकारी चाहे जब कब्जा कर सकते थे। सारे देश पर मानो घेरा डाल लेने की हालत की घोषणा कर दी गई और इसको किस-किस पर और कितना-कितना लागू किया जाय, यह स्थानीय अफसरों की मर्जी पर छोड दिया गया।[1]

४ जनवरी को ही नैनी जेल मे यू० पी० इमर्जेंसी पावर्स आर्डिनेंस के मुताविक हमारा मुकदमा हुआ। शेरवानी को छः महीने की सख्त कैद और १५० रुपये जुर्माना की सजा हुई, मुझे दो साल की सख्त कैद और ५०० रुपये जुर्माने (या वदले मे छ महीने की कैद और) की सजा दी गई। दोनो के अपराध विलकुल एक-से थे। हम दोनो को इलाहावाद शहर मे नजरवन्दी के एक-से हुक्म दिये गये थे। हम दोनो ने ही वम्वई जाने की कोशिश करके उनका एक ही तरह से भग किया था। हम दोनो को एक ही धारा मे गिरफ्तार किया गया और दोनो का एक साथ ही मुकदमा चला। फिर भी हमारी सजाओ मे वडा अन्तर था। सज़ा सुनाने के वाद ही शेरवानी ने मैजिस्ट्रेट से पूछा कि मुसल्मान होने के ख़याल से तो मुझे कम सजा नही दी गई है? उनके इस सवाल से वहा उपस्थित लोगो को वड़ी हसी आई और मैजिस्ट्रेट कुछ परेशानी मे पड़ गया।

उस स्मरणीय दिन, ४ जनवरी को, देश-भर मे वहुत-सी घट-

[1]भारत-मंत्री सर सैम्युअल होर ने २४ मार्च १९३२ को कामन-सभा में कहा था कि, "मैं मंजूर करता हूं कि जिन आर्डिनेंसो का हमने समर्थन कर दिया है वे बड़े व्यापक और सख्त हैं; वे हिन्दुस्तान के जीवन की लगभग हरेक प्रवृत्ति पर असर डालते हैं।"

नाए हुईं। इलाहाबाद शहर मे हमारे स्थान के पास ही, बडी-बडी भीडो की पुलिस और फौज से मुठभेड़ हो गई और सदा की भाति लाठी-प्रहार हुए, जिसमे कुछ लोग मरे और कुछ घायल हुए। सविनय आज्ञा-भग के कैदियो से जेले भरने लगी। पहले तो ये कैदी जिला-जेलो मे भेजे जाते और जब वहां जगह न रहती तभी नैनी आदि सेण्ट्रल जेलो मे आते थे। बाद मे सभी जेले भर गई और बड़ी-बडी अस्थाई कैम्प-जेले कायम करनी पड़ी।

काग्रेस, जिसमे सबसे ऊपर कार्य-समिति और फिर प्रान्तीय कमेटियां और अनगिनती स्थानिक कमेटिया शामिल थी, गैर-कानूनी घोषित कर दी गई थी। काग्रेस के साथ-साथ सब तरह से सम्बन्धित या सहानुभूति रखनेवाले या गतिशील सगठन—जैसे, किसान-सभाए, किसान-सघ, युवक-सघ, विद्यार्थी-मण्डल, गतिशील राजनैतिक सगठन, राष्ट्रीय विश्वविद्यालय और स्कूल, अस्पताल, स्वदेशी दुकाने, पुस्तकालय आदि भी—गैर-कानूनी करार दे दिये गए। इनकी सूचिया बडी लम्बी-लम्बी थी, प्रत्येक बडे प्रान्त के सैकडो नाम इनमे शामिल थे, सारे हिन्दुस्तान का जोड़ कई हजार तक पहुच गया होगा। इन गैर-कानूनी-घोषित सस्थाओ की यह सख्या ही मानो काग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन का महत्त्व और प्रभाव दिखाती थी।

बम्बई मे कमला रोग-शय्या पर पडी थी और आन्दोलन मे हिस्सा न ले सकने के कारण छटपटा रही थी। मेरी मा और दोनो बहने बडे उत्साह के साथ आन्दोलन मे कूद पड़ी। उनको जल्दी ही एक-एक साल की सजा मिल गई और वे जेल पहुच गई। नए आनेवालो के जरिये या हमे मिलनेवाले स्थानीय साप्ताहिक पत्र द्वारा हमे कुछ अनोखी खबरे मिल जाया करती थी। जो कुछ हो रहा था उसकी हम ज्यादातर कल्पना कर लिया करते थे, क्योकि सेसर की बडी सख्ती थी और समाचार-पत्रो और समाचार एजे-

सियो को भारी-भारी जुर्मानो का डर हमेशा बना रहता था। कुछ प्रान्तों मे तो गिरफ्तारशुदा या सजा पाये हुए व्यक्ति का नाम छापना भी जुर्म था।

: ३६ :

बरेली और देहरादून-जेलों में

छ हफ्ते-नैनी जेल मे रहने के बाद मेरा तबादला बरेली जिला-जेल मे कर दिया गया। मेरी तन्दुरुस्ती फिर गडबड रहने लगी। मुझे रोज बुखार हो आता था,जो मुझे बहुत नागवार मालूम होता था। चार महीने बरेली-जेल मे बिताने के बाद जब गरमी बहुत सख्त हुई तब फिर मेरा तबादला कर दिया गया, लेकिन इस मर्तबा मुझे बरेली की अपेक्षा एक ठडी जगह, हिमालय की छाया मे देहरादून-जेल मे भेजा गया। मै वहा लगातार कोई साढे चौदह महीने, लगभग अपनी दो साल की सजा के अखीर तक रहा। इस बीच मेरा तबादला किसी और दूसरी जगह नही हुआ। इसमें कोई शक नही कि जो लोग मुझसे मिलने आते थे उनसे और खतो तथा उन गिने-चुने अखबारो के जरिये, जो मुझे पढने को दिये जाते थे, मेरे पास खबरे पहुच जाती थी, फिर भी बाहर जो कुछ हो रहा था उससे ज्यादातर मै अपरिचित ही रहा और खास-खास घटनाओ के बारे मे मेरी धारणा बहुत धुधली थी।

इसके बाद जब मै छूटा तब अपने निजी कामो मे और उस समय जो राजनैतिक परिस्थिति थी उसे ठीक करने मे लगा रहा। कोई पाच महीने से कुछ ज्यादा की आजादी के बाद मै फिर जेल मे बन्द कर दिया गया और अबतक यही हू। इस तरह पिछले तीन सालो मे मै ज्यादातर जेल मे ही—और इसीलिए घटनाओं से बिल्कुल दूर,अलग—रहा हू। इस बीच में जो-कुछ हुआ, उन सबका ब्योरेवार परिचय प्राप्त करने का मुझे बहुत ही कम,

नही के बराबर, मौका मिला है।

हममे से दो का, मेरा और गोविन्दवल्लभ पन्त का, तबादला बरेली-जेल से देहरादून को साथ-साथ किया गया। कोई प्रदर्शन न होने पावे, इस बात का ध्यान रखने के लिए हम लोगो को बरेली मे गाडी पर नही बिठाया गया, बल्कि वहा से ५० मील की दूरी पर एक छोटे-से स्टेशन पर ले जाकर वहा गाडी मे बिठाया गया। हम लोग रात को चुपचाप मोटर मे ले जाये गए। कई महीने तक अलग जेल मे बन्द रहने के बाद रात की उस ठडी हवा मे मोटर के सफर से हमे अनोखा आनन्द आया।

बरेली-जेल से जाने के पहले एक छोटी-सी घटना हुई, जिसने उस वक्त तो मेरे हृदय पर असर डाला ही था, लेकिन अबतक भी वह मेरी याद मे तरोताजा है। बरेली-पुलिस का सुपरिण्टेण्डेण्ट जो कि एक अग्रेज था, वहा मौजूद था और ज्योही मै कार मे बैठा त्योही उसने कुछ-कुछ सकुचाते हुए मुझे एक पैकेट दिया जिसमे, उसने मुझे बताया कि, वे जर्मनी के पुराने सचित्र मासिक पत्रों की कापिया थी। उसने कहा कि मैने सुना है कि आप जर्मन सीख रहे है, इसलिए मै कुछ मासिक पत्र आपके लिए ले आया हू। इससे पहले मेरी उसकी मुलाकात कभी नही हुई थी और न उस दिन के बाद मै आजतक उससे कभी मिला। मै उसका नाम भी नही जानता, लेकिन मेरे दिल पर उसके स्वेच्छा-प्रेरित सौजन्य का और उस कृपा-भाव का, जिसने उसे इसकी प्रेरणा की, बहुत असर पडा और अपने मन मे मै उसके प्रति बहुत ही कृतज्ञ हुआ।

व्यक्तिगत रूप से तो मै बडा सौभाग्यशाली रहा हू और लगभग हमेशा ही मेरे प्रति सब लोग सौजन्य दिखाते रहे है, फिर चाहे वे अग्रेज हो या मेरे अपने ही देश-भाई। मेरे जेलरो और पुलिस के उन सिपाहियो ने भी, जिन्होने मुझे गिरफ्तार किया या जो मुझे कैदी के रूप मे एक जगह से दूसरी जगह ले गये, मेरे साथ मेहरबानी का बर्ताव किया और इस इन्सानियत की वजह से मेरे

जेल-जीवन के संघर्ष की कटुता और तीव्रता वहुत कुछ कम हो गई थी। यह कोई अचरज की वात नही है कि मेरे देश-भाइयो ने मेरे साथ अच्छा बर्ताव किया; क्योकि उनमे तो एक हद तक मेरा नाम हो गया था और मै उनमे लोकप्रिय था। पर अग्रेजो के लिए भी मै एक व्यक्ति था, भीड़ मे से एक इकाई नही। मेरा खयाल है कि इस वात ने कि मैने अपनी शिक्षा इग्लैण्ड मे पाई और खासतौर पर इस बात ने कि मै इग्लैण्ड के एक पब्लिक स्कूल मे रहा, मुझे उनके नजदीक ला दिया और इन कारणो से वे मुझे कम-बढ़ अपने ही नमूने का सभ्य आदमी समझे बिना नही रह सकते थे, फिर चाहे उन्हे मेरे सार्वजनिक काम कैसे ही उलटे क्यों न मालूम पड़े। जब मै अपने इस वर्ताव की तुलना उस जिन्दगी से करता हू जो मेरे ज्यादातर साथियों को भोगनी पडती थी, तब मुझे अपने साथ होनेवाले इस विशेष अच्छे वर्ताव पर कुछ शर्म और जिल्लत-सी मालूम होती है।

ये जितने सुभीते मुझे मिले हुए थे उन सबके होते हुए भी जेल तो आखिर जेल ही थी और कभी-कभी तो उसका दुखद वातावरण प्राय. असह्य हो उठता था। उसका वातावरण खुद हिसा, कमीनेपन, रिश्वतखोरी और झूठ से भरा हुआ था। वहा कोई गालियां देता था तो कोई गिडगिडाता था। नाजुक मिजाज-वाले हर शख्स को वहा लगातार मानसिक सन्ताप मे रहना पडता था, कभी-कभी जरा-जरा-सी बातो से ही लोग उखड़ जाते। चिट्ठी मे कोई खराब खबर आ जाती या अखबार मे ही कोई वुरी खबर निकलती तो हम लोग कुछ देर के लिए गुस्से या फिक्र से वडे परेशान हो जाते थे। वाहर तो हम लोग हमेशा काम में लगकर अपने दुखों को भूल जाते थे। वहां तो तरह-तरह की दिलचस्प बातों और कामों की वजह से शरीर और मन का साम्य बना रहता था। जेल मे ऐसा कोई रास्ता नही था। हम लोग ऐसा महसूस करते थे मानो हम बोतल मे बन्द कर दिये गए हो

और दबाकर रख दिये गए हो और इसलिए जो कुछ होता उसकी बाबत लाजिमी तौर पर हमारी राय एकागी और कुछ हद तक तोडी-मरोड़ी हुई होती थी। जेल मे बीमारी खासतौर से दु ख-दाई होती है।

फिर भी मैंने अपने को जेल-जीवन की दिनचर्य्या का आदी बना लिया और शारीरिक कसरत तथा कड़ा मानसिक काम करके मैंने अपने को ठीक-ठीक रक्खा। काम और कसरत की बाहर कुछ भी कीमत हो, जेल मे तो वे लाजिमी थे, क्योकि उनके बिना वहां कोई अपने मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को कायम नही रख सकता। मैने अपना एक कार्यक्रम बना लिया था, जिसका मै कडाई के साथ पालन करता था। मिसाल के लिए, अपने को बिलकुल ठीक रखने के लिये, मै रोज हजामत बनाता था। (हजामत के लिए मुझे सेफ्टी रेजर मिला हुआ था) मैंने इस छोटी-सी बात का जिक्र इसलिए किया है कि आमतौर पर लोगो ने इन आदतो को छोड़ दिया और वे कई बातो मे ढीले पड़ गए थे। दिनभर कडा काम करने के बाद शाम को मै खूब थक जाता और मजे से नीद का स्वागत करता।

इस तरह दिन-पर-दिन, हफ्ते-पर-हफ्ते और महीने-पर-महीने निकल गये। कभी-कभी ऐसा मालूम पडता था कि महीना बुरी तरह चिपक गया है और वह खत्म ही नही होना चाहता। और कभी-कभी तो मै हर चीज और हर शख्स से ऊब जाता, सबपर गुस्सा करता, सबसे खीझ उठता, फिर वे चाहे जेल मे मेरे साथी हो और चाहे जेल के कर्मचारी। ऐसे वक्त पर मै बाहर के लोगो पर भी इसलिए खीझ उठता था कि उन्होने यह काम क्यो किया या यह काम क्यो नही किया। ब्रिटिश-सल्तनत से तो हमेशा ही खीझा रहता था। लेकिन ऐसे वक्त पर औरो के साथ-साथ और सबसे ज्यादा, मै अपने ऊपर भी खीझ उठता था। इन दिनो मैं बहुत चिड़चिडा भी हो जाता और जेल की जिन्दगी मे होनेवाली

जरा-जरा-सी बातो पर बिगड़ उठता था। खुशकिस्मती यह थी कि मेरा मिजाज ज्यादा दिनो तक ऐसा नही रहता था।

जेल मे मुलाकात का दिन बड़े उल्लास का दिन होता था। हम लोग मुलाकात के दिनो के लिए कैसे तरसते थे, उनके लिए कैसी प्रतीक्षा करते थे तथा दिन गिना करते थे! लेकिन मुलाकात की खुशी के बाद उसकी लाजिमी प्रतिक्रिया भी होती और फिर सूनेपन और अकेलेपन का राज हो जाता। अगर, जैसा कि कभी-कभी होता था, मुलाकात कामयाव नही हुई, इसलिए कि मुझे कोई ऐसी खवर मिली जिससे मै विगड गया या और कोई अन्य ऐसी ही वात हुई, तो बाद को बहुत ही दु खी हो जाता था। मुलाकात के वक्त जेल के कर्मचारी तो मौजूद रहते ही थे लेकिन वरेली मे तो दो या तीन मर्तवा उनके साथ-साथ सी० आई० डी० का आदमी भी हाथ मे कागज और पेन्सिल लिये मौजूद रहा, जो हमारी वातचीत के करीव-करीव हरेक हर्फ को वड़े उत्साह से लिख रहा था। इस वात से मुझे वहुत ही चिढ होती थी और ऐसी मुलाकाते विलकुल वेकार जाती।

इलाहावाद-जेल मे मुलाकात करते हुए और उसके वाद सरकार की तरफ से मेरी मा और पत्नी के साथ जो दुर्व्यवहार हुआ था उसकी वजह से मैने मुलाकाते करना वन्द कर दिया था। करीव-करीव सात महीने तक मैने किसीसे मुलाकात नही की। मेरे लिए यह वक्त वहुत ही मनहूस रहा और जव इस वक्त के वाद मैने यह तय किया कि मुझे मुलाकात करना शुरू कर देना चाहिए और उसके फलस्वरूप जव लोग मुझमे मिलने आये तव मै आनन्द से झूमने लगा था। मेरी वहन के छोटे-छोटे वच्चे भी मुझसे मिलने को आये थे। उनमे से एक छोटे-से वच्चे को मेरे कन्धों पर चढने की आदत थी। यहा भी जव उसने मेरे कन्धे पर चढ़ना चाहा तो मेरे भावों का वांध टूट गया। मानवी समर्ग के लिए एक लम्बी चाह के वाद गृह-जीवन के इस स्पर्श ने मै अपने को सम्हाल न सका।

जब मैंने मुलाकात करना बन्द कर दिया था तब घर से या दूसरी जेलो से आनेवाले खत (क्योंकि मेरी दोनो बहने जेल मे थी) जो हमे हर पन्द्रहवे दिन मिलते थे और भी कीमती हो गये, और मै उनकी बाट बडी उत्सुकता से देखा करता था। निश्चित तारीख को कोई खत न आता तो मुझे बडी चिंता हो जाती। लेकिन साथ ही जब खत आते तब मुझे उन्हे खोलते हुए डर-सा लगता था। मै उनके साथ उसी तरह खिलवाड करता जिस तरह कोई इत्मीनान के साथ आनन्द की चीज से करता है। साथ ही मेरे मन मे कुछ-कुछ यह डर भी रहता था कि कही खत मे कोई ऐसी ख़बर या बात न हो कि मुझे दु ख हो। जेल मे खतो का आना या जेल मे खत लिखना दोनो ही वहा के शान्तिमय और स्थिर जीवन मे बाधा डालते थे। वे मन मे भावो को जगाकर बेचैनी पैदा करते थे और उसके बाद एक या दो दिन तक मन अस्तव्यस्त होकर भटकने लग जाता और उसे रोजमर्रा के काम मे जुटाना मुश्किल हो जाता था।

नैनी और बरेली-जेल मे तो मेरे बहुत-से साथी थे। देहरादून मे शुरू-शुरू मे हम सिर्फ तीन ही थे। मै, गोविन्दवल्लभ पन्त और काशीपुर के कुवर आनन्दसिह। लेकिन पन्तजी तो कोई दो महीने बाद छोड दिये गये, क्योकि उनकी छ महीने की सजा ख़त्म हो गई थी। इसके बाद हमारे दो और साथी हमसे आ मिले थे। लेकिन जनवरी १९३३ के शुरू मे मेरे सब साथी चले गये और मै अकेला ही रह गया। अगस्त के अख़ीर मे जेल से छूटने तक, क़रीब-करीब आठ महीने तक, देहरादून-जेल मे मै बिलकुल अकेला रहा था। हर रोज कुछ मिनट तक किसी जेल-कर्मचारी के अलावा कोई ऐसा न था, जिससे मै बातचीत भी कर सकता। क़ानून के अनुसार तो यह एकान्त सजा न थी, लेकिन उससे मिलती-जुलती ही थी। इसलिए ये बड़ी मनहूसी के दिन रहे। सौभाग्य से इन दिनो मैने मुलाकात करना शुरू कर दिया था।

उनसे मेरा दु.ख कुछ हल्का हो गया था। मेरा खयाल है कि मेरे साथ यह खास रिआयत की गई थी कि मुझे बाहर से भेजे हुए ताजे फूल लेने की और कुछ फोटो रखने की इजाजत थी। इन बातों से मुझे काफी तसल्ली मिलती थी। मामूली तौर पर कैदियों को फूल या फोटो रखने की इजाजत नही है। कई मौको पर मुझे वे फूल नही दिये गए,जो बाहर से मेरे लिए लाये गए थे। अपनी कोठरियो को खुशनुमा बनाने की हमारी कोशिशे रोकी जाती थी। मुझे याद है कि मेरे एक साथी ने, जो मेरे पडोस की कोठरी मे रहता था, अपने शीशे, कघे वगैरा चीजो को जिस तरह सजाकर रक्खा था उसपर जेल के सुपरिण्टेण्डेण्ट ने ऐतराज किया था। उनसे कहा गया कि वह अपनी कोठरी को आकर्षक और 'विलासितापूर्ण' नही बना सकते। और वे विलासिता की चीजे क्या थी?—दातों का एक ब्रश, दातो का एक पेस्ट, फाउं-टेनपेन की स्याही, सिर मे लगाने के तेल की शीशी, एक ब्रश और कघी, शायद एक या दो छोटी-छोटी चीजे और।

जेल मे हम लोग जिन्दगी की छोटी-छोटी चीजो की कीमत समझने लगे थे। वहा हमारा सामान इतना कम होता था और उसे हम न तो आसानी से बढा ही सकते थे न उसकी जगह दूसरी चीजे ही मगा सकते थे, इसलिए हम उसे बड़ी होशियारी से रखते थे और ऐसी इक्की-दुक्की छोटी-छोटी चीजो को बटोर कर रखते थे जिन्हे जेल से बाहर की दुनिया मे हम रद्दी की टोकरी मे फेका करते थे। इस प्रकार जब हमारे पास सम्पत्ति के नाम पर रखने की कोई चीज नही होती तब भी तो सम्पत्ति जोड़ने की भावना हमारा पीछा नही छोडती!

कभी-कभी जिन्दगी की कोमल वस्तुओ के लिए शरीर अकुला उठता, शारीरिक सुख-भोग, आनन्दप्रद वातावरण, मित्रो के साथ दिलचस्प बातचीत और बच्चो के साथ खेलने की इच्छा जोर पकड़ उठती थी। किसी अखबार मे किसी तस्वीर

या फोटो को देखकर पुराना जमाना सामने आ खडा होता—उन दिनो की बाते सामने आ जाती जब जवानी मे किसी वात की फिकर न थी। ऐसे वक्त पर घर की याद की बीमारी बुरी तरह जकड़ लेती और वह दिन बड़ी बेचैनी के साथ कटता।

मै हर रोज थोडा-बहुत सूत काता करता था, क्योकि मुझे हाथ का कुछ काम करने से तसल्ली मिलने के साथ-साथ वहुत ज्यादा दिमागी काम से कुछ छुट्टी भी मिल जाती थी; लेकिन मेरा खास काम लिखना और पढना ही था। मै जिन-जिन किताबो को पढना चाहता था वे सब तो मुझे मिल नही पाती थी, क्योकि उनपर रोक थी और वे सेसर होती थी। किताबो को सेसर करनेवाले लोग हमेशा अपने काम के योग्य नही होते थे। स्पैगलर की Decline of the West (पश्चिम का पतन) नामक किताब इसलिए रोक ली गई थी कि उसका नाम खतरनाक और राजद्रोहात्मक मालूम हुआ था। लेकिन मुझे इस सम्बन्ध की किसी प्रकार की शिकायत नही करनी चाहिए,क्योकि कुल मिलाकर मुझे तो सभी किस्म की किताबे मिल जाती थी। ऐसा मालूम पडता है कि इस मामले मे भी मेरे साथ खास रिआयत होती थी, क्योकि मेरे वहुत से साथियों को, जो 'ए' क्लास मे रखे गये थे, सामयिक विषयो पर किताबे मागने मे वडी मुश्किलो का सामना करना पडता था।

मै अपनी किताबो मे ही जुटा रहा। कभी एक प्रकार की किताबे पढता तो कभी दूसरे किस्म की। लेकिन आमतौर पर मै ठोस विपय की किताबे पढता था। उपन्यास पढने से दिमाग मे एक ढीलापन-सा मालूम होने लगता है। इसलिए मैने ज्यादातर उपन्यास नही पढे। जव-कभी पढते-पढते मेरा जी ऊव उठता तव मै लिखने वैठ जाता। अपनी सजा के दो सालो मे तो मै उस 'ऐतिहासिक पत्रमाला'[1] मे लगा रहा जो मैने अपनी पुत्री (इन्दिरा)

---

[1] हिन्दी में यह 'विश्व-इतिहास की झलक' के नाम से 'सस्ता साहित्य मण्डल' से प्रकाशित हो चुकी है। —संपादक

के नाम लिखी। उन्होंने मुझे अपने दिमाग को ठीक-ठीक रखने मे बहुत मदद दी। कुछ हद तक तो मै उस पुराने जमाने मे रहने लगा, जिसकी बाबत मै लिख रहा था और इसलिए इन दिनो क़रीब-क़रीब यह भूल-सा गया कि मै जेल के भीतर रह रहा हू।

यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकों का मै हमेशा स्वागत करता था, खासतौर पर पुराने यात्रियो के यात्रा-वर्णन का—जैसे ह्यू एन-त्साग, मार्कोपोलो और इब्नबतूता वगैरा। आजकल के यात्रियों की यात्राओं का वर्णन भी अच्छा मालूम होता था—जैसे स्वेन हेडन ने मध्य-एशिया के जगलो मे जो सफर किया उसका और रोरिक को तिब्बत मे जो अजीब बाते मिली उनका वर्णन। चित्रो की पुस्तके भी—खासकर पहाड़ों, हिम-प्रपातों और मरुस्थलों की तस्वीरे—अच्छी लगती थी, क्योकि जेल मे विशाल मैदानो और समुद्र और पहाड़ो को देखने की चाह वढ जाती है। मेरे पास माउण्ट ब्लेक, आल्प्स पर्वत और हिमालय की कुछ सुन्दर चित्रोंवाली पुस्तके थी और अक्सर मै उन्हें देखा करता था। जब मेरी कोठरी या बैरक की गरमी एक सौ पन्द्रह डिग्री या उससे भी ज्यादा होती थी, तब मै हिम-प्रपातो को एकटक होकर देखता। एटलस को देखकर तो बडा जोश पैदा होता था। उसे देखकर सब तरह की पुरानी बातो की याद आ जाती थी—उन जगहो की याद जहा हम हो आये है और उन जगहो की भी जहा हम जाना चाहते थे। और कभी-कभी मन मे यह उत्कण्ठा पैदा होती कि पिछले दिनो जिन जगहो को हम देख आये है उन्हे फिर देखे। एटलस मे बड़े-बडे शहरो को बतानेवाले जितने निशान है वे ऐसे लगते मानो हमको बुला रहे हो और हमे वहां जाने की स्वाभाविक इच्छा होती थी। एटलस मे पहाडो को और समुद्र के नीले रग को देखकर भी उनपर चढने और उन्हे पार करने की इच्छा होती। दुनिया के सौन्दर्य को देखने की, परिवर्तनशील मनुष्यजाति के सघर्षो और सग्रामो को देखने की और खुद भी

इन सब कामों को करने की उमगे हमको तग करती और हमारा पल्ला पकड लेती और हम बडे दु.ख के साथ झटपट एटलस को उठाकर रख देते और अच्छी तरह जानी-पहचानी हुई उन दीवारो को देखने लग जाते, जो हमे घेरे हुए थी और रोजमर्रा के नीरस ढर्रे मे जुट जाते।

: ३७ :

जेल में जीव-जन्तु

कोई साढे चौदह महीने तक मै देहरादून-जेल की अपनी छोटी-सी कोठरी मे रहा और मुझे ऐसा लगने लगा जैसे मै उसी-का एक हिस्सा हूं। उसके प्रत्येक अश से मै परिचित हो गया। उसकी सफेद दीवारो और खुरदरी फर्श पर हरेक निशान गड्ढे और उसके शहतीरो पर लगे घुन के छेदो तक से मै परिचित हो गया था। बाहर के छोटे-से आगन मे उगे घास के छोटे-छोटे गुच्छे और पत्थर के टेढे-मेढे टुकड़े मेरे पुराने दोस्त से लगते थे। मै अपनी कोठरी मे अकेला था सो बात नही। क्योकि वहा कितने ही ततैयो और बर्रों के छत्ते थे और कितनी ही छिपकलियो ने शहतीरो के पीछे अपना घर बना लिया था, जो शाम को अपने शिकार की तलाश मे बाहर निकला करती थी। यदि विचार और भावनाएं भौतिक चीजो पर अपने चिह्न छोड सकती है तो इस कोठरी की हवा का एक-एक कण उनसे जरूर भरा हुआ था और उस संकरी जगह मे जो-जो भी चीजे थी उन सब पर वे अकित हुए बिना न रहे होगे।

कोठरिया तो मुझे दूसरे जेलों मे इससे अच्छी मिली थी, मगर देहरादून मे मुझे एक विशेष लाभ मिला था, जो मेरे लिए बेशकीमत था। असली जेल एक बहुत छोटी जगह थी और हम जेल की दीवारो के बाहर एक पुरानी हवालात मे रखे गये थे;

लेकिन थी यह अहाते मे ही। यह इतनी छोटी थी कि उसमे आस-पास घूमने की कोई जगह न थी और इसलिए हमको सुवह-शाम फाटक के सामने कोई सौ गज तक घूमने की छुट्टी थी। हम रहते तो थे जेल के अहाते मे ही, लेकिन उन दीवारो के वाहर आ जाने से पर्वतमालाओ, खेतो और कुछ दूर पर आम सड़क के दृश्य दिखाई पड जाते थे।

केवल एक कैदी ही, जो लम्बे अर्से तक ऊंची-ऊंची दीवारों के अन्दर कैद रहा हो, वाहर सैर करने और इन मुक्त दृश्यो के देखने के असाधारण मानसिक मूल्य को समझ सकता है। मै इस तरह वाहर घूमने का वड़ा शौक रखता था और वारिश मे भी मैने इस सिलसिले को नही छोडा था, जवकि जोर से पानी की झडी लगती थी और मुझे टखने-टखने तक पानी मे चलना पडता था। यो तो किसी भी जगह वाहर सैर करने का मैने सदा ही स्वागत किया होता, लेकिन यहा तो अपने पड़ोसी गगनचुम्वी हिमालय का मनोहर दृश्य और भी खुशी को वढानेवाला था, जिससे कि जेल की उदासी वहुत-कुछ दूर हो जाती थी। यह मेरी वहुत वडी खुशकिस्मती थी कि जव लम्वे अर्से तक मैने कोई मुलाकात नही की थी और जव कितने ही महीने तक अकेला रहा, तव मै इन प्यारे सुहावने पहाडो को एक-टक निहार सकता था। अपनी कोठरी से तो मै गिरिराज के दर्शन नही कर सकता था, मगर मेरे मन मे सदैव ही उसका ध्यान रहता था और वह हमेशा समीप ही मालूम होता था। जान पड़ता था कि मानो अन्दर-ही-अन्दर हम दोनो के वीच एक घनिष्ठता वढ़ रही थी।

यह एक असाधारण दृश्य था और साधारणतया तो मै उसकी निकटता से सदा वहुत सुख अनुभव करता था। पर्वतराज की दृढ़ता और स्थिरता मानो लाखो वर्षो के ज्ञान और अनुभव के साथ मुझे तुच्छ दृष्टि से देखती थी और मेरे मन के

तरह-तरह के उतार-चढाव की दिल्लगी उड़ाती थी और मेरे अशात मन को सान्त्वना देती थी।

देहरादून मे वसन्त-ऋतु बड़ी सुहावनी लगी और नीचे के मैदानो की बनिस्वत ज्यादा समय तक रही। जाड़े ने प्राय सब पेड़ो के पत्ते झाड़ दिये थे और वे बिलकुल नग-धडग हो गए थे। जेल के फाटक के सामने जो चार विशाल पीपल के पेड़ थे, उन्होने भी, आश्चर्य तो देखिये, अपने करीब-करीब सव पत्ते गिरा दिये थे और पत्रविहीन तथा उदास होकर खडे थे। परन्तु अब वसन्त-ऋतु आई और उसकी जीवन-दायिनी वायु ने उन्हे अनुप्राणित कर दिया, उनके एक-एक परमाणु को जीवन-सदेश दिया। क्या पीपल और क्या दूसरे पेड़ो मे, एक हलचल मच गई और उनके आसपास एक रहस्यमय वातावरण छा गया, जैसे परदे के अन्दर छिपे-छिपे कोई प्रक्रिया हो रही हो। एक दिन सहसा तमाम पेड़ो पर हरे-हरे अकुरो और कोपलो को उझक-उझक कर झाकते हुए देखकर मै चकित रह गया। वह वड़ा ही उल्लासमय और आनन्ददायी दृश्य था। फिर वड़ी तेजी के साथ उन पेडो मे लाखो पत्ते निकल आये और वे सूर्य की किरणो मे चमकने और हवा के साथ अठखेलिया करने लगे। एक अखुए से लेकर पत्ते तक का यह रूपान्तर कितना जल्दी और कितना आश्चर्यजनक होता है!

मैने इससे पहले कभी नही देखा था कि आम के कोमल पत्ते पहले सुर्खी लिये गेहुए रग के होते है, ठीक वैसे ही जैसे कश्मीर के पहाडों पर शरद ऋतु मे हलके रग की छाया छा जाती है, लकिन जल्दी ही वे अपना रग वदलकर हरे हो जाते है।

वारिश का वहां हमेशा ही स्वागत होता था, क्योकि उससे ग्रीष्मकाल की गर्मी का अन्त आ जाता था। लेकिन अच्छी चीज की भी आखिर हद होती है। वाद मे वह भी अखरने लगती है। और देहरादून को तो मानो इन्द्र देवता की प्रिय लीला-भूमि ही

समझिए। बरसात शुरू होते ही पांच हफ्तो तक ऐसी झडी लगती है कि कोई पचास-साठ इच पानी बरस जाता और उस छोटी-सी तग जगह मे खिडकियो से आती हुई बौछार से अपने को बचाते हुए सिकुड-सिकुड़ कर बैठे रहना अच्छा नही लगता था।

हा, शरदऋतु मे फिर आनन्द उमड़ने लगता है और इसी तरह शिशिर मे भी, उन दिनो को छोडकर जबकि मेह बरसता हो। एक तरफ बिजली कडक रही है, दूसरी तरफ वर्षा हो रही है और तीसरी तरफ चुभती हुई ठण्डी हवा बह रही है। ऐसी हालत मे हर आदमी को उत्कण्ठा होती है कि रहने को एक अच्छी जगह हो, जिसमे सर्दी से बचाव हो सके और जरा आराम मिले। कभी-कभी बरफ का तूफान आता और बडे-बडे ओले गिरते और वे टीन की छतों पर गिरते हुए बड़े जोर की आवाज करते, मानो दनादन तोपे छूट रही हों।

एक दिन मुझे खासतौर पर याद है। वह २४ दिसम्बर, १९३२ का दिन था। बडे जोर की बिजली कडक रही थी और दिन-भर पानी बरसता रहा। जाडा इतना सख्त कि कुछ मत पूछिये। शारीरिक कष्ट की दृष्टि से अपने सारे जेल-जीवन में मुझे बहुत कम ऐसे बुरे दिन देखने पडे है। लेकिन शाम को बादल एकाएक बिखर गए और जब मैने देखा कि पर्वत-श्रेणियों पर और पहाड़ियों पर बरफ-ही-बरफ जमी हुई है तो मेरा सारा कष्ट न जाने कहां चला गया। दूसरा दिन—बडा दिन—बडा मनोरम और स्वच्छ था और बरफ के आवरण मे पर्वतश्रेणियां बहुत ही सुन्दर दिखाई देती थी।

जब साधारण रोजमर्रा के कामो से हम रोक दिये गए तो हमारा ध्यान प्राकृतिक लीला के दर्शन की ओर ज्यादा गया। जो-जो जीवधारी या कीडे-मकोड़े हमारे सामने आते उनको हम ध्यान से देखते थे। अधिक ध्यान जाने पर मैने देखा कि मेरी कोठरी मे और बाहर के छोटे-से आंगन मे हर तरह के जीव-

जन्तु रहते है। मैने मन मे कहा कि एक ओर मुझे देखो जिसे अकेलेपन की शिकायत है और दूसरी ओर उस आगन को देखो जो खाली और सुनसान मालूम होता है, लेकिन जिसमे जीवन उमडा पडता है। ये तमाम किस्म के रेगनेवाले और उड़नेवाले जीवधारी मेरे काम मे जरा भी दखल दिये विना अपना जीवन बिताते थे, तो मुझे क्या पड़ी थी कि मै उनके जीवन मे बाधा पहुचाता? लेकिन हा, खटमलो, मच्छरो और कुछ-कुछ मक्खियों से मेरी लड़ाई वरावर रहती थी। ततैयो और बर्रो को तो मै सह लेता था। मेरी कोठरी मे वे हजारो की तादाद मे थे। हा, एक वार उनकी-मेरी झड़प हो गई थी, जबकि एक ततैये ने, शायद अनजान मे मुझे काट खाया था। मैने गुस्सा होकर उन सबको निकाल देना चाहा, कोशिश भी की, लेकिन अपने चन्दरोजा घरो को भी बचाने के लिए उन्होने खूब डटकर सामना किया। छत्तो मे शायद उनके अडे थे। आखिर को मैने अपना इरादा छोड दिया और तय किया कि अगर वे मुझे न छेडे तो मै भी उन्हे आराम से रहने दूगा। कोई एक साल तक उसके वाद मै उन वर्रो और ततैयो के वीच रहा। मगर उन्होने फिर कभी मुझपर हमला नही किया और हम दोनो एक-दूसरे का आदर करते रहे।

हा, चमगादड़ो को मै पसन्द नही करता था, लेकिन उन्हे मै मन मसोसकर वर्दाश्त करता था। वे सन्ध्या के अन्धकार मे चुपचाप उड जाते और आसमान की अधेरी नीलिमा मे उडते दिखाई पडते। वे वड़े मनहूस जीव लगते थे और मुझे उनसे नफरत और कुछ भय-सा मालूम होता था। वे मेरे चेहरे के एक इच दूरी से उड जाते और हमेशा मुझे डर लगा रहता कि कही मुझपर झपट्टा न मार दे।

मै चीटियो, दीमको और दूसरे कीडो को घटो देखता रहता था और छिपकलियों को भी। वे शाम को अपने शिकार चुपके

से पकड लेती और अपनी दुम एक अजीब हँसी आने लायक ढग से हिलाती हुई एक-दूसरे को लपेटती। मामूली तौरपर वे ततैयो को नही पकडती थी, लेकिन दो वार मैने देखा कि उन्होने निहायत होशियारी और सावधानी से मुह की तरफ से उनको चुपके से झपटकर पकड़ा। मै नही कह सकता कि उन्होने जान-बूझकर उनके डक को बचाया था या वह एक दैवयोग था।

इसके वाद, अगर कही आसपास पेड हो तो, झुण्ड-की-झुण्ड गिलहरिया होती थी, वे वहुत ढीठ और निश्शक होकर हमारे वहुत पास आ जाती। लखनऊ-जेल मे मै वहुत देर तक एक आसन वैठे-वैठे पढा करता था। कभी-कभी कोई गिलहरी मेरे पैर पर चढकर मेरे घुटने पर वैठ जाती और चारो तरफ देखती। फिर वह मेरी आखो की ओर देखती, तव समझती कि मै पेड़ या जो-कुछ उसने समझा हो वह नही हूँ। एक क्षण के लिए तो वह सहम जाती, फिर दुवककर भाग जाती। कभी-कभी गिलहरियो के वच्चे पेड के नीचे गिर पडते। उनकी मा उनके पीछे-पीछे आती, लपेटकर उनका एक गोला वनाती और उनको ले जाकर सुरक्षित जगह मे रख देती। कभी-कभी वच्चे खो जाते। मेरे एक साथी ने ऐसे तीन खोये हुए वच्चे सम्हालकर रक्खे थे। वे इतने नन्हे-नन्हे थे कि यह एक सवाल हो गया था कि उन्हे दाना कैसे दे? लेकिन यह सवाल वडी तरकीव से हल किया गया। फाउण्टेनपेन के फिलर मे जरा-सी रुई लगा दी। यह उनके लिए वढिया फीडिग वोतल, हो गई।

अल्मोड़ा की पहाड़ी जेल को छोड़कर और सव जेलो मे, जहां-जहा मै गया, कवूतर खूव मिले, और हजारो की तादाद मे वे शाम को उड़कर आकाश मे छा जाते थे। कभी-कभी जेल के कर्मचारी उनका शिकार करके उनसे अपना पेट भी भरते थे। और हां, मैनाए भी थी। वे तो सव जगह मिलती है। देहरादून मे उनके एक जोडे ने मेरी कोठरी के दरवाजे के ऊपर ही अपना घोसला

बनाया था। मै उन्हे दाना दिया करता। वे बहुत पालतू हो गई थी और जब कभी उनके सुबह या शाम के दाने मे देर हो जाती तो वे मेरे नजदीक आकर बैठ जाती और जोर-जोर से ची-ची करके खाना मागती। उनके वे इशारे और उनकी वह अधीर पुकार देखते और सुनते ही बनती थी। नैनी मे हजारो तोते थे। उनमे से बहुतेरे तो मेरी बैरक की दीवार की दरारो मे रहते थे।

देहरादून मे तरह-तरह के पक्षी थे और उनके कलरव, जोर-जोर से चिचियाने, चहचहाने और टे-टे करने से एक अजीब समा बध जाता था। और सबसे बढकर कोयल की दर्दभरी कूक का तो पूछना ही क्या? बारिश मे और उसके ठीक पहले पपीहा आता। सचमुच उसका लगातार 'पियू-पियू' रटना सुनकर दग रह जाना पडता था। चाहे दिन हो या रात, धूप हो चाहे मेंह, उसकी रटन नही टूटती थी। इनमे से बहुतेरे पक्षियों को हम देख नहीं पाते थे, सिर्फ उनकी आवाज सुनाई पड़ती थी, क्योकि हमारे छोटे-से आगन मे कोई पेड नही था। लेकिन गिद्ध और चीले वडी धज के साथ आसमान मे ऊची उडती और उन्हें मै देख सकता था। वे कभी एकदम झपट्टा मार कर नीचे उतर आती और फिर हवा के झोके के साथ ऊपर चढ जाती। कभी-कभी जगली बतख भी हमारे सिर पर मडराया करते थे।

बरेली-जेल मे बन्दरों की आबादी खासी थी। उनकी कूद-फांद, मुह बनाना आदि हरकते देखने लायक होती थी। एक घटना का असर मेरे दिल पर रह गया है। एक बन्दर का बच्चा किसी तरह हमारी बैरक के घेरे के अन्दर आ गया। वह दीवार की ऊचाई तक उछल नही सकता था। वार्डर, कुछ नम्बरदारो और दूसरे कैदियो ने मिल कर उसे पकड़ा और उसके गले मे एक छोटी-सी रस्सी बांध दी। दीवार पर से उसके (मै समझता हू) मा-बाप ने यह देखा और वे गुस्से से लाल हो गए। अचानक उनमे से एक बड़ा बन्दर नीचे कूदा और सीधा भीड़ मे उस जगह गिरा जहा

कि वह बच्चा था। निस्सदेह यह बड़ी बहादुरी का काम था, क्योंकि वार्डर वगैरा सबके पास डण्डे और लाठिया थी और वे उन्हे चारों तरफ घुमा रहे थे और उनकी सख्या भी काफी थी। लेकिन साहस की विजय हुई और मनुष्यों की यह भीड़ मारे डर के भाग निकली। उनके डण्डे और लाठिया वही पड़ी रह गई और बन्दर अपना बच्चा छुड़ा ले गया।

अक्सर ऐसे जीव-जन्तु भी दर्शन देते थे,जिनसे हम दूर रहना चाहते थे। बिच्छू हमारी कोठरियो मे बहुत आया-जाया करते थे। खासकर तब, जब बिजली जोरो से कड़का करती। ताज्जुब है कि मुझे किसी ने भी नही काटा। वे अक्सर बेढब जगह मिल जाया करते थे—मेरे बिछौने पर या कोई किताब उठाई उस-पर भी। मैंने खासतौर पर एक काले और जहरीले (बिच्छू) को कुछ दिन तक एक बोतल मे रख छोड़ा था और मक्खिया वगैरा उसको खिलाया करता था। फिर मैंने उसे एक डोरे से बाध कर दीवार पर लटका दिया। लेकिन वह किसी तरह भाग निकला। मुझे यह ख्वाहिश नही थी कि वह फिर कही घमता-फिरता मुझसे मिलने आ जाय, इसलिए मैंने अपनी कोठरी को खूब साफ किया और चारों ओर उसे ढूढ़ा, मगर कुछ पता न चला।

तीन-चार साँप भी मेरी कोठरी मे या उसके आस-पास निकले थे। एक की खबर जेल के बाहर चली गई और अखबारो मे मोटी-मोटी लाइनों मे छापी गई। मगर सच पूछिये तो मैंने उस घटना को पसन्द किया था। जेल-जीवन यो ही काफी रूखा और नीरस होता है और जब भी किसी तरह उसकी नीरसता को कोई चीज भग करती है तो वह अच्छी ही लगती है। यह बात नही कि मै सापो को अच्छा समझता हूं या उनका स्वागत करता हूं। मगर हां, औरो की तरह मुझे उनसे डर नही लगता। बेशक, उनके काटने का तो मुझे डर रहता है और यदि किसी सांप को देखूं तो उससे अपने को बचाऊं भी, लेकिन उन्हें देखकर मुझे अरुचि

नही होती और न उनसे डरकर भागता हूँ। हाँ, कनखजूरे से मुझे बहुत नफरत और डर लगता है। डर तो इतना नही मगर उसे देखकर स्वाभाविक नफरत होती है। कलकत्ते के अलीपुर-जेल मे कोई आधी रात को मै सहसा जग पडा। ऐसा जान पडा कि कोई चीज मेरे पॉव पर रेग रही है। मैने अपनी टार्च दबाई तो क्या देखा कि एक कनखजूरा बिस्तर पर है। एकाएक और बडी तेजी से बिना आगा-पीछा सोचे मैने बिस्तर से ऐसे जोर की छलॉग मारी कि कोठरी की दीवार से टकराते हुए बचा।

देहरादून मे एक नया जन्तु देखा, या यो कहूँ कि ऐसा जन्तु देखा जो मेरे लिए अपरिचित था। मै जेल के फाटक पर खडा हुआ जेलर से बातचीत कर रहा था कि इतने मे बाहर से एक आदमी आया जो एक अजीब जन्तु लिये हुए था। जेलर ने उसे बुलवाया। मैने देखा कि वह एक गोह और मगर के बीच का कोई जानवर है जो दो फुट लम्बा था। उसके पजे थे और छिलके-दार चमडी। वह भद्दा और कुडौल था और बहुत कुछ जीवित था। वह एक अजीब तरह से कुडलाकर बना हुआ था और लाने-वाला उसे एक बास मे पिरोकर बड़ी ख़ुशी से उठाता हुआ लाया था। वह उसे 'बो' कहता था।

कैदियो की, खासकर लम्बी सजावाले कैदियो की भावनाओं को जेल मे कोई भोजन नही मिलता। कभी-कभी वे जानवरो को पाल-पोसकर अपनी भावनाओ को तृप्त किया करते है। मामूली कैदी कोई जानवर नही रख सकता। नम्बरदारो को उनसे ज्यादा आजादी रहती है और जेल के कर्मचारी उनके लिए ऐतराज नही करते। आमतौर पर वे गिलहरियॉ पालते है और, सुनकर ताज्जुब होगा कि नेवले भी। कुत्ते जेल मे नही आने दिये जाते, मगर बिल्ली को, जान पडता है, उत्साहित किया जाता है। एक छोटी पूसी ने मुझसे दोस्ती कर ली थी। वह एक जेल-अफसर की थी, जब उसका तबादला हुआ तो वह उसे

अपने साथ ले गया। मुझे उसका अभाव खलता रहा। हालाँकि जेल मे कुत्तो की इजाजत नही है, लेकिन देहरादून मे इत्तिफाक से कुत्तों के साथ भी मेरा नाता हो गया था। एक जेल-अफसर एक कुतिया लाये थे। वाद को उनका तवादला हो गया और वह उसे वही छोड गये। वेचारी वे-घर की होकर इधर-उधर घूमती रही और पुलो और मोरियो मे रहती हुई वार्डरो के दिये टुकड़े खाकर अपने दिन काटती थी। वह प्राय भूखो मरती थी। मैं जेल के बाहर हवालात मे रहता था। वह मेरे पास रोटी के लिए आया करती। मैं उसे रोज खाना खिलाने लगा। उसने एक मोरी मे वच्चे दिये। कुछ तो और लोग ले गये मगर तीन वच रहे और मै उन्हे खाना देता रहा। इनमे से एक पिल्ली बीमार हो गई। बुरी तरह छटपटाती थी। उसे देखकर मुझे वड़ी तकलीफ होती थी। मैंने वडी चिन्ता के साथ उसकी शुश्रूषा की और रात को कभी-कभी तो १०-१२ वार मुझे उठकर उसको सम्हालना पडता था। वह वच गई और मुझे इस वात पर खुशी हुई कि मेरी तीमारदारी काम आ गई।

बाहर की अपेक्षा जेल मे जानवरो से मेरा ज्यादा सावका पडा। मुझे कुत्तों का वडा शौक रहा है और घर पर कुछ कुत्ते पाले भी थे, मगर दूसरे कामो मे लगे रहने की वजह से उनकी अच्छी तरह सम्हाल न कर सका। जेल मे मै उनके साथ के लिए उनका कृतज्ञ था। हिन्दुस्तानी आमतौर पर घर मे जानवर नही पालते। यह ध्यान देने लायक वात है कि जीव-दया के सिद्धान्त के अनुयाई होते हुए भी वे अक्सर उनकी अवहेलना करते हैं। यहां तक कि गाय के साथ भी, जो हिंदुओ को वहुत प्रिय और पूज्य है और जो अक्सर दगो का कारण बनती है, दया का वर्ताव नहीं होता। मानो पूजाभाव और दयाभाव दोनो का साथ नही हो सकता।

: ३८ :

गांधीजी का उपवास

हमारे शान्त और एक-ढर्रे के जेल-जीवन मे सितम्बर १९३२ के बीच मे मानो अचानक एक वज्र-सा गिरा। एक खल-बली मच गई। खबर मिली कि मि० रेम्जे मैकडानल्ड के साम्प्र-दायिक 'निर्णय' मे यहा की दलित जातियो को अलग चुनाव के अधिकार दिये जाने के विरोध मे गाधीजी ने आमरण 'अनशन' करना तय किया है। लोगो पर अचानक आघात पहुंचाने की उनमे कितनी अद्भुत क्षमता है! सहसा सभी तरह के विचार मेरे दिमाग मे उत्पन्न होने लगे, सब तरह की भावी सम्भावनाओ के चित्र मेरे सामने आने लगे और उन्होने मेरे स्थिर चित्त को बिलकुल उद्विग्न कर दिया। दो दिन तक मुझे बिलकुल अधेरा-ही-अधेरा दिखाई दिया और कोई रास्ता नही सूझा। जब मै गाधीजी के इस काम के कुछ नतीजो का खयाल करता तो मेरा दिल बैठ जाता था। उनके प्रति मेरा व्यक्तिगत प्रेम काफी प्रबल था और मुझे ऐसा लगता था कि अब शायद मै उन्हे नही देख सकूगा। इस खयाल से मुझे बहुत ही पीडा होने लगी। पिछली बार लगभग एक साल से कुछ ज्यादा हुए मैने उन्हे इग्लैड जाते समय जहाज पर देखा था। क्या वही मेरा उनका अन्तिम दर्शन रहेगा?

अगर बापू मर गये तो हिन्दुस्तान की क्या हालत हो जायगी? और उसकी राजनैतिक प्रगति का क्या होगा? मुझे भविष्य सूना और भयकर दीखने लगा और जब मै उसपर विचार करता था तो मेरे दिल मे एक निराशा-सी छा जाती थी।

इस तरह मै लगातार विचारो मे डूबता-उतराता रहा। मेरे दिमाग मे खलबली मच गई, एक ओर गुस्सा, निराशा और दूसरी ओर जिस व्यक्ति ने इतनी बड़ी उथल-पुथल पैदा कर दी

उसके प्रति प्रेम से वह सरावोर हो गया। मुझे नही सूझता था कि मै क्या करू, और सवसे ज्यादा अपने प्रति मै चिड़चिड़ा और वद-मिजाज हो गया।

और फिर मुझमे एक अजीव तव्दीली हुई। मै शुरू-शुरू मे भावनाओ के एक तूफान मे वह गया था, पर अन्त मे मुझे कुछ शान्ति मालूम हुई और भविष्य भी इतना अन्धकार-पूर्ण दिखाई नही दिया। वापू मे ऐन मौके पर ठीक काम कर डालने की अजीव सूझ है और मुमकिन है कि उनके इस काम के भी—जो मेरे दृष्टि-विन्दु से विलकुल अयोग्य ठहरता था—कोई बड़े नतीजे निकले, केवल उसी काम के छोटे-से सीमित क्षेत्र मे नही वल्कि हमारी राष्ट्रीय लड़ाई के व्यापक क्षेत्र मे भी। और अगर वापू मर भी गये तो हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई चलती रहेगी। इसलिए, कुछ भी नतीजा हो, इन्सान को हर हालत के लिए मुस्तैद और कमर कसकर रहना चाहिए। गाधीजी की मृत्यु तक को विना हिचकिचाहट के सह लेने का सकल्प करके मैने शान्ति और धीरज धारण किया और दुनिया की हर घटना का सामना करने को तैयार हो गया।

इसके वाद सारे दश मे एक भयंकर उथल-पुथल मचने और हिन्दू-समाज मे उत्साह की एक जादूभरी लहर आ जाने की खवरे आई और मालूम होने लगा कि छआछूत का अब अन्त ही होनेवाला है। मै सोचने लगा कि यरवडा-जेल मे बैठा हुआ यह छोटा-सा आदमी कितना वडा जादूगर है! और लोगो के हृदयो के तारों को झकृत करना वह कितनी अच्छी तरह जानता है!

उनका एक तार मुझे मिला। मेरे जेल आने के बाद यह उनका पहला ही सदेश था और इतने लम्वे अर्से के बाद उनका सदेश पाना मुझे वहुत अच्छा लगा। इस तार मे उन्होने लिखा—

"इन वेदना के दिनो में मुझे हमेशा तुम्हारा ध्यान रहा है। तुम्हारी राय जानने को मैं बहुत ज्यादा उत्सुक हूं। तुम्हें मालूम है, मैं तुम्हारी राय

को बहुत नापसन्द करता हू , लेकिन पूना के समझौते मे क्या-क्या तय हुआ इसका खयाल न करते हुए भी मैंने उसका स्वागत किया।

कई महीने बाद, मई १९३३ मे, गाधीजी ने फिर अपना इक्कीस दिन का उपवास शुरू किया। पहले तो इसकी खबर से भी मुझे फिर बडा धक्का लगा, लेकिन होनहार ऐसा ही था, यह समझकर मैंने उसे मजूर कर लिया और अपने दिल को समझा लिया। वास्तव मे मुझे उन लोगो पर ही झुझलाहट आई, जो उनके उपवास का सकल्प कर लेने और घोषित कर देने के बाद उसे छोड देने का जोर उनपर डाल रहे थे। उपवास मेरी तो समझ के बाहर था और निश्चय कर लेने के पहले अगर मुझसे पूछा जाता तो मै उसके विरोध मे जोर की राय देता, लेकिन मै गाधीजी की प्रतिज्ञा का बडा महत्त्व समझता था, और किसी भी व्यक्ति के लिए मुझे यह गलत मालूम होता था कि वह किसी भी व्यक्तिगत मामले मे, जिसे वह (गाधीजी) सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण समझते थे, उनकी प्रतिज्ञा को तुड़वाने की कोशिश करे। इस तरह यद्यपि मै खिन्न था, फिर भी मैंने उसे सहन कर लिया।

अपना उपवास शुरू करने से कुछ दिन पहले उन्होने मुझे अपने खास ढग का एक पत्र भेजा, जिससे मेरा दिल बहुत हिल गया। चूकि उन्होने जवाब मागा था, इसलिए मैंने नीचे लिखा तार भेजा --

"आपका पत्र मिला। जिन मामलो को मै नहीं समझता, उनके बारे में मै क्या कह सकता हूं ? मै तो एक विचित्र देश में अपने को खोया हुआ-सा अनुभव करता हूं जहाँ आप ही एक-मात्र दीपस्तम्भ है; अधेरे में मैं अपना रास्ता टटोलता हूं; लेकिन ठोकर खाकर गिर जाता हूं। नतीजा जो कुछ हो, मेरा स्नेह और मेरे विचार हमेशा आपके साथ होगे।"

एक ओर तो मै उनके कार्य को बिलकुल नापसन्द करता था और दूसरी ओर उन्हे दु ख न पहुचाने की भी मेरी इच्छा बलवती थी। मै इस सघर्ष मे पडा हुआ था। मैंने अनुभव किया कि मैंने

उन्हे प्रसन्नता का सदेश नही भेजा है और अब जबकि वह अपनी भयकर अग्नि-परीक्षा मे से, जिसमे उनकी मृत्यु भी हो सकती थी, पार होने का निश्चय कर ही चुके है, तो मुझे चाहिए कि मुझसे जितना बन सके उतना मै उन्हे प्रसन्न रखू। छोटी-छोटी बातों का भी मन पर बडा असर होता है और उन्हे अपना जीवन-दीप बुझने न देने के लिए अपना सारा मनोबल लगा देना पड़ेगा। मुझे ऐसा लगा कि अब जो कुछ भी हो, चाहे दुर्भाग्य से उनकी मृत्यु भी हो जाय, तो भी उसे दृढ हृदय से सह लेना चाहिए। इसलिए मैने उन्हे दूसरा तार भेजा—

"अब तो जब आपने अपना महान् तप शुरू कर ही दिया है, मै फिर अपना स्नेह और अभिनन्दन आपको भेजता हूं, और मै आपको विश्वास दिलाता हूं कि अब मुझे यह ज्यादा स्पष्ट दिखाई देता है कि जो कुछ होता है अच्छा ही होता है, और परिणाम कुछ भी हो आपकी विजय ही है।"

उनका उपवास सकुशल पूरा हुआ। उपवास के पहले ही दिन वह जेल से रिहा कर दिये गये और उनके कहने से छह हफ्तो के लिए सविनय-भग स्थगित कर दिया गया।

: ३९ :

लम्बी सज़ा का अन्त

मेरी रिहाई का वक्त नजदीक आ रहा था। साधारणत. मुझे 'नेकचलनी' की जितनी छूट मिलनी चाहिए थी उतनी मिल गई और इससे मेरी दो साल की मियाद मे से साढे तीन महीने कम हो गये थे। मेरी मानसिक शाति या यो कहिये कि जेल-जीवन से जो मानसिक जडता पैदा हो जाती है उसमे रिहाई का खयाल खलल डाल रहा था। बाहर जाकर मुझे क्या करना चाहिए ? यह एक मुश्किल सवाल था और इसके जवाब की हिचकिचाहट ने बाहर जाने की मेरी खुशी कम कर दी, लेकिन वह भी एक क्षणिक भाव था और लम्बे अर्से से दबी हुई क्रियाशीलता मेरे

अन्दर फिर उमड़ने लगी और मै बाहर निकलने को उत्सुक हो गया।

अपनी तन्दुरुस्ती के बारे मे मै खुशकिस्मत था और काग्रेस के कार्य मे भारी मेहनत पडने और अनियमित जीवन बीतने पर भी मै कुल मिलाकर अच्छा ही रहा। मेरे ख़याल से, इसका कुछ कारण तो यह भी था कि जन्म से ही मै हृष्ट-पुष्ट था और दूसरे मै अपने शरीर की संभाल रखता था। एक तरफ बीमारी और कमजोरी और दूसरी तरफ ज्यादा मुटापे से भी मुझे नफरत थी, और काफी कसरत, ताजी हवा और सादे भोजन की आदत रहने से मै दोनो बातो से बचा रहा। मेरा अपना तजरबा यह है कि हिन्दुस्तान के मध्यम वर्गो की बहुत-सी बीमारिया तो गलत भोजन से होती है। वे तरह-तरह के पकवान और सो भी अधिक मात्रा मे, खाते है। लाड-प्यार करने वाली माताए बच्चो को मिठाइया और दूसरी बढिया कही जानेवाली चीजे ज्यादा खिला-खिला कर जिन्दगीभर के लिए उनकी बदहज्मी की पक्की नीव डाल देती है। बच्चो पर कपड़े भी बहुत-से लाद दिये जाते है।

मैने भोजन-सम्बन्धी शौकिया प्रयोग करनेवाले लोगो की तरफ कोई ध्यान नही दिया है। करीब-करीब सभी कश्मीरी ब्राह्मणो की तरह हमारा परिवार भी मासाहारी परिवार था, और बचपन से मै हमेशा मास खाता रहा था, हालाकि मुझे उसका बहुत शौक कभी न रहा। पर १९२० मे असहयोग के समय से मैने मास छोड दिया और मै शाकाहारी बन गया। इसके छह साल बाद यूरोप जाने पर मै फिर मास खाने लगा था; पर हिन्दुस्तान आने पर फिर शाकाहारी हो गया और तबसे मैं बहुत-कुछ शाकाहारी ही रहा हू। मासाहार मुझे ठीक-ठीक मुआफिक पडता है; लेकिन मुझे उससे अरुचि हो गई है और उसे खाने मे कुछ कठोरता की भावना मन मे पैदा होती है।

अपनी बीमारियो के समय मे खासकर १९३२ मे जेल मे,

जव कि कई महीनों तक रोजाना मुझे हरारत हो आया करती थी, मैं झुझला उठता था, क्योंकि उससे मेरी अच्छी तन्दुरुस्ती के गर्व को ठेस पहुचती थी। मुझमे असीम जीवन-शक्ति और स्फूर्ति है, अपनी इस सदा की धारणा के विरुद्ध, मैं पहली बार सोचने लगा कि मेरी तन्दुरुस्ती धीरे-धीरे गिरती जा रही है और मैं घुलता जा रहा हू और इससे मैं भयभीत हो गया। मेरा खयाल है कि मैं मौत से डरता नही हू, लेकिन शरीर और मस्तिष्क का धीरे-धीरे घुलते जाना तो दूसरी ही बात थी। मगर मेरा डर जरूरत से ज्यादा था और मैं नीरोग होने और अपने शरीर पर अधिकार कर लेने मे सफल हो गया। जाडे मे बडी देर तक धूप मे बैठे रहने से मैं फिर अपने को तन्दुरुस्त महसूस करने लगा। जवकि जेल के मेरे साथी कोट और दुशाले मे लिपटे हुए कापा करते थे, मैं खुले वदन धूप मे बैठकर गरमी का आनन्द लिया करता था। ऐसा जाड़े के दिनों मे सिर्फ उत्तर हिन्दुस्तान मे ही हो सकता था, क्योंकि दूसरी जगहों पर तो धूप अक्सर वहुत तेज होती है।

अपनी कसरतो मे मुझे खासकर शीर्पासन से वहुत आनन्द आता था। मेरी समझ मे शारीरिक दृष्टि से यह कसरत वड़ी अच्छी है और इसका मानसिक प्रभाव भी मेरे ऊपर अच्छा पडता था। इस कुछ-कुछ विनोदपूर्ण आसन से मेरी तवीयत खुश रहती थी और इसने जीवन की विचित्रताओ के प्रति मुझे अधिक सहनशील वना दिया।

उदासी के क्षणो को, जो कि जेल-जीवन मे लाजिमी तौर पर होते ही है, दूर करने मे मेरी आमतौर पर अच्छी तन्दुरुस्ती ने और तन्दुरुस्त होने की शारीरिक अनुभूति ने, वडी सहायता की। इन दोनो वातो से मुझे जेल की या वाहर की वदलती हुई हालतो के मुताविक अपने-आपको वना लेने मे भी मदद मिली। मेरे दिल को कई वार धक्के लगे है, जिनसे उस वक्त तो मैं वहुत ही वेहाल हो जाता था; लेकिन मुझे ताज्जुव

हुआ कि मै अपनी उम्मीद से भी जल्दी प्रकृतिस्थ हो जाता था। मेरी राय मे, मेरी मूलभूत सयमित तथा स्वस्थ प्रकृति का एक सबूत यह है कि मुझे कभी तेज सिर-दर्द नही हुआ और न मुझे कभी नीद न आने की शिकायत हुई। मै सभ्यता की इन आम वीमारियो से और आख की कमजोरी से भी वच गया हू, हालाकि मै पढने और लिखने मे और कभी-कभी तो जेल की खराव रोशनी मे भी आखो से वहुत ज्यादा काम लेता रहा। पिछले साल आख के एक डाक्टर ने मेरी अच्छी दृष्टि-शक्ति पर वडा आश्चर्य प्रकट किया। आठ साल पहले उसने भविष्य-वाणी की थी कि मुझे एक या दो साल मे ही चश्मा लगाना पडेगा। उसका कहना वहुत गलत निकला और मै अव भी वगैर ऐनक के अच्छी तरह काम चला रहा हूँ।

जव मै जेल से अपनी रिहाई का इन्तजार कर रहा था, उस समय वाहर व्यक्तिगत सविनय-भग का नया स्वरूप शुरू हो रहा था। गाधीजी ने इसमे सबसे पहले मिसाल पेश करने का फैसला किया और अधिकारियो को पूरी तरह नोटिस देने के वाद वह एक अगस्त को गुजरात के किसानो मे सविनय-भग का प्रचार करने के लिए रवाना हुए। वह फौरन गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हे एक साल की सजा दे दी गई और वह यरवडा की अपनी कोठरी मे फिर भेज दिये गये। मुझे खुशी हुई कि वह वापस वहा चले गये। लेकिन जल्दी ही एक नई पेचीदगी पैदा हो गई। गाधीजी ने जेलसे हरिजन-कार्य करने की वही सहूलियते मागी, जो उन्हे पहले मिली थी। सरकार ने उन्हे देने से इन्कार कर दिया। अचानक हमने सुना कि गाधीजी ने फिर इसी वात पर उपवास शुरू कर दिया है। ऐसी जबरदस्त कार्रवाई के लिए हमे वह वहुत ही छोटा कारण मालूम हुआ। उनके निर्णय के रहस्य को समझना मेरे लिए बिलकुल नामुमकिन था, चाहे सरकार के सामने उनकी दलील बिलकुल सही भी हो। मगर हम

कुछ नही कर सकते थे। असमजस मे पड़े हुए हम यह सब देखते रहे।

उपवास के एक हफ़्ते बाद उनकी हालत तेजी से गिरने लगी। वह एक अस्पताल मे पहुचा दिये गए, लेकिन वह कैदी ही रहे और सरकार हरिजन-कार्य के लिए सहूलियते देने के मामले मे न झुकी। उन्होने अपने जीवन की आशा (जो कि पिछले उपवासो मे कायम रही थी) छोड दी और अपनी तन्दुरुस्ती को गिरने दिया। उनका अन्त नजदीक दीखने लगा। उन्होने आस-पास के लोगो से विदाई ले ली और अपने पास पडी हुई अपनी थोडी-सी चीजों को भी इस-उसको बाट देने का इन्तजाम कर लिया, जिनमे से कुछ नर्सो को भी दे दी, लेकिन सरकार यह नही चाहती थी कि उनकी मौत की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले, इसलिए उसी शाम को वह अचानक रिहा कर दिये गये। इससे वह मरते-मरते बच गये। एक दिन और बीत जाता तो फिर उनका बचना मुश्किल था। इस प्रकार उन्हे बचाने का बहुत कुछ श्रेय सम्भवतः श्री० सी०एफ० एण्ड्रूज को है, जो गाधीजी के मना करने पर भी जल्दी से हिन्दुस्तान आ गये थे।

इस वीच (२३ अगस्त को) मैं देहरादून-जेल वदल दिया गया और दूसरे जेलो मे करीव-करीव डेढ साल रहने के वाद फिर नैनी-जेल में आ गया। ठीक उसी वक्त मेरी माताजी के अचानक वीमार हो जाने और अस्पताल ले जाये जाने की ख़वर मिली। ३० अगस्त १९३३ को मै नैनी से रिहा कर दिया गया, क्योकि मेरी मा की हालत गम्भीर समझी गई। मामूली तौर पर मै अपनी मियाद खतम होने पर ज्यादा-से-ज्यादा १२ सितम्वर को रिहा हो जाता। इस तरह मुझे प्रान्तीय सरकार ने तेरह दिन की छूट और दे दी।

: ४० :

गांधीजी से मुलाकात

जेल से रिहा होते ही मै अपनी बीमार मा के पास लखनऊ पहुचा और कुछ दिन उनके पास रहा। मै काफी लम्बे अर्से के बाद जेल से बाहर निकला था, अत. मुझे लगा कि मैं आस-पास के हालात से बिलकुल अपरिचित और अलग-सा हो गया हू। इस अनुभव से मेरे दिल को कुछ धक्का भी लगा, जैसा कि आम तौर पर होता है कि जब मै जेल मे पडा-पडा सड रहा था तो दुनिया आगे बढती जा रही थी और बदलती जा रही थी। बच्चे और लडकिया और लडके बडे होते जा रहे थे, शादिया, पैदाइशे और मौते हो रही थी। प्रेम और घृणा, काम और खेल, दु ख और सुख सब चल रहा था। जीवन मे दिलचस्पी पैदा करनेवाली नई-नई बाते हो गई थी, बातचीत के विषय नये हो गए थे, मै जो कुछ देखता और सुनता था, सब-पर मुझे कुछ-न-कुछ आश्चर्य होता था। मुझे लगा कि मुझे एक खाडी मे छोडकर जिन्दगी का जहाज कितना आगे बढ गया था ! यह भावना कुछ खुश करनेवाली नही थी। जल्दी ही इस स्थिति के अनुकूल मै अपने को बना सकता था, लेकिन ऐसा करने की मुझे प्रेरणा नही होती थी। मेरे दिल ने कहा कि "जेल के बाहर सैर करने का तुम्हे यह थोडा-सा मौक़ा मिला है और जल्दी ही फिर तुम्हे जेल मे जाना पडेगा। इसलिए जिस जगह से जल्दी ही चल देना है, उसके अनुकूल अपने को बनाने की झझट क्यों मोल ली जाय ?"

राजनैतिक दृष्टि से हिन्दुस्तान कुछ शान्त था। सार्वजनिक प्रवृत्तियो का ज्यादातर सरकार ने नियन्त्रण और दमन कर रखा था और गिरफ्तारियां कभी-कभी हो जाया करती थी। मगर हिन्दुस्तान की उस वक्त की खामोशी बहुत महत्त्व रखती थी।

वह वैसी ही मनहूस खामोशी थी जैसी कि भयकर दमन के अनुभव के बाद थक जाने से आ जाती है, वह खामोशी अक्सर बहुत वाचाल होती है, लेकिन उसे दमन करनेवाली सरकार नही सुन सकती। सारा हिन्दुस्तान एक आदर्श पुलिस-राज्य बन गया था और शासन के सब कामों मे पुलिस-मनोवृत्ति व्याप्त हो गई थी। जाहिरा तौर पर हर तरह की कार्रवाई, जो सरकार की इच्छा के मुआफिक न हो, दबा दी जाती थी और देशभर मे खुफिया और छिपे कारिन्दों की बड़ी भारी फौज फैली हुई थी। लोगो मे आमतौर पर पस्तहिम्मती आ गई थी और चारो ओर आतक छा गया था। कोई भी राजनैतिक कार्य, खासकर गावो मे, फौरन कुचल दिया जाता था।

जेल से रिहा होने के बाद, मैंने हिन्दुस्तान की राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियो का अध्ययन किया और मुझे उन्हे देखकर जरा भी उत्साह नही मालूम हुआ। मेरे कई साथी जेल मे थे, नई गिरफ्तारिया जारी थी, सारे आर्डिनेस कानून की शक्ल मे अमल मे आ रहे थे, सेन्सर से अखबारो का गला घुटा हुआ था और हमारे पत्र-व्यवहार की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी।

वापस जेल जाने से पहले मै कुछ कामो को निबटा भी डालना चाहता था। सबसे पहले तो मुझे अपनी मा की बीमारी की तरफ ध्यान देना था। उनकी हालत बहुत धीरे-धीरे सुधर रही थी, इतनी धीरे कि कोई एक साल तक वह चारपाई पर ही रही। मै गाधीजी से भी मिलने को उत्सुक था, जो कि पूना मे अपने हाल के ही उपवास से स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे। दो साल से ज्यादा हुए मै उनसे नही मिला था। मै अपने सूबे के अधिक-से-अधिक साथियो से भी मिलना चाहता था, ताकि उनसे न सिर्फ हिन्दुस्तान की मौजूदा राजनैतिक स्थिति पर ही बल्कि ससार की परिस्थिति पर, और इन सब विचारो पर भी बातचीत

करू, जो मेरे दिमाग मे भरे हुए थे। उस वक्त मेरा खयाल था कि दुनिया वड़ी तेजी से एक महान् राजनैतिक और आर्थिक विपत्ति की तरफ जा रही है और अपने राष्ट्रीय कार्यक्रमो को वनाते वक्त हमे इसका ध्यान रखना चाहिए।

मेरी रिहाई के वाद फौरन ही मेरी छोटी वहन कृष्णा की सगाई हो गई और मै चिन्तित था कि जल्दी ही शादी हो जाय—मुझे फिर कही जेल न चला जाना पडे, इस खयाल से। कृष्णा खुद भी एक साल तक जेल काटकर कुछ महीने पहले ही छूटी थी।

जैसे ही मा की वीमारी से मैने छुट्टी पाई, मै गांधीजी से मिलने पूना चला गया। उनसे मिलकर और यह देखकर मुझे खुशी हुई कि हालांकि वह कमजोर थे; लेकिन वह अच्छी रफ्तार से स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे। हमारे वीच लम्बी-लम्वी वातचीत हुई। यह साफ जाहिर था कि जीवन, राजनीति और अर्थशास्त्र के हमारे दृष्टिकोणों मे काफी फर्क था, लेकिन मै उनका कृतज्ञ हूं कि उनसे जहातक बना, उन्होने उदारतापूर्वक मेरे दृष्टिकोण के अधिक-से-अधिक नजदीक आने की कोशिश की।

गाधीजी के सामने जो खास समस्या थी वह थी व्यक्तिगत। उन्हे खुद क्या करना चाहिए इस संबध मे वह बड़ी उलझन मे थे। अगर वह फिर जेल गये तो हरिजन-कार्य की सहूलियतों का वही सवाल फिर उठेगा और बहुत मुमकिन था कि सरकार न झुके और वह फिर उपवास करे तो क्या वह सारा क्रम फिर दोहराया जायगा? ऐसी चूहे-बिल्लीवाली नीति के सामने उन्होंने झुकने से इन्कार कर दिया और कहा, "अगर मुझे उन सहूलियतों के लिए उपवास करना पड़ा तो रिहा कर दिये जाने पर भी मै उपवास जारी रक्खूंगा।" इसका अर्थ था आमरण उपवास।

दूसरा रास्ता उनके सामने यह था कि वह अपनी सजा की मियाद तक (जिसमे से अभी साढे दस महीने बाकी थे) अपनी गिरफ्तारी न करवाय और सिर्फ हरिजन-कार्य मे ही अपने आपको लगा दे। लेकिन साथ ही, उनका काग्रेस-कार्यकर्ताओ से मिलते रहना और जब जरूरत हो, तब उन्हे सलाह भी देना जरूरी ही था।

उन्होने मुझे एक तीसरा रास्ता भी सुझाया कि वह कुछ अर्से के लिए काग्रेस से विलकुल अलग हो जाय और उसे (उनके ही शब्दो मे) 'नई पीढी' के हाथो मे छोड़ दे।

पहले रास्ते की, जिसका अन्त उपवास-द्वारा प्राणान्त कर देना मालूम होता था, हममे से कोई भी सिफारिश नही कर सकता था। तीसरा रास्ता भी जब कि काग्रेस एक गैर-कानूनी सस्था थी, ठीक मालूम नही हुआ। इस रास्ते का नतीजा यह होता कि सविनय-भग और सब तरह की 'सीधी लडाई' फौरन वापस ले ली जाती और फिर कानूनी और वैध प्रवृत्ति पर लौटना पडता या काग्रेस गैर-कानूनी होकर और सवसे, अव तो गाधीजी तक से, विलग होकर सरकार-द्वारा और भी ज्यादा कुचली जाती। इसके अलावा, एक गैर-कानूनी सस्था पर, जो मीटिग करके किसी नीति पर विचार नही कर सकती थी, किसी दल का कब्जा कर लेने का कोई सवाल ही नही उठता था। इस तरह और रास्तो को छोडते हुए हम उनके सुझाये दूसरे उपाय पर आ गये। हममे से ज्यादातर लोग उसे नापसन्द करते थे और हम जानते थे कि उससे वचे-खुचे सविनय-भग को एक भारी आघात पहुचेगा। अगर नेता ही लडाई मे से हट जायगा तो यह सम्भव नही था कि उत्साही काग्रेसी-कार्यकर्त्ता लोग आग में कूद पडेगे। लेकिन उलझन मे से निकलने का और कोई रास्ता ही न था और इसीके अनुसार गाधीजी ने अपनी घोषणा कर दी।

गाधीजी और मै, दोनो इस बात पर सहमत थे, हालाकि

हमारे कारण अलग-अलग थे कि सविनय-भग को वापस लेने का अभी वक्त नहीं आया है और चाहे आन्दोलन धीरे-धीरे चले, लेकिन उसे जारी रखना ही चाहिए । कुछ भी हो, मै लोगो का ध्यान समाजवादी सिद्धान्तो और ससार की परिस्थिति की ओर भी खीचना चाहता था ।

: ४१ :

अन्तर्जातीय विवाह एवं लिपि का प्रश्न

सितम्वर १९३३ के वीच करीव एक हफ्ता वम्वई और पूना रहने के वाद मै लखनऊ लौट आया । मेरी मा अभी तक अस्पताल मे थी और उनकी हालत धीरे-धीरे सुधर रही थी । कमला भी लखनऊ मे, खुद तन्दुरुस्त न होते हुए भी, माताजी की सेवा करने मे लगी थी । हर सप्ताह के आखिरी दिनो मे मेरी वहने भी इलाहावाद से आती रहती थी । लखनऊ मे मै दो-तीन हफ्ते रहा । वहा इलाहावाद के मुकावले मे ज्यादा फुरसत मिली थी । मेरा खास काम दिन मे दो वार अस्पताल जाना था । मैने अपना यह फुरसत का समय अखबार के लिए लेख लिखने मे लगाया और ये सब लेख देश के लगभग सभी अखबारो मे छपे । 'हिन्दुस्तान किधर ?' शीर्षक लेखमाला पर जनता का काफी ध्यान गया । इस लेखमाला मे मैने दुनिया की हलचलों पर, हिन्दुस्तान की परिस्थिति के साथ उनके सबध को ध्यान मे रखकर, विचार किया था । आजकल के पश्चिमी विचारो और हलचलो से जानकारी रखनेवालों के लिए इन लेखो मे कोई नई या अद्भुत बात नही थी । मगर हिन्दुस्तान मे लोग अपने घरेलू मामलों मे ही इतने व्यस्त रहते है कि दूसरी जगह क्या हो रहा है इसपर वे ज्यादा ध्यान नही दे सकते । मेरे लेखो का जो स्वागत हुआ, उससे और दूसरे आसारों से मालूम पड़ा कि लोगो का दृष्टिकोण

व्यापक हो रहा है।

माताजी अस्पताल मे पड़ी-पड़ी ऊबती जा रही थी, इसलिए हमने उन्हे इलाहाबाद वापस ले जाने का निश्चय कर लिया। वापस लाने के दूसरे कारणो मे से एक कारण मेरी बहन कृष्णा की सगाई हो जाना भी था, जो इन्ही दिनों मे पक्की की गई थी। हम चाहते थे कि मेरे फिर से जेल चले जाने से पहले जल्दी-से-जल्दी विवाह हो जाय, मुझे कुछ पता न था कि मुझे कितने समय तक वाहर रहने दिया जायगा, क्योकि सविनय-भग काग्रेस का वाकायदा कार्यक्रम था और खुद काग्रेस और दूसरी बीसियो सस्थाएं गैर-कानूनी थी।

हमने अक्तूबर के तीसरे सप्ताह मे इलाहावाद मे विवाह करने का निश्चय किया। यह विवाह 'सिविल मैरिज एक्ट' के मुताविक होनेवाला था, क्योकि वह विवाह दो भिन्न जातियो, ब्राह्मण और अ-ब्राह्मण, मे होने वाला था। इस कानून के अनुसार दोनो को अपने-अपने धर्मो का परित्याग करना पडता है, या उन्हे कम-से-कम यह तो कहना ही पडता है कि हममे से कोई किसी धर्म को नही मानता है। इस प्रकार का अनावश्यक परित्याग वडा वाहियात है। मै स्वय अन्तर्जातीय विवाहो को प्रोत्साहन देना पसन्द करूगा, लेकिन उन्हे प्रोत्साहन दिया जाय या नही, ऐसी अनुमति देनेवाले एक अन्तर्जातीय-विवाह कानून का वनना तो निहायत जरूरी है जो आम तौर पर सब धर्मवालो पर लागू हो और जिससे विवाह करने के लिए उन्हे धर्म छोड़ने या वदलने की जरूरत न पड़े।

कृष्णा की शादी मे कोई धूमधाम नही हुई, सारा काम वडी सादगी से हुआ। हिन्दुस्तानी विवाहो मे जो धूमधाम हुआ करती है, मामूली तौर पर, वह मुझे पसन्द भी नही है। फिर माताजी की वीमारी के कारण और उनसे भी अधिक इस वात से कि सविनय-भंग अभी भी जारी था और हमारे वहुत-से

साथी जेलों मे पडे सड रहे थे, दिखावे के रूप मे कोई भी बात करना था भी बिलकुल अनुचित। इसलिए सिर्फ थोडे रिश्तेदारों और स्थानीय मित्रों को ही निमन्त्रित किया गया। पिताजी के बहुत से पुराने मित्रो को इससे सदमा भी पहुचा, क्योकि उन्हे यह लगा, हालाकि वह था गलत कि मैने जान-बूझकर उनकी उपेक्षा की है।

विवाह के लिए जो छोटा-सा निमत्रण-पत्र हमने भेजा था वह लेटिन अक्षरो व हिन्दुस्तानी भाषा मे छपाया गया था। यह एक बिलकुल नई बात थी। अबतक इस तरह के निमत्रण-पत्र आमतौर पर नागरी या फारसी लिपि मे ही लिखे जाते थे। फौज या ईसाई मिशनवालो के सिवाय कही भी हिन्दुस्तानी भाषा लेटिन अक्षरो मे नही लिखी जाती थी। मैने रोमन का इस्तेमाल केवल यह देखने के लिए किया था कि इसका मुख्तलिफ किस्म के लोगो पर क्या असर होता है। इसे कुछ ने पसन्द किया, कुछ ने नही। ज्यादा सख्या नापसन्द करनेवालो की ही थी। बहुत कम लोगो के पास यह निमन्त्रण-पत्र भेजा गया था, और अगर ज्यादा लोगो के पास भेजा जाता तो इसका असर और भी ज्यादा खिलाफ होता। गाधीजी ने भी इसे पसन्द नही किया।

मैने रोमन लिपि इसलिए इस्तेमाल नही की थी कि मै उसके पक्ष मे हो गया था, हालाकि उसने मुझे बहुत दिनो से अपनी ओर आकर्षित कर रक्खा था। टर्की और मध्य एशिया मे रोमन लिपि की सफलता ने मुझे प्रभावित किया था। रोमन के पक्ष मे जो दलीले है, उनमे काफी वजन है, फिर भी मै भारतवर्ष के लिए रोमन लिपि के पक्ष मे नही हो गया था। अगर मै उसके पक्ष मे हो भी जाता तो भी मै अच्छी तरह जानता था कि वर्तमान भारत मे उसके अपनाये जाने की रत्तीभर भी सम्भावना न थी। राष्ट्रीय, धार्मिक, हिन्दू, मुस्लिम, नये, पुराने सब दलो की ओर से इसका बहुत सख्त विरोध होता, और यह मै मानता हू कि यह विरोध महज

भावुकतावश ही नही होता। किसी भी भाषा के लिए, जिसका प्राचीन काल उज्ज्वल रहा हो, लिपि का बदलना बहुत बडी क्रान्ति है, क्योकि लिपि का उस साहित्य से बहुत गहरा सम्बन्ध रहता है। लिपि बदल दीजिए तो सामने कुछ और ही शब्द-चित्र नजर आयेगे, ध्वनि बदल जायगी, भाव बदल जायगे। पुराने और नए साहित्य के बीच एक अटूट दीवार उठ खडी होगी। पुराना साहित्य एकदम किसी विदेशी भाषा मे लिखा हुआ-सा जान पडेगा, ऐसी भाषा मे जो मर चुकी हो। लिपि बदलने का जोखिम उसी भाषा मे लेना चाहिए, जिसका कोई उल्लेखनीय साहित्य न हो। हिन्दुस्तान मे तो मै ऐसी रद्दो-बदल का खयाल भी नही कर सकता हू, क्योंकि हमारा साहित्य केवल सम्पन्न और अमूल्य ही नही, बल्कि हमारे इतिहास और विचार-परम्परा से सम्बद्ध है और हमारी सर्वसाधारण जनता के जीवन के साथ उसका बडा गहरा नाता रहा है। हमारे देश पर इस तरह का परिवर्तन लाद देना एक क्रूर विच्छेद के समान होगा और सार्वजनिक शिक्षा के रास्ते मे बाधक होगा।

लेकिन आज तो हिन्दुस्तान मे रोमन लिपि का प्रश्न सार्वजनिक चर्चा का विषय ही नही है। मेरी समझ मे लिपि-सुधार की दृष्टि से जो अगला कदम होना चाहिए, वह है सस्कृत भाषा से उत्पन्न चारो सहोदरा—हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती—भाषाओ के लिए एक-सी लिपि बनाना। इन चारो भाषाओ की लिपियो का उद्गम एक ही है और इनमे एक-दूसरे से भिन्नता भी विशेष नही है और इसलिए इन सबके लिए एक ही लिपि ढूढ निकालने मे कोई खास दिक्कत न होनी चाहिए। इससे ये चारो भाषाए एक-दूसरे के नजदीक आ जायगी।

मुझे इसमे कुछ भी शक नही है कि हिन्दुस्तानी ही भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बनेगी। दरअसल रोजमर्रा के काम-काज के लिए, वह एक बडी हद तक आज भी राष्ट्रभाषा-सी बनी हुई है। लिपि

नागरी हो या फारसी, इस निरर्थक वाद-विवाद ने इसकी तरक्की को रोक दिया है और दोनो दलो की इस कोशिश ने भी इसकी प्रगति मे रुकावट खडी कर दी है कि भापा को सस्कृत-प्रधान बनाया जाय या फारसी-प्रधान। लिपि का प्रश्न उठते ही इतने झगडे पैदा हो जाते है कि इस कठिनाई को हल करने का इसके सिवा और कोई उपाय ही नही मालूम होता कि दोनो लिपियो को अधिकारी रूप से मान लिया जाय और लोगों को इनमे से किसी को भी काम मे लाने की छूट दे दी जाय। संस्कृत व फारसी के शब्दो को ज्यादा काम मे लाने की जो बेजा प्रवृत्ति चल पडी है, उसे रोकने के लिए पूरी कोशिश करनी चाहिए और सामान्य व्यवहार मे वोली जानेवाली सरल भाषा के ढग पर एक साहित्यिक भापा वना लेनी चाहिए। जनता मे जैसे-जैसे शिक्षा वढ़ती जायगी, वैसे-वैसे अपने आप ऐसा होता जायगा। इस समय मध्यम श्रेणी के छोटे-छोटे दल साहित्यिक रुचि और शैली के निर्णायक वने हुए है और ये लोग अपने-अपने ढग से वहुत ही सकुचित हृदय के अनुदार और अपरिवर्तनवादी है। ये अपनी भाषाओं के पुराने निर्जीव रूप से चिपटे रहना चाहते है और अपने देश की साधारण जनता और ससार के साहित्य से इनका वहुत ही कम सम्पर्क है।

हिन्दुस्तानी की वृद्धि और प्रसार को, भारत की दूसरी बड़ी भाषाओ बगला, गुजराती, मराठी, उड़िया और दक्षिण की द्राविडी—के सतत व्यवहार और समृद्धि मे, न तो बाधक वनना चाहिए और न वह बनेगा। इनमे से कुछ भाषाए तो अब भी हिन्दुस्तानी की बनिस्वत बहुत अधिक जागरूक और बौद्धिक दृष्टि से सतर्क है और इसलिए अपने-अपने क्षेत्र मे शिक्षा के माध्यम और अन्य व्यवहारो के लिए अधिकारी रूप से अवश्य स्वीकार कर लेनी चाहिए। सिर्फ इन्हीके जरिये साधारण जनता मे शिक्षा और संस्कृति तेजी के साथ फैल सकती है।

मै खुद इस बात को पसन्द करूंगा कि हिन्दुस्तानी अंग्रेजी

व दूसरी विदेशी भाषाओं से बहुत-से शब्द अपने मे ले ले। इस बात की जरूरत है, क्योकि आजकल जो नई-नई चीजे निकलती है हमारी भाषा मे उनके अर्थ-द्योतक शब्द नही मिलते, इसलिए यही बेहतर है कि सस्कृत, फारसी या अरबी से नए और मुश्किल शब्द गढने के बजाय हम उन्ही सुप्रचलित शब्दो को काम मे लावे। भाषा की पवित्रता के हामी विदेशी शब्दो के इस्तेमाल का विरोध करते है, लेकिन मेरा खयाल है कि वे गलती करते है। असल मे किसी भाषा को समृद्ध बनाने का तरीका यही है कि वह इतनी लचीली रखी जाय कि दूसरी भाषाओ के भाव और शब्द उसमे शामिल होकर उसीके हो जाय।

अपनी बहन की शादी के बाद ही मै अपने पुराने दोस्त और साथी श्री शिवप्रसाद गुप्त से मिलने के लिए बनारस गया। गुप्त-जी एक बरस से भी ज्यादा अर्से से बीमार थे। जब वह लखनऊ जेल मे थे, अचानक उनको लकवा मार गया और अब वह धीरे-धीरे अच्छे हो रहे थे। बनारस की इस यात्रा के अवसर पर मुझे हिन्दी साहित्य की एक छोटी-सी सस्था की ओर से मानपत्र दिया गया और वहा उसके सदस्यो से दिलचस्प बातचीत करने का मुझे मौका मिला। मैने उनसे कहा कि जिस विषय का मेरा ज्ञान बहुत अधूरा है, उसपर उसके विशेषज्ञो से बोलते हुए मुझे हिचक होती है, लेकिन फिर भी मैने उन्हे थोडी-सी सूचनाए दी। आज-कल हिन्दी मे जो क्लिष्ट और आलकारिक भाषा इस्तेमाल की जाती है, उसकी मैने कुछ कडी आलोचना की। उसमे कठिन, बना-वटी और पुरानी शैली के सस्कृत शब्दो की भरमार रहती है। मैने यह कहने का भी साहस किया कि यह थोडे-से लोगो के काम मे आनेवाली दरबारी शैली अब छोड देनी चाहिए और हिन्दी लेखको को यह कोशिश करनी चाहिए कि वे हिन्दुस्तान की आम जनता के लिए लिखे और ऐसी भाषा मे लिखे जिसे लोग समझ सके। आम जनता के सम्पर्क मे भाषा मे नया जीवन और असली सच्चापन आ जायगा। इससे स्वयं लेखको को जनता की भाव-

व्यंजना शक्ति मिलेगी और वे अधिक अच्छा लिख सकेंगे। साथ ही मैंने यह भी कहा कि हिन्दी लेखक पश्चिमी विचारो व साहित्य का अध्ययन करे तो उससे उन्हे बडा लाभ होगा। यह और भी अच्छा होगा कि यूरोप की भाषाओ के पुराने साहित्य और नवीन विचारो के ग्रन्थो का हिन्दी मे अनुवाद कर डाला जाय। मैंने यह भी कहा कि सम्भव है आज का गुजराती, बगला और मराठी साहित्य इन बातों मे आजकल के हिन्दी-साहित्य से अधिक उन्नत हो और यह तो मानी हुई बात है कि पिछले वर्षो मे हिन्दी की अपेक्षा बगला में कही अधिक रचनात्मक साहित्य लिखा गया है।

: ४२ :

फिर जेल की तैयारी

दुबारा गिरफ़्तार होने और सजा पाने की सम्भावना हमेशा मेरे सामने बनी रहती थी। उस समय देश मे आर्डिनेस वगैरा का दौरदौरा था और कांग्रेस भी गैर-कानूनी जमात थी, इसलिए यह सम्भावना और भी ज्यादा थी। ब्रिटिश सरकार ने जैसा रुख अख्तियार कर रक्खा था और जैसा मेरा स्वभाव था उसको देखते हुए मुझपर प्रहार होना अनिवार्य मालूम होता था। हमेशा सिर पर सवार रहनेवाली इस सम्भावना का मेरी गतिविधि पर भी असर पडे बिना न रहा। मै जमकर कोई काम नही कर सकता था और मुझे यह जल्दी रहती थी कि जितना कुछ हो सके कर डालू।

फिर भी, मेरी इच्छा गिरफ्तारी मोल लेने की नही थी और जहातक हो सकता था मै ऐसी कार्रवाइयो से बचता था जो मेरी गिरफ्तारियों का कारण बने। अपने प्रान्त मे और प्रान्त के बाहर भी, दौरा करने के लिए मेरे पास कितनी ही जगहो से बुलावे आ

रहे थे। मैंने सबसे इन्कार कर दिया, क्योकि मै जानता था कि कोई भी व्याख्यानो का दौरा आन्दोलनकारी हलचल के सिवा और कुछ नही हो सकता था, और वह हलचल सरकार द्वारा कभी भी यकायक वन्द कर दी जा सकती थी। उस समय मेरे लिए कोई बीच का मार्ग हो ही नही सकता था।

घरेलू झगडो मे मेरा बहुत-सा समय खर्च हो जाता था। मेरी मा का स्वास्थ्य सुधर तो रहा था, मगर बहुत धीरे-धीरे। वह अभी तक रोगशय्या पर पडी थी, पर उनके जीवन को कोई खतरा नही मालूम होता था। मैंने अब अपना ध्यान अपने आर्थिक मामलो की ओर फेरा, जिनकी इधर बहुत दिनो से परवा नही की गई थी और जो वडी गडवड मे पड गए थे। हम लोग अपने बूते से ज्यादा खर्च कर रहे थे और खर्च कम करने की जाहिरा तौर पर कोई तरकीव ही नजर नही आती थी। मुझे घर का खर्च चलाने की तो कोई खास फिक्र न थी। मै तो करीव-करीव उस वक्त के इन्तजार मे था जव मेरे पास कुछ भी न वचता। वर्तमान ससार मे धन और सम्पत्ति वडी उपयोगी चीजे है, लेकिन जिस मनुष्य को लम्वी यात्रा पर जाना हो उसके लिए तो ये अक्सर भार-रूप वन जाती है। धनवान आदमियो के लिए ऐसे कामो मे हाथ डालना वहुत कठिन हो जाता है, जिनमे कुछ खतरा हो, उनको सदा अपनी धन-दौलत के चले जाने का भय रहता है। लेकिन धन-सम्पत्ति किस काम की, अगर सरकार अपनी मर्जी के मुताविक उसपर अधिकार कर सकती हो या उसे जव्त कर सकती हो? इसलिए जो थोडा-वहुत मेरे पास था, उससे भी छुटकारा पाना चाहता था। हमारी आवश्यकताए वहुत थोडी थी और मुझे जरूरत के मुताविक कमा लेने की अपनी शक्ति में विश्वास था। मुझे सबसे बड़ी चिन्ता यह थी कि मेरी माताजी को उनके जीवन के अन्तिम दिनो मे तकलीफ न उठानी पडे या उनके रहन-सहन के ढग मे कोई खास कमी न आने पावे। मुझे यह भी फिक्र थी कि मेरी

लडकी की शिक्षा मे कोई बाधा न पडे, जिसके लिए मै उसका यूरोप मे रहना आवश्यक समझता था। इन सबके अलावा मुझे या मेरी पत्नी को रुपये की कोई विशेष आवश्यकता नही थी। अथवा, इस तरह का हम खयाल करते थे, क्योकि हमे उसका कभी अभाव तो था नही। मुझे यकीन है कि जब ऐसा समय आयगा कि हमारे पास रुपये की कमी पडेगी तो हमे दु ख ही होगा। किताबे खरीदने की खर्चीली आदत को छोडना मेरे लिए शायद मुश्किल होगा।

उस वक्त की बिगडी हुई आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए हमने यह निश्चय किया कि मेरी पत्नी के गहने, हमारी सोने-चादी की चीजे और छोटा-मोटा बहुत-सा सामान बेच दिया जाय। कमला को अपने जेवर बेचने का खयाल पसन्द नही आया, हालाकि करीब १२ साल से उसने उन्हे नही पहना था और वे बैंक मे पडे हुए थे, लेकिन वह किसी दिन उनको अपनी लडकी को देने का विचार करती थी।

१९३४ का जनवरी महीना था। २६ जनवरी—स्वतन्त्रता-दिवस—नजदीक आ रहा था। उसे दर-गुजर नही किया जा सकता था। १९३० से यह दिवस हर साल, देश के कोने-कोने मे, आर्डिनेसो और पाबन्दियो के बावजूद नियमित रूप से मनाया जा रहा था। लेकिन अब इसका अगुआ कौन बनता? किस तरह से इसे आगे बढाया जाता? मेरे सिवा आल इडिया काग्रेस कमेटी के किसी पदाधिकारी का सिद्धान्त-रूप से कोई भी अस्तित्व न था। मैंने कुछ मित्रो से सलाह की तो क़रीब-करीब सब इस बात पर सहमत हुए कि कुछ करना चाहिए, लेकिन यह 'कुछ' क्या होना चाहिए, इसपर कोई राय कायम न हो सकी। मुझे आमतौर पर लोगो मे ऐसे कामो से दूर रहने की प्रवृत्ति नजर आई, जिसके फल-स्वरूप बहुत-से लोग पकडे जा सकते थे। आख़िरकार मैंने स्वतन्त्रता-दिवस को उचित प्रकार से मनाने की एक छोटी-सी अपील निकाली, पर उसे मनाने का ढग हर जगह के लोगो के निश्चय पर छोड़ दिया। इलाहाबाद मे

हमने सारे जिले मे काफ़ी विस्तार के साथ मनाने की योजना तैयार की।

हमारा खयाल था कि इस स्वतन्त्रता-दिवस के सयोजक उसी दिन गिरफ़्तार हो जायगे। लेकिन मै दुबारा जेल जाने से पहले बगाल का एक दौरा करना चाहता था। इसका कुछ-कुछ उद्देश्य तो पुराने साथियो से मिलना था, पर असल मे यह बगालियो के प्रति, उनकी गत वर्षो की असाधारण मुसीबतो के लिए श्रद्धाजलि भी थी। मै भली-भांति जानता था कि मै उनकी कुछ भी सहायता नही कर सकता था। सहानुभूति और भाईचारा किसी मर्ज की दवा नही थे, मगर फिर भी इसका स्वागत ही किया गया था-- और खासकर बंगाल तो उस समय एक जुदापन-सा महसूस कर रहा था। और इस बात से दु खी हो रहा था कि जरूरत के वक्त बाकी हिन्दुस्तान ने उसे छोड़ दिया। यह भावना न्यायोचित तो नही थी, पर फिर भी यह थी।

मुझे कमला के साथ कलकत्ता इसलिए भी जाना था कि अपने डाक्टरो से उसकी बीमारी के बारे मे सलाह लू। उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था; पर हम दोनो ने कुछ हदतक इसे दरगुजर करने की और ऐसे इलाज को टालने की कोशिश की, जिसके कारण हमको कलकत्ते मे या किसी और जगह बहुत दिनो तक ठहरना पड़े। जेल से मेरे बाहर रहने के थोडे समय मे हम दोनो यथासम्भव एक साथ ही रहना चाहते थे। मैने सोचा था कि जब मै जेल चला जाऊंगा तो उसे इलाज के लिए चाहे जितना समय मिल जायगा। अब चूकि गिरफ्तारी नजदीक नजर आ रही थी, इसलिए मैने इरादा किया कि यह सलाह-मशविरा कलकत्ते मे कम-से-कम मेरी मौजूदगी मे हो जाय, बाकी बाते बाद मे भी तय की जा सकती थी।

इसलिए हम दोनो ने—कमला ने और मैने—१५ जनवरी को कलकत्ते जाने का निश्चय कर लिया। स्वतन्त्रता-दिवस की सभाओ से पहले ही हम लौट आना चाहते थे।

: ४३ :

भूकम्प

१५ जनवरी १९३४ का तीसरा पहर था। इलाहाबाद मे अपने मकान के बरामदे म खडा किसानो के एक गिरोह से मै कुछ बात कर रहा था। माघ मेला आरम्भ हो गया था और सारे दिन हमारे यहा मिलने-जुलनेवालो का ताता लगा रहता था। यकायक मेरे पैर लड़खड़ाने लगे और अपने को सम्हालना मुश्किल हो गया। मैंने पास के एक खम्भे का सहारा ले लिया। दरवाजों के किवाड़ भड़भडाने लगे और बराबर के स्वराज-भवन से, जिसके खपरे छत से नीचे खिसक रहे थे, खड़खड़ाहट की आवाज आने लगी। मुझे भूकम्पो का कुछ अनुभव नहीं था। इसलिए पहले तो मै यह न समझ सका कि क्या हो रहा है, लेकिन मैं जल्दी ही समझ गया। इस अनोखे अनुभव से मुझे कुछ विनोद और दिलचस्पी हुई। मैंने किसानो से बातचीत जारी रक्खी और उन्हे भूचालों के बारे मे बतलाने लगा। मेरी बूढी मौसी ने कुछ दूर से चिल्लाकर मुझे मकान के बाहर दौड आने के लिए कहा। यह विचार मुझे बिलकुल भद्दा मालूम हुआ। मैंने भूकम्प को कोई गम्भीर बात नही समझा, और कुछ भी हो, मै ऊपर की मजिल मे अपनी माता को बिस्तर पर पड़ी हुई, और वही अपनी पत्नी को, जो शायद सामान बाध रही थी, छोड़ देने और अपने को बचा लेने के लिए कभी तैयार न था। ऐसा अनुभव हुआ कि भूचाल के धक्के काफी देर तक जारी रहे और बाद मे बन्द हो गए। उन्होने चन्द मिनटो की बातचीत के लिए एक मसाला पैदा कर दिया, पर लोग उसे जल्दी ही करीब-क़रीब भूल-से गए। उस वक्त हम नही जानते थे और न इसका अन्दाज ही कर सकते थे कि ये दो-तीन मिनट बिहार और अन्य स्थानों के लाखों आदमियों के लिए कितने घातक साबित हुए होगे!

उसी शाम को कमला और मै कलकत्ते के लिए रवाना हो गए और हम, बिलकुल बेखबर, अपनी गाडी मे बैठे हुए उसी रात को भूकम्प-पीडित प्रदेश के दक्षिण हिस्से मे होकर गुजरे। अगले दिन भी कलकत्ते मे भूकम्प से हुए घोर अनर्थ के बारे मे हमे कोई खबर नही मिली। दूसरे दिन इधर-उधर से कुछ समाचार आने शुरू हुए। तीसरे दिन हमको इस वज्रपात का कुछ-कुछ आभास होने लगा।

हम साढे तीन दिन कलकत्ता ठहरे और इस अर्से मे मैने तीन सार्वजनिक सभाओ मे भाषण दिये। जैसा कि मैने पहले कलकत्ता मे किया था, इस वार भी आतकवादी कार्यो की निन्दा की और उनकी हानिया वतलाई और इसके वाद मै उन तरीको पर भी वोला, जो सरकार ने बगाल मे अख्तियार किये थे। मै काफी जोश के साथ वोला, क्योकि इस प्रान्त की घटनाओ के विवरणो से मैं वहुत अधीर हो गया था। जिस वात ने मुझे सवसे अधिक चोट पहुचाई, वह थी वह तरीका, जिसके जरिये सारी जनता का अधा-धुन्ध दमन कर मानव-सम्मान पर वलात्कार किया गया था। इस मानवता के प्रश्न के आगे राजनैतिक प्रश्न ने, अत्यन्त आवश्यक होते हुए भी, गौण स्थान प्राप्त कर लिया था। वाद मे, कलकत्ता मे मुझपर जो मुकदमा चला, उसमे मेरे यही तीनो भाषण मेरे विरुद्ध तीन आरोप वनाये गये और मेरी यह पिछली सजा इन्ही का परिणाम है।

कलकत्ता से हम कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भेट करने के लिए शान्ति-निकेतन पहुचे। कवि से मिलना हमेशा आनन्ददायक था। इतने नजदीक आकर हम उनसे विना मिले कैसे जा सकते थे? मै तो पहले दो बार शान्ति-निकेतन हो आया था; लेकिन कमला का यह पहली बार जाना था और वह इस स्थान को देखने खासतौर पर आई थी, क्योकि हम अपनी बेटी को वहा भेजना चाहते थे।

लौटते हुए, हम राजेन्द्रबाबू के साथ भूकम्प-पीडितों की सहायता के प्रश्न पर विचार करने के लिए पटना ठहरे। वह अभी जेल से छूटकर आये ही थे और लाजिमी तौर पर उन्होंने पीडितो की सहायता के गैर-सरकारी काम मे सबसे आगे कदम रक्खा। हमारा यहा पहुचना बिलकुल अकस्मात् ही हुआ, क्योकि हमारा कोई भी तार उन्हे नही मिला था। कमला के भाई के जिस मकान मे हम ठहरना चाहते थे वह खडहर हो गया था; पहले वह ईंटो की एक बड़ी भारी दुमजिला इमारत थी। इसलिए और बहुत-से लोगो की तरह हम भी खुले मे ही ठहरे।

दूसरे दिन मै मुजफ्फरपुर गया। भूकम्प हुए पूरे सात दिन हो चुके थे, पर अभीतक सिवा कुछ ख़ास रास्तो के, कही भी मलवा उठाने के लिए कुछ भी नही किया गया था। इन रास्तो को साफ करते वक्त बहुत-सी लाशे निकली थी। इनमे कुछ तो विचित्र भावमयी अवस्थाओ मे थी, जैसे किसी गिरती हुई दीवार या छत से बचने की कोशिश कर रही हों। इमारतो के खडहरो का दृश्य बडा मार्मिक और रोमांचकारी था। जो लोग बच गये थे, वे अपने दिल दहलानेवाले अनुभवों के कारण बिलकुल घबराये हुए और भयभीत हो रहे थे।

इलाहाबाद लौटते ही धन और सामान इकट्ठा करने के काम का फ़ौरन प्रबन्ध किया गया और सब लोग, जो कांग्रेस में थे वे भी और जो नही थे वे भी, मुस्तैदी के साथ इनमें जुट गये। मेरे कुछ सहयोगियो की यह राय हुई कि भूकम्प के कारण स्वतन्त्रता-दिवस के जलसे रोक दिये जायं। लेकिन दूसरे साथियों को और मुझे भी कोई कारण नजर न आता था कि भूकम्प से भी हमारे प्रोग्राम मे क्यों खलल पडे? बहुत-से लोगों का ख़याल था कि शायद पुलिस दस्तन्दाजी और गिरफ़्तारियां कर बैठे और उसकी तरफ से कुछ मामूली दस्तन्दाजी हुई भी। मगर मीटिग कर चुकने के बाद जब हम लोग बच गये तो हमे बहुत

ताज्जुब हुआ। हमारे यहां के कुछ गावो मे और कुछ दूसरे शहरो मे गिरफ्तारिया हुई।

इलाहावाद की भूकम्प-सहायक-समिति ने मुझे भूकम्प-पीड़ित इलाको मे जाने के लिए और वहा भूकम्प-पीडितो की सहायता के लिए जो ढग अख्तियार किया गया था, उसकी रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त किया। मै अकेला ही फौरन चल पडा और दस दिन तक उन ध्वस्त और नष्ट-भ्रष्ट इलाकों मे घूमा। इस दौरे मे वडी मेहनत करनी पडी और इन दिनो मुझे सोने को भी वहुत कम समय मिला। सुवह के पाच वजे से लगभग आधी रात तक हम लोग चलते ही रहते थे—कभी दरारोवाली टूटी-फूटी सडको पर मोटर मे जा रहे है तो कभी छोटी-छोटी डोगियो के द्वारा ऐसे स्थानो मे उतर रहे है जहा पुल गिरे पडे थे या जहां जमीन की सतह मे फर्क आ जाने से सडके पानी मे डूव गई थी। शहरो मे ढेर-के-ढेर खडहरो और टूटी हुई, या मानो किसी दैत्य के द्वारा मरोडी हुई, या दोनो ओर के मकानों की कुर्सी से ऊपर उठी हुई सडको का दृश्य वडा हृदय-स्पर्शी था। इन सडको की वडी-वडी दरारो मे से पानी और रेत जोर से निकले थे जिससे असंख्य मनुष्य और जानवर वह गये थे। इन शहरो से भी ज्यादा उत्तर विहार के मैदानो पर—जिनको विहार का वाग कहा जाता था—उजडेपन और विनाश की छाप लगी हुई थी। मीलो तक फैली हुई वालू रेत, पानी के वडे-वड़े तालाव और विशालकाय दरारे और छोटे-छोटे असख्य ज्वालामुखी के-से मुँह वन गये थे, जिनमे से वालू-रेत और पानी निकला था। उस इलाके के ऊपर हवाई-जहाज मे वैठकर उडने-वाले कुछ अग्रेज अफसरो ने कहा था कि यह नजारा लडाई के जमाने के और उसके कुछ वाद के उत्तरी फ्रास के युद्धक्षेत्र से कुछ-कुछ मिलता-जुलता था।

यह एक वडा भयानक अनुभव हुआ होगा। भूकम्प पहले

अगल-वगल की गति से जोरो से शुरू हुआ, जिससे खडे हुए मनुष्य गिर पडे। इसके वाद ऊपर नीचे की गतिया हुई और एक ऐसी गडगड़ाहट और गूजती हुई भयकर आवाज हुई जैसे तोपे चल रही हो या आकाश मे सैकड़ो हवाई जहाज उड़ रहे हो। अन-गिनती स्थानो पर वडी-वड़ी दरारो और गड्ढो मे से पानी फूट निकला और उसकी धारे दस-वारह फुट तक ऊची उछली। यह सब शायद तीन या चार मिनट मे हो गया, मगर ये तीन मिनट ही महाभयकर थे। जिन लोगो ने इन घटनाओ को होते हुए देखा, आश्चर्य नही यदि उन्हे यह कल्पना हुई हो कि दुनिया का अन्त आ गया। शहरो मे मकानो के गिरने का शोर था, पानी वड़े जोर से वहकर आ रहा था और सारे वायुमण्डल मे धूल भर गई थी, जिससे कुछ ही गज आगे की चीजे भी नजर नही आती थी। देहातो मे इतनी धूल नही थी और दूर तक दिखलाई देता था, लेकिन वहां कोई शान्ति से देखनेवाले ही नही थे। जो लोग जिन्दा वचे वे भयकर त्रास के कारणजमी न पर लेट गये या इधर-उधर लुढकने लगे।

एक वारह बरस का लड़का (मेरे खयाल से, मुजफ्फरपुर मे) भूकम्प के दस दिन बाद खोदकर जीवित निकाला गया। वह वडा चकित था। टूट-टूटकर गिरनेवाले ईट-चूने ने जब उसे नीचे गिराकर दबा लिया तो उसने कल्पना की कि प्रलय हो गया है और अकेला वही जिन्दा बचा है।

मुजफ़्फ़रपुर मे ही ऐन भूकम्प के मौके पर, जबकि मकान गिर रहे थे और चारो तरफ सैकडो आदमी मर रहे थे, एक बच्ची पैदा हुई। उसके अनुभव-हीन माता-पिता को यह न सूझा कि क्या करना चाहिये और पागल-से हो गये। मगर मैने सुना कि माता और बच्ची दोनों की जाने बच गई और वे मजे मे थे। भूकम्प की यादगार मे बच्ची का नाम 'कम्पो देवी' रक्खा गया।

ताज्जुब हुआ। हमारे यहां के कुछ गावो मे और कुछ दूसरे शहरो मे गिरफ्तारिया हुई।

इलाहाबाद की भूकम्प-सहायक-समिति ने मुझे भूकम्प-पीडित इलाको मे जाने के लिए और वहां भूकम्प-पीड़ितो की सहायता के लिए जो ढग अख्तियार किया गया था, उसकी रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त किया। मै अकेला ही फ़ौरन चल पडा और दस दिन तक उन ध्वस्त और नष्ट-भ्रष्ट इलाको मे घूमा। इस दौरे मे बडी मेहनत करनी पड़ी और इन दिनो मुझे सोने को भी बहुत कम समय मिला। सुबह के पाच बजे से लगभग आधी रात तक हम लोग चलते ही रहते थे—कभी दरारोवाली टूटी-फूटी सडको पर मोटर मे जा रहे है तो कभी छोटी-छोटी डोगियो के द्वारा ऐसे स्थानो मे उतर रहे है जहा पुल गिरे पडे थे या जहा जमीन की सतह मे फर्क आ जाने से सड़के पानी मे डूब गई थी। शहरो मे ढेर-के-ढेर खडहरो और टूटी हुई, या मानो किसी दैत्य के द्वारा मरोड़ी हुई, या दोनो ओर के मकानो की कुर्सी से ऊपर उठी हुई सडको का दृश्य बडा हृदय-स्पर्शी था। इन सडको की बड़ी-बडी दरारो मे से पानी और रेत जोर से निकले थे जिससे असंख्य मनुष्य और जानवर बह गये थे। इन शहरो से भी ज्यादा उत्तर बिहार के मैदानो पर—जिनको बिहार का बाग कहा जाता था—उजडेपन और विनाश की छाप लगी हुई थी। मीलो तक फैली हुई बालू रेत, पानी के बड़े-बड़े तालाब और विशालकाय दरारे और छोटे-छोटे असंख्य ज्वालामुखी के-से मुंह बन गये थे, जिनमे से बालू-रेत और पानी निकला था। इस इलाके के ऊपर हवाई-जहाज मे बैठकर उडने-वाले कुछ अग्रेज अफसरो ने कहा था कि यह नजारा लडाई के जमाने के और उसके कुछ बाद के उत्तरी फ्रास के युद्धक्षेत्र से कुछ-कुछ मिलता-जुलता था।

यह एक बडा भयानक अनुभव हुआ होगा। भूकम्प पहले

अगल-बगल की गति से जोरों से शुरु हुआ, जिससे खडे हुए मनुष्य गिर पडे। इसके बाद ऊपर नीचे की गतिया हुई और एक ऐसी गडगड़ाहट और गूजती हुई भयंकर आवाज हुई जैसे तोपे चल रही हो या आकाश मे सैकडों हवाई जहाज उड रहे हों। अन-गिनती स्थानो पर वडी-वडी दरारो और गड्ढो मे से पानी फूट निकला और उसकी धारे दस-बारह फुट तक ऊची उछली। यह सब शायद तीन या चार मिनट मे हो गया, मगर ये तीन मिनट ही महाभयकर थे। जिन लोगों ने इन घटनाओ को होते हुए देखा, आश्चर्य नही यदि उन्हे यह कल्पना हुई हो कि दुनिया का अन्त आ गया। शहरो मे मकानो के गिरने का शोर था, पानी बड़े जोर से वहकर आ रहा था और सारे वायुमण्डल मे धूल भर गई थी, जिससे कुछ ही गज आगे की चीजे भी नजर नही आती थी। देहातो मे इतनी धूल नही थी और दूर तक दिखलाई देता था. लेकिन वहां कोई शान्ति से देखनेवाले ही नही थे। जो लोग जिन्दा वचे वे भयकर त्रास के कारणजमी न पर लेट गये या इधर-उधर लुढकने लगे।

एक बारह वरस का लडका (मेरे खयाल से, मुजफ्फरपुर मे) भूकम्प के दस दिन वाद खोदकर जीवित निकाला गया। वह वडा चकित था। टूट-टूटकर गिरनेवाले ईंट-चूने ने जव उसे नीचे गिराकर दवा लिया तो उसने कल्पना की कि प्रलय हो गया है और अकेला वही जिन्दा वचा है।

मुजफ्फरपुर मे ही ऐन भूकम्प के मौके पर, जवकि मकान गिर रहे थे और चारो तरफ सैकडो आदमी मर रहे थे, एक वच्ची पैदा हुई। उसके अनुभव-हीन माता-पिता को यह न सूझा कि क्या करना चाहिये और पागल-से हो गये। मगर मैंने सुना कि माता और वच्ची दोनो की जाने वच गई और वे मजे मे थे। भूकम्प की यादगार मे वच्ची का नाम 'कम्पो देवी' रक्खा गया।

-- -- -- ---- --

हमारे दौरे का आखिरी शहर मुगेर था। हम लोग
घूम चुके और करीव-करीव नेपाल की सीमा तक पहुच ग
और हमने अनेक हृदय-विदारक दृश्य देखे थे। हम लोग
वड़े भारी पैमाने पर खडहर और विध्वस देखने के आदी
गये थे, लेकिन फिर भी जव हमने मुगेर को और इस धन-स
नगर की अत्यन्त विनाश-पूर्ण हालत को देखा तो उसकी भयक
से हमारा दम फूलने लगा और हमे कपकपी आने लगी। मै
महाभयकर दृश्य को कभी नही भूल सकता।

भूकम्प के तमाम इलाको में, क्या शहरों और क्या देहात
वहा के निवासियों मे स्वावलम्बन का वडा शोचनीय अ
नजर आया। शायद शहरो के मध्यम-वर्ग मे इसका सवसे अ
प्रभाव था—वे लोग इस इन्तजार मे थे कि कोई सरकारी
गैरसरकारी भूकम्प-सहायक-समिति आकर काम करे
उन्हे सहायता दे। जो दूसरे लोग सेवा करने को आगे
उन्होने समझा कि काम करने का अर्थ है लोगो पर हुक्म चला
यह निस्सहायता की भावना कुछ तो निस्सन्देह भूकम्प के आ
से पैदा हुई मानसिक दुर्वलता के कारण थी और वह धीरे-
ही कम हुई होगी।

विहार के दूसरे हिस्सो और दूसरे प्रान्तों से वडी सं
मे आनेवाले मददगारो का जोश और उनकी कार्यशक्ति इस
तुलना मे एक विलकुल अलग ही चीज नजर आती थी।
नवयुवको और नवयुवतियो की मुस्तैदी के साथ सेवा करने
भावना को देखकर चकित होना पडता था। हाला
अनेक भिन्न-भिन्न सहायक सस्थाए काम कर रही थी, फिर
इनमे आपस मे वहुत कुछ सहयोग था।

मुगेर मे खोदने और मलवा हटाने की स्वावलम्बी भाव
को प्रोत्साहन देने के लिए मैने एक नाटक-सा किया। इसे करने
मुझे कुछ हिचकिचाहट तो हुई, पर इसका परिणाम वडा सफल

पूर्ण निकला। सहायक सस्थाओं के तमाम अगुआ टोकरियां और फावड़े ले-लेकर निकले और उन्होने दिनभर खुदाई की और हमने एक लडकी की लाश वाहर निकाली। मैं तो उस दिन मुगेर से चला आया; लेकिन खुदाई का काम जारी रहा और वहुत-से स्थानीय व्यक्तियो ने उसे वडी सफलतापूर्वक किया।

जितनी गैर-सरकारी सहायक संस्थाएं थी, उन सवमे सेन्ट्रल रिलीफ कमिटी, जिसके अध्यक्ष वावू राजेन्द्रप्रसाद थे, सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण थी। यह सर्वथा काग्रेसी सस्था नही थी। शीघ्र ही यह वढकर भिन्न-भिन्न दलो और दानदाताओ की प्रतिनिधि-स्वरूप एक अखिल भारतीय संस्था वन गई।

मैं ११ फ़रवरी को, दौरे के कारण विलकुल थका-माँदा, इलाहावाद मे अपने घर पहुचा। कडी मेहनत के इन दस दिनो ने मेरा रूप वडा अजीव वना दिया था और मेरे कुटुम्व के लोग मेरी शकल देखकर चकित हो गये। मैंने इलाहावाद रिलीफ-कमेटी के लिए अपने दौरे की रिपोर्ट लिखने की कोशिश की; लेकिन नीद ने मुझे आ-घेरा। अगले २४ घटो मे से मैंने कम-से-कम १२ घंटे नीद मे विताये।

दूसरे दिन, शाम के वक्त कमला और मै चाय पीकर वैठे थे और पुरुषोत्तमदास टंडन हमारे पास आये ही थे। हम लोग वरामदे मे खडे हुए थे। इतने मे एक मोटर आई और पुलिस का एक अफसर उसमें से उतरा। मै फ़ौरन समझ गया कि मेरा वक़्त आ गया है। मैंने उसके पास जाकर कहा—"वहुत दिनों से आपका इन्तजार था।" वह जरा माफी-सी मॉगने लगा और कहने लगा कि कुसूर उसका नहीं है। वारण्ट कलकत्ता से आया था।

मै पॉच महीने और तेरह दिन वाहर रहा। और मैं फिर एकान्त और तनहाई मे भेज दिया गया। लेकिन दु:ख का असली भार मुझपर न था। वह तो हमेशा की तरह स्त्रियो पर

ही था--मेरी बीमार माता पर, मेरी पत्नी पर और मेरी बहन पर ।

: ४४ :

अलीपुर-जेल

"फेक यकायक कहां दिया है इतनी दूर मुझे लाकर !
कबतक यो टकराना होगा इन अदृष्ट की लहरो पर ?
किधर खीच ले जावेगे अब झोको के ये उलझे तार,
दिखता नही प्रकाश, न जाने कहा लगेगी किश्ती पार !"[1]

उसी रात को मै कलकत्ता ले जाया गया । हावडा स्टेशन से लालबाजार पुलिस-थाने तक मुझे एक बडी काली मोटर-लारी मे बिठाकर ले गये । कलकत्ता-पुलिस के मशहूर हैड-क्वार्टर के बारे मे मैने बहुत-कुछ पढ रक्खा था । अत मै उस जगह को बडे चाव से देखने लगा । यहा अग्रेज सार्जेण्ट और इन्सपेक्टर इतनी बडी तादाद मे मौजूद थे, जितने उत्तर-भारत के किसी भी बडे पुलिस-थाने मे नही है । वहा के सिपाही अक्सर सभी बिहार और सयुक्तप्रात के पूर्वी जिलो के थे । अदालत से जेल या एक जेल से दूसरी जेल जाने के लिए मुझे कई बार जेल की लारी मे जाना पडता था और हर दफा उनमे से कई सिपाही लारी के भीतर मेरे साथ जाते थे । वे जरूर ही कुछ दु खी मालूम होते थे । उनको यह काम पसन्द न था और स्पष्टत. वे मेरे साथ बडी हमदर्दी-सी रखते थे । मैने देखा कि कई बार उनकी आँखो मे आँसू छलक पड़ते थे ।

मुझे शुरू मे प्रेसिडेन्सी जेल में रक्खा गया और वही से मुझे अपने मुकदमे के लिए चीफ प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेट की अदालत में ले जाया जाता था । यह अदालत मेरे लिए एक नया तजर्बा था ।

---

[1] रॉबर्ट ब्राउनिंग की कविता का भावानुवाद ।

अदालत का कमरा और इमारत साधारण अदालत की-सी नही वल्कि एक घिरे हुए किले-जेसी थी। सिवा कुछ अखवारवालो और वही के वकीलों के वाहर का कोई आदमी उसके आसपास नही फटकने दिया जाता था। पुलिस वहां काफी तादाद मे जमा थी। यह सव वन्दोवस्त कोई मेरे लिए नया नही किया गया था, यह तो वहॉ का हमेशा का दस्तूर है। अदालत के कमरे मे जाने के लिए मुझे दूसरे कमरे मे होते हुए एक लम्वे रास्ते से जाना पड़ता था, जिसके ऊपर और दोनो तरफ जालियॉ पडी हुई थी, मानो किसी पिजड़े मे से निकल रहे हो। मुलजिम का कटघरा हाकिम की कुर्सी से कुछ दूर था। कमरा पुलिसवालो और काले कोट और चोगेवाले वकीलो से भरा हुआ था।

मुझे अदालती मुकदमो से काफी काम पड़ चुका है। मेरे पहले के कई मुकदमे जेल के भीतर हो चुके है, परन्तु उन सव मौकों पर मेरे साथ दोस्त, रिश्तेदार और जान-पहचान वाले रहते थे, इस कारण वहॉ का वातावरण मेरे लिए कुछ सरल जान पडता था। पुलिस अधिकतर गौणरूप मे होती थी और वहॉ पिजड़े वगैरा नजर न आते थे। यहॉ तो वात ही दूसरी थी, चारो तरफ अजनवी और विना जान-पहचान की शकले नजर आती थी, जिनमे और मुझमे कुछ भी साम्य नही दीखता था। वे लोग मुझे वहुत पसन्द भी नही आये।

मुकदमा शुरू होने के पहले जब मै वाहर झरोखे मे बैठा रहता था तव भी मुझे अकेलापन और सुनसान मालूम पड़ता था। मेरी नब्ज जरूर तेज हो गई होगी और मेरा दिल इतना शान्त नही था जैसा पहले के मुकदमो के समय रहता था। मुझे तब खयाल आया कि जब इतने मुकदमों और सजाओ का तजुर्वा होते हुए भी मुझपर परिस्थिति की अजीव प्रक्रिया का असर हुए विना न रहा तो ऐसी हालत मे नातजुर्बेकार नौजवानो पर परिस्थिति का कितना वड़ा भार पडता होगा !

कठघरे मे मेरा चित्त वहुत-कुछ शान्त मालूम हुआ । हमेशा की तरह कोई सफाई पेश नही की गई और मैने अपना एक छोटा-सा वयान पढकर सुना दिया । दूसरे दिन अर्थात् १६ फरवरी को मुझे दो वरस की सजा हो गई और इस तरह मेरी सातवी सजा शुरू हुई ।

अपनी साढ़े पॉच महीने की रिहाई के समय का वाहरी जीवन मुझे सतोपप्रद मालूम हुआ । इस अर्से मे मै काम मे काफी लगा रहा और कई जरूरी काम पूरे कर सका । मेरी माता की वीमारी ने पलटा खा लिया था और अब वह खतरे से वाहर हो चली थी । मेरी छोटी वहन कृष्णा की शादी हो चुकी थी, मेरी लडकी की आगे की शिक्षा का सिलसिला ठीक वैठ गया था । मैने भी अपनी घर-गृहस्थी की और कई आर्थिक मुश्किलो को हल कर लिया और कई घरेलू मामले,जिनको मै अर्से से भुला रहा था, सुलझा लिये थे । सार्वजनिक मामलो मे तो मै जानता था कि उस समय किसी के लिए भी कुछ विशेप कर लेना सहज न था । हॉ, मैने काग्रेस की ताकत को मजवूत कर उसका रुख सामाजिक और आर्थिक विचारो के मार्ग की ओर मोडने मे जरूर कुछ मदद की । गाधीजी के साथ मेरे पूना के पत्र-व्यवहार और वाद मे अखवारो मे निकले लेखो ने हालत को कुछ वदल दिया था । साम्प्रदायिक मसले पर भी मेरे लेखो ने कुछ असर ही किया । इसके अलावा, दो वरस से ज्यादा अर्से के वाद मै गाधीजी और दूसरे मित्रो और साथियो से भी मिल लिया और कुछ समय तक जेल-जीवन विताने के लिए मैने दिली व दिमागी शक्ति जुटा ली थी ।

पर मेरे मन को दुखी करनेवाली एक वात तो अब भी वाकी थी और वह थी कमला की वीमारी । मुझे उस वक्त तक उनकी वीमारी की गहराई का अन्दाजा न था, क्योंकि उनकी आदत थी कि जवतक वह विस्तर न पकड लेती तवतक काम

मे अपनी बीमारी को भुलाती ही रहती। लेकिन मुझे बडी फिक्र थी। इसपर भी मुझे उम्मीद थी कि अब मेरे जेल चले जाने के बाद तो वह मन लगाकर अपना इलाज करायगी। मेरे बाहर रहने पर वह कुछ-कुछ कठिन था, क्योकि वह मुझे ज्यादा समय के लिए अकेला छोडने को सहसा तैयार नही होती थी।

लेकिन एक बात का और भी मुझे दु ख रह गया था। वह यह था कि इलाहाबाद जिले के गॉवो मे मै एक बार भी दौरा न कर सका था। मेरे कई नवयुवक साथी हमारी नीति पर कार्य करते हुए गिरफ़्तार हो गये थे। इस कारण उनके बाद गॉवो की खबर न लेना मुझे एक तरह से उनके प्रति बेवफा-सा होना मालूम होता था।

काली मोटर लारी ने मुझे फिर जेल मे पहुंचा दिया। रास्ते मे कई फौजी सिपाही मशीनगनो, फौजी गाडी (आर्मर्ड-कार) वगैरा के साथ मार्च करते हुए मिले। जेल की लारी के छोटे सुराखो मे से मैंने उनकी ओर देखा। मेरे दिल मे ख़याल आया कि फौजी गाड़ी और टैक कितने भद्दे होते है। उन्हे देखकर मुझे इतिहास से पूर्वकाल के दानवों, अजगरो इत्यादि का स्मरण हो आया।

मेरा तबादला प्रेसिडेसी जेल से अलीपुर सेण्ट्रल जेल मे हो गया और वहाँ मुझे एक दस फुट लम्बी और नौ फुट चौडी छोटी-सी कोठरी दी गई। इस कोठरी के सामने एक बरामदा और छोटा-सा सहन था। सहन की चारदीवारी नीची, करीब सात फुट की थी और उसपर से झॉककर देखने पर मेरे सामने एक अजीब दृश्य दिखाई दिया। सब तरह की बेढगी इमारते, इकमंजिली, गोल, चौकोर और अजीब छतोवाली खडी थी। कई तो एक के ऊपर एक नजर आती थी। ऐसा मालूम होता था कि ये सब इमारते बेतरतीब, जमीन का एक-एक कोना-कोना भरने के लिए बनाई गई थी। यह बनावट मुझे तो किसी घरोंदे की भूल-भुलैयां या किसी भविष्यवादी की हवाई रचना-सी

मालूम होती थी। मुझे वताया गया कि ये इमारते वड़े सिलसिले से वनी हुई है, वीच मे एक मीनार है (जो ईसाई कैदियो का गिर्जा है) और उसके चारो तरफ घरों की लाइनें हैं। चूकि यह जेल शहर मे थी, इस वजह से जमीन वहुत परिमित थी और उसका छोटे-से-छोटा टुकड़ा भी काम मे लाये विना छोडा नही जा सकता था।

मै अभी इस भोडे दृश्य को देखकर नजर हटा ही रहा था कि मुझे एक दूसरा डरावना दृश्य दीख पडा। मेरी कोठरी और सहन के ठीक सामने दो चिमनियाँ खड़ी दिखाई दी, जिनमे से लगातार गहरा काला धुआँ निकल रहा था, जिसकी हवा कभी-कभी मेरी तरफ आकर मेरा दम घोटने लगती थी। ये जेल के वावर्चीखानों की चिमनियाँ थी। मैंने वाद मे जेल के सुपरिण्टेडेट से कहा कि इस मुसीवत से मुझे वचाने के वास्ते चिमनियो पर 'गैस-मास्क' लगा दे।

यह शुरूआत ही अच्छी न थी और न इसके आइन्दा अच्छा होने की ही उम्मीद थी—वही अलीपुर जेल की अपरिवर्तनीय लाल ईंटो की इमारतो का दृश्य, और वही वावर्चीखानो की चिमनियो का धुआ रात-दिन सास से मुह मे जाना, सामने था। मेरे सहन मे पेड या हरियाली कुछ न थी। वह यो तो पत्थरो का पक्का और साफ वना हुआ था; पर रोज-रोज धुआ जम जाने की वजह से वडा भद्दा और वदनुमा मालूम होता था। वही से पडोस-वाले सहनो के एक-दो दरख्तो के ऊपर के सिरे कुछ-कुछ नजर आते थे। मेरे जेल मे पहुंचने पर वे दरख्त विना पत्ते और फूलो के ठूठ-से खडे थे, पर धीरे-धीरे उनमे एक अजीव तवदीली होनी शुरू हुई और सव शाखाओं मे हरी-हरी कोपले निकलने लगी। कोपलो मे से पत्ते निकले और वडी जल्दी वढकर उन्होंने नगी शाखाओ को खुशनुमा हरियाली से ढक दिया। यह तवदीली वडी सुन्दर मालूम हुई और अलीपुर-जेल भी मेरे लिए खुशनुमा हो गई।

इनमे से एक पेड मे चील का घोसला था। इसमे मुझे दिलचस्पी पैदा हुई और मै बडे चाव से उसे देखा करता था। छोटे-छोटे बच्चे बढ-बढकर उडने की अपनी पैतृक कला सीख गये। कभी-कभी तो ऐसी हैरत मे डालनेवाली होशियारी से उड़कर झपटते कि सीधे किसी कैदी के हाथ या मुह मे से रोटी का टुकड़ा झपट लेते।

करीब-करीब शाम से सुबह तक मुझे अपनी कोठरी मे बन्द रहना पडता था और जाडे की लम्बी राते काटे नही कटती थी। घण्टो पढते-पढ़ते थककर मै अपनी कोठरी में इधर-उधर टहलना शुरू कर देता, चार-पाच कदम आगे बढकर फिर लौटना पड़ता। उस वक्त मुझे चिड़ियाघर मे रीछ के अपने पिजरे मे इधर-से-उधर चक्कर काटने का दृश्य याद आ जाता था। कभी-कभी जब मै बहुत ऊब उठता तो अपना प्रिय शीर्षासन करने लगता था।

रात का पहला पहर तो काफी शान्त होता था केवल शहर की मुख़्तलिफ आवाजे—ट्राम, ग्रामोफोन या दूर से किसी के गाने की लहर—धीरे-धीरे पहुचती थी। दूर से आते हुए, धीमे गानो की यह आवाज मधुर मालूम पडती थी। पर रात मे चैन नही था, क्योकि जेल के पहरेदार इधर-उधर टहलते रहते थे और हर घटे कोई-न-कोई मुआयना होता रहता था। लालटन हाथ मे लिये कोई अफसर यह देखने आता कि कोई कैदी भाग तो नही गया है। हर रोज तीन बजे रात से बडा शोर-गुल मचना और बर्तन घिसने व माजने की आवाज आती। उस वक्त रसोई मे काम शुरू हो जाता था।

सुहावनी शरद-ऋतु जल्द बीत गई, वसन्त भी भागता हुआ-सा निकल गया और गर्मी आ पहुची। दिन-दिन गर्मी बढती गई। मुझे कलकत्ते की आबहवा कभी पसन्द न थी और कुछ दिनों के वहा रहने ने ही मुझे निस्तेज और उत्साह-हीन बना दिया। जेल मे तो हालत कुदरती तौर पर और भी बुरी होती

है। समय बीतता गया और मेरी हालत मे कोई तरक्की नही हुई। शायद कसरत के लिए जगह की कमी होने और ऐसी आबहवा मे कई घंटों कोठरी मे वद रहने से मेरी सेहत कुछ गिर गई और मेरा वजन तेजी से घटने लगा। मुझे तालो, चटखनियो, सीखचो और दीवारो से नफरत-सी होने लग गई।

अलीपुर-जेल मे एक महीना रहने के वाद मुझे अपने सहन के वाहर कुछ कसरत करने की सहूलियत दी गई। यह तवदीली मुझे पसन्द आई और मै सुवह-शाम जेल की वडी दीवार के सहारे घूमने लगा। धीरे-धीरे मै अलीपुर जेल और कलकत्ता की आवहवा का आदी हो गया और रसोईघर भी, मय उसके धुए और शोर-गुल के, वर्दाश्त करने लायक वुराई हो गई।

: ४५ :

फिर देहरादून-जेल

लेकिन अलीपुर-जेल मे मेरी तन्दुरुस्ती ठीक नही रहती थी, मेरा वजन वहुत घट चुका था और कलकत्ते की हवा और दिन-दिन वढती हुई गर्मी मुझे परेशान कर रही थी। अफवाह थी कि मुझे किसी अच्छी आवहवावाली जगह मे भेजा जायगा। ७ मई को मुझसे अपना सामान समेटने और जेल से वाहर चलने को कहा गया। मै देहरादून जेल भेजा जा रहा था। कुछ महीनो की तनहाई के वाद शाम की ठंडी-ठंडी हवा मे कलकत्ता के बीच होकर गुजरना वडा अच्छा मालूम होता था और हावड़ा के आलीशान स्टेशन पर लोगों की भीड भी भली मालूम होती थी।

मुझे अपने इस तवादले पर खुशी थी और मै देहरादून और उसके आस-पास के पहाडो को देखने को उत्सुक था। लेकिन वहा पहुंचने पर देखा कि नौ महीने पहले, नैनी जाते समय जैसा मैने उसे छोडा था, वह सव हालत अव नही रही है। मै अव एक नए

स्थान पर रखा गया, जो मवेशियों के रहने की जगह को साफ़ करके ठीक की गई थी।

कोठरी की शकल मे वह कुछ बुरी नही थी। उसके साथ एक छोटा-सा बरामदा भी था। उसीसे लगा हुआ करीब पचास फुट लम्बा सहन था। देहरादून मे पहली बार मुझे जो पुरानी कोठरी मिली थी, उससे यह अच्छी थी। लेकिन शीघ्र ही मुझे मालूम हुआ कि दूसरी तब्दीलिया कुछ अच्छी न थी। घेरे की दीवार, जो दस फुट ऊंची थी, खासकर मेरे कारण उस वक्त चार या पाच फुट और बढा दी गई थी। इससे पहाडियो के जिस दृश्य की मै इतनी आशा लगाये था, वह बिलकुल छिप गया था और मै सिर्फ कुछ दरख्तो के सिरे ही देख पाता था। मै इस जेल मे लगभग तीन महीने से ज्यादा रहा, लेकिन मुझे कभी पहाड़ों की झलक तक नही दिखाई दी। पहली बार की तरह, इस बार मुझे बाहर जेल के दरवाजे के सामने घूमने की इजाजत न थी। मेरा छोटा-सा आगन ही कसरत के लिए काफी बडा समझा गया था।

ये तथा दूसरी नई बन्दिशे नाउम्मेदी पैदा करनेवाली थीं, जिससे मै खीझ गया। मै अनमना हो गया और अपने आगन मे जो थोडी-बहुत कसरत कर सकता था, उसतक के करने को तबीयत न रही। शायद ही मैने कभी अपने को इतना अकेला और दुनिया से जुदा महसूस किया हो। एकान्त कारावास का मेरी तबीयत पर खराब असर होने लगा और मेरा शरीर तथा मन गिरने लगा। मै जानता था कि दीवार की दूसरी तरफ कुछ फुट की दूरी पर वायुमण्डल मे ताजगी और सुगन्ध भरी है, घास और नम धरती की ठडी-ठडी महक फैल रही है और दूर-दूर तक के दृश्य दिखाई पडते है। लेकिन यह सब मेरी पहुंच के बाहर थे और बार-बार उन्ही दीवारो को देखते-देखते मेरी ऑखे पथरा जाती थी। वहॉ पर जेल की मामूली चहल-पहल तक न थी,

क्योकि मै सबसे अलग और अकेला रखा गया था।

छह हफ्ते बाद मूसलाधार वर्षा हुई, पहले हफ्ते मे बारह इंच पानी बरसा। हवा बदली और नवजीवन का सचार हुआ। गर्मी कम हुई और शरीर हलका हुआ और आराम-सा मालूम होने लगा। लेकिन आँखो या दिमाग को कुछ आराम न मिला। जेल के वार्डर के आने-जाने के लिए जब कभी मेरे सहन का लोहे का दरवाजा खुलता था तो एक क्षण के लिए बाहरी दुनिया की झलक, लहराते हुए हरे-भरे खेत और रग-बिरगे वृक्ष, जिनपर मेह की बूदे मोती की तरह चमकती थी, बिजली के कौध की भाति अकस्मात् दिखाई देकर तत्काल छिप जाती थी। दरवाजा शायद ही कभी पूरा खुलता हो। सिपाहियो को खास तौर पर हिदायत थी कि अगर मै कही नजदीक होऊँ तो वह न खोला जाय और वे जब-कभी खोलते भी थे, तो बस जरा-सा ही। हरियाली और ताजगी की ये थोडी-थोडी झाँकियाँ अब मुझे अच्छी नही लगती थी, इन्हे देखकर मुझे घर की याद हो आती थी और दिल मे एक दर्द-सा उठता था; इसलिए जब कभी दरवाजा खुलता तो मै बाहर की तरफ नही देखता था।

लेकिन यह सब परेशानी असल मे जेल की ही वजह से नही थी। यह तो बाहरी घटनाओ का असर था। मुझे सताने के लिए एक तरफ तो कमला की बीमारी थी और दूसरी तरफ से मेरी राजनैतिक चिन्ताएँ। मुझे ऐसा दिखाई दे रहा था कि कमला को उसकी पुरानी बीमारी ने फिर आ दबाया है। मै उसकी कोई भी सेवा करने के अयोग्य हूँ, यह विचार दुःख देने लगा। मै जानता था कि मै कमला के पास होता तो अवस्था बहुत-कुछ बदल जाती।

सरकार ने कांग्रेस पर से बन्दिशें उठा ली और वह कानूनी संस्था बन गई। लेकिन उसकी बहुत-सी सहायक संस्थाएं फिर भी गैर-कानूनी बनी रही, जैसे कि कांग्रेस का स्वयंसेवक-विभाग—

सेवादल और कई स्वतन्त्र किसान-सभाएँ, शिक्षण-संस्थाएँ और नौजवान-सभाएँ, जिनमे एक बच्चो की सस्था भी थी। खासतौर पर 'खुदाई खिदमतगार' या सरहदी लाल कुर्तीवाले फिर भी गैरकानूनी बने रहे। यह सस्था १९३१ मे काग्रेस की एक अग बन गई थी और सरहदी सूबे मे उसकी तरफ से काम करती थी। इस तरह हालाँकि काग्रेस ने सीधी लडाई पूरी तरह स्थगित कर दी थी और वैध ढग अख्तियार कर लिया था, फिर भी सरकार ने सत्याग्रह के लिए जो खास कानून बनाये थे, वे सब-के-सब कायम रखे और काग्रेस-सगठन की महत्त्वपूर्ण सस्थाओं पर पाबन्दियाँ जारी रखी। किसानों और मजदूरो की संस्थाओ को दबाने की तरफ भी खास ध्यान दिया गया। मजेदार बात तो यह थी कि साथ-ही-साथ बडे-बड़े सरकारी अफसर घूम-घूमकर जमीदारो और ताल्लुकेदारो को सगठित करने लगे। जमीदारों की इन संस्थाओ को हर तरह की सहूलियते दी गईं। युक्तप्रांत की इन संस्थाओ मे से बडी-बडी दो सस्थाओं का चन्दा लगान के साथ सरकारी आदमियो ने इकट्ठा किया।

सरकार की तरफ से विजय का वातावरण स्पष्ट रूप से प्रकट था। उसकी दृष्टि से उसकी यह जीत उसकी सविनय-भंग तथा उसकी अन्य शाखाओं को दबा देने की नीति के फलस्वरूप हुई थी। आपरेशन तो सफलतापूर्वक हो ही गया था। फिर उस समय यह क्यो चिन्ता होने लगी कि मरीज जियेगा या मरेगा। हालाकि उस वक्त कांग्रेस किसी हद तक दबा दी गई थी, फिर भी सरकार कुछ मामूली हेरफेर के साथ अपनी दमन-नीति वैसे ही जारी रखना चाहती थी। वह जानती थी कि जबतक असन्तोष का आधारभूत कारण मौजूद है, तबतक राष्ट्रीय नीति मे इस प्रकार के परिवर्तन क्षणिक ही हो सकते हैं, और इसलिए उसने यदि अपनी नीति मे जरा भी ढिलाई की तो आन्दोलन तेजी पकड़ सकता है। वह शायद यह भी समझती थी कि काग्रेस अथवा मजदूर या किसान-वर्ग मे से अधिक गरम विचार-

वालों को दबाने की नीति जारी रखने मे कांग्रेस के फूक-फूककर चलनेवाले नेताओ के बहुत अधिक नाराज होने की कोई आशंका नही है।

देहरादून-जेल मे मेरे विचारो का प्रवाह किसी हद तक इसी प्रकार का था। परिस्थिति के सम्पर्क मे न होने के कारण वास्तव मे मै घटना-चक्र के सबध मे अपना निश्चित मत बनाने की स्थिति मे न था। अलीपुर मे तो मै परिस्थिति से बिलकुल ही अपरिचित था, देहरादून मे मुझे सरकार की पसन्द के अखबार के जरिये अधूरी और कभी-कभी बिलकुल एकतरफा खबरे मिलने लगी थी। अपने बाहर के साथियो के सम्पर्क मे आने और परिस्थिति के निकट अध्ययन से मेरे विचारो मे किसी हद तक परिवर्तन होना बहुत मुमकिन था।

वर्तमान परिस्थिति से परेशान होकर मै भूतकाल की बातों का, जबसे मैंने सार्वजनिक कार्यों मे कुछ भाग लेना शुरू किया तबसे हिन्दुस्तान की राजनैतिक घटनाओ का अवलोकन करने लगा। हमने जो कुछ किया, उसमे हम किस हद तक सही रास्ते पर थे? किस हद तक गलती पर थे? उसी समय मुझे यह सूझा कि मै अपने विचारो को अगर कागज पर लिखता जाऊ तो वे अधिक व्यवस्थित और उपयोगी होगे। इससे मुझे अपने दिमाग को एक निश्चित काम मे लगाये रखने से उसे चिन्ता और परेशानी से दूर रखने मे भी सहायता मिलेगी। इस तरह जून सन् १९३४ मे देहरादून-जेल मे मैने अपनी यह कहानी लिखनी शुरू की और आठ महीने तक, जबतक इसकी धुन सवार रही, लिखता रहा। अक्सर ऐसे मौके आये जब मुझे लिखने की इच्छा न हुई। तीन बार ऐसा हुआ कि महीने-महीने भर तक मै न लिख सका। लेकिन मैने इसे जारी रखने की कोशिश की और अब मै इस निजी गाथा की समाप्ति के निकट पहुच चुका हूं। इसका अधिकांश एक अजीब परेशानी की हालत में लिखा गया है, जबकि मै उदासी और मानसिक चिन्ताओ

से दवा हुआ था। शायद इसकी थोडी-सी झलक, जो कुछ मैने लिखा, उसमे आगई है , लेकिन इस लिखने ने ही मुझे वर्तमान चिन्ताओं को भुलाने मे वडी सहायता दी। जव मै इसे लिख रहा था, मुझे वाहर के पाठको का बिलकुल खयाल न था, मै अपने-आपको सम्वोधन करता था और अपने लाभ के प्रश्न वनाकर उनके उत्तर देता था। कभी-कभी तो उससे मेरा कुछ मनोरजन भी हो जाता था। यथासम्भव मै विना किसी लागलपेट के स्पष्ट विचार करना चाहता था और मै सोचता था कि शायद भूतकाल का यह सिहावलोकन मुझे इस काम मे सहायक होगा।

आखिरी जुलाई के करीब कमला की हालत बडी तेजी से विगडने लगी और कुछ ही दिनो मे वह नाजुक हो गई। ११ अगस्त को मुझसे एकाएक देहरादून-जेल छोडने को कहा गया और उस रात को मै पुलिस की निगरानी मे इलाहावाद भेज दिया गया। दूसरे दिन शाम को हम इलाहावाद के प्रयाग स्टेशन पर पहुचे और वहा मुझसे जिला मजिस्ट्रेट ने कहा कि मै अस्थायी तौर पर रिहा किया जा रहा हू, जिससे मै अपनी वीमार पत्नी को देख सकू। मेरी गिरफ्तारी का छठवा महीना पूरा होने मे एक दिन बाकी रह गया था।

: ४६ :

ग्यारह दिन

"स्वय काटकर जीर्ण म्यान को दूर फैक देती तलवार,
इसी तरह चोला अपना यह रख देता है जीव उतार।"[१]

मेरी रिहाई आरजी थी। मुझे वता दिया गया था कि मेरी रिहाई एक या दो दिन के लिए, या जवतक डाक्टर विलकुल जरूरी समझे तवतक के लिए है। अनिश्चितता से भरी हुई यह

[१] वायरन के मूल अंग्रेजी पद्य का भावानुवाद।

एक अजीव स्थिति थी और मेरे लिए कुछ निश्चित कर सकना मुमकिन न था। एक निश्चित अवधि होती तो मै जान सकता था कि मेरी क्या स्थिति है और मै अपने-आपको उसके अनुकूल वनाने की कोशिश करता। मौजूदा हालत जैसी थी, उसमे तो मै किसी भी दिन, जेल को वापिस भेज दिया जा सकता था।

परिवर्तन आकस्मिक था और मै उसके लिए जरा भी तैयार न था। कैद की तनहाई से मै एकदम डाक्टरो, नर्सों और रिश्तेदारो से भरे घर पर पहुचाया गया। मेरी लडकी इन्दिरा भी शान्ति-निकेतन से आ गई थी। मुझसे मिलने और कमला की हालत दरियाफ्त करने के लिए वहुत से मित्र वरावर आते जा रहे थे। रहन-सहन का ढग भी विलकुल जुदा था, घर के सव आराम थे और अच्छा खाना था। वह सव कुछ होते हुए भी कमला की ख़तरनाक हालत की चिन्ता परेशान कर रही थी।

उसके शरीर मे केवल हड्डिया रह गई थी और वह अत्यन्त कमजोर हो गई थी। उसका शरीर छाया-मात्र मालूम पडता था। वह वहुत कमजोर हालत मे रोग से टक्कर ले रही थी और यह ख़याल कि शायद वह मुझे छोड जायगी, असह्य वेदना देने लगा। इस समय हमारी शादी को साढे अठारह साल हुए थे। मेरे मन मे उस दिन से लेकर आज तक के वरसो की सुधि आने लगी। शादी के वक्त मै छव्वीस साल का था और वह करीव सत्रह वरस की। वह सासारिक वातो मे सर्वथा अनभिज्ञ निरी अवोध वालिका थी। हमारी उम्र मे काफी फ़र्क था और उससे भी अधिक फ़र्क हमारे मानसिक दृष्टि-विन्दु मे था, क्योकि उसकी वनिस्वत मेरी उम्र कही ज्यादा थी। पर ऊपर से गम्भीर होते हुए भी मुझमे वडा लडकपन था और मैने शायद ही कभी यह महसूस किया हो कि उस सुकुमार और भावुक वाला का मस्तिष्क फूल की तरह धीरे-धीरे विकसित हो रहा है और उसे सहृदयता और होशियारी के साथ सहारा देने की आवश्यकता है। हम दोनो एक-दूसरे की तरफ

आकर्षित हो रहे थे और काफी अच्छी तरह हिल-मिल गये; लेकिन हमारा दृष्टि-पथ जुदा-जुदा था और एक-दूसरे मे अनुकूलता का अभाव था। इस विपरीतता के कारण कभी-कभी आपस मे सघर्ष तक की नौवत आ जाती थी, और कई वार छोटी-छोटी वातो पर वच्चो के-से छोटे-छोटे झगडे भी हो जाया करते थे, जो ज्यादा देर तक न टिकते थे, और तुरन्त ही मेल-मिलाप होकर समाप्त हो जाते थे। दोनो का स्वभाव तेज था, दोनो ही तुनकमिजाज थे और दोनो मे ही अपनी शान रखने की वच्चों की-सी जिद थी। इतने पर भी हमारा प्रेम वढ़ता गया, हालाकि परस्पर मानसिक भेद धीरे-धीरे कम हुआ। हमारी शादी के इक्कीस महीने वाद हमारी लडकी और एकमात्र सन्तान इन्दिरा पैदा हुई।

हमारी शादी के बिलकुल साथ-ही-साथ देश की राजनीति मे अनेक नई घटनाए हुई और उनकी ओर मेरा झुकाव बढता गया। वे होमरूल के दिन थे। उनके पीछे फौरन ही पजाब के मार्शल-ला और असहयोग का जमाना आया और मैं सार्वजनिक कामों के आधी-तूफानों मे अधिकाधिक फसता ही गया। इन आन्दोलनो मे मेरी तल्लीनता इतनी बढ गई थी कि ठीक उस समय जवकि उसे मेरे पूरे सहयोग की आवश्यकता थी, मैने अनजान में उसे विलकुल नजरअन्दाज कर, उसे अपने निज के भरोसे छोड़ दिया। उसके प्रति मेरा प्रेम बरावर बना रहा। वल्कि बढता गया, और वह अपने प्रेमपूर्ण हृदय से मुझे सहायता देने को सदा तैयार है, यह जानकर मनको वडी सान्त्वना मिलती थी। उसने मुझे वल दिया; लेकिन साथ ही उसे मानसिक व्यथा भी होती रही होगी और अपने प्रति मेरी कुछ लापरवाही उसे खटकती रही होगी। इस तरह उसे भूला-सा रहने और कभी-कदास उसकी सुध लेने के बजाय यदि उसपर मेरी अकृपा रही होती तो यह किसी कदर अच्छा होता।

इसके बाद उसकी बीमारी का दौरा शुरू हुआ और मेरा लम्बा

जेल-निवास। हम केवल जेल की मुलाकात के समय ही मिल पाते थे। सत्याग्रह-आन्दोलन ने उसे सैनिको की प्रथम पक्ति मे ला खडा किया और वह स्वय जेल जाने पर बड़ी ख़ुश हुई। हम एक-दूसरे के और भी निकट आते गये। कभी-कभी होनेवाली ये मुलाकाते अनमोल होती गई, हम उनकी बाट जोहते रहते थे और बीच के दिन गिनते रहते थे। हम आपस मे एक-दूसरे से उकताते न थे और हमारी बाते नीरस नही हुआ करती थी, क्योंकि हमारी मुलाकाते और थोडी देर के मिलन मे हमेशा कुछ-न-कुछ ताजगी और नवीनता बनी रहती थी। हम दोनों बराबर एक-दूसरे मे नई-नई बाते पाते रहते थे, हालाकि कभी-कभी ये बाते शायद हमारी पसन्द की न होती थी। हमारी बढती हुई उम्र के इन मतभेदो मे भी लडकपन की मात्रा रहती।

वैवाहिक जीवन के अठारह बरस बाद भी उसके मुख पर मुग्धा कुमारी का भाव अभीतक वैसा ही बना हुआ था, प्रौढता का कोई चिन्ह न था। प्रथम दिन नववधू बनकर वह जैसी हमारे घर आई थी, अब भी बिलकुल वैसी ही मालूम होती थी। लेकिन मै बहुत बदल गया था और हालाकि अपनी उम्र के मुताबिक मैं काफी योग्य, चपल और क्रियाशील था—और कुछ लोगो का कहना था कि अब भी मुझमे लडकपन की कई सिफते मौजूद है—फिर भी मेरे चेहरे से मेरी अधिक उम्र मालूम पडती थी। मेरे सिर के आधे बाल उड गए थे और जो बाकी थे वे पक गये थे, पेशानी पर सिलवटे, चेहरे पर झुरिया और आखो के चारो तरफ काली झाई पड गई थी। पिछले चार वर्षो की मुसीबते और परेशानियां मुझपर अपने बहुत से निशान छोड गई थी। इन पिछले बरसो मे मै और कमला जब कभी किसी नई जगह जाते तो मै यह जानकर हैरान हो जाता था कि अक्सर कमला को मेरी लडकी समझ लिया जाता। वह और इन्दिरा सगी बहने-सी दिखाई देती थी।

वैवाहिक-जीवन के अठारह बरस ! लेकिन इनमे से कितने

साल मैने जेल की कोठरियों मे और कमला ने अस्पतालो और सेनिटोरियम मे विताये ? और फिर इस समय भी मै जेल की सजा भुगतता हुआ कुछ ही दिनो के लिए बाहर आ गया था और वह वीमार पडी हुई जीवन के लिए सघर्ष कर रही थी। अपनी तन्दुरुस्ती के बारे मे उसकी लापरवाही पर कुछ झुझलाहट-सी आई। लेकिन फिर भी मै उसे दोष किस तरह दे सकता था, क्योकि राष्ट्रीय युद्ध मे पूरा हिस्सा लेने मे अशक्त होने के कारण उसकी तेजस्वी आत्मा छटपटाती रहती थी। शरीर से समर्थ न होने के कारण न तो वह ठीक तरह से काम ही कर सकती थी, न ठीक तौर पर अपना इलाज ही करा सकती थी। नतीजा यह हुआ कि अन्दर-ही-अन्दर सुलगती रहनेवाली आग ने उसके शरीर को खा डाला।

सचमुच ही इस समय, जवकि मुझे उसकी सबसे अधिक आवश्यकता है वह मुझे छोड़ तो न जायगी। अरे, अभी-अभी तो हम दोनो ने एक-दूसरे को ठीक तरह से पहचानना और समझना शुरू किया है। हम दोनो को एक-दूसरे पर कितना भरोसा था, हम दोनो को एक-साथ रहकर अभी कितना काम करना था !

प्रतिदिन और प्रति घटे उसकी हालत देख-देखकर मेरे दिल मे इस तरह के विचार उठते रहते थे।

साथी और मित्र मुझसे मिलने आये। अभीतक जो कुछ हो चुका था और जिससे कि मै वाकिफ नही था, उसके बारे मे उन्होने बहुत-कुछ कहा। उन्होने वर्तमान राजनैतिक समस्याओं के बारे मे मुझसे चर्चा की और प्रश्न पूछे। मुझे उन्हे जवाब देना मुश्किल मालूम हुआ। कमला की बीमारी का खयाल दिमाग से दूर होना आसान न था और तनहाई और जेल की जुदाई के कारण मै इस स्थिति मे नही था कि इन सब ठोस प्रश्नो का जवाब एकाएक दे सकता। अपने लम्बे तजुर्बे ने मुझे यह सिखाया है कि जेल मे मिली हुई मुख्तसिर-सी-जानकारी से स्थिति का ठीक-ठीक अन्दाजा नही

लगाया जा सकता। अच्छी तरह सोचने-समझने के लिए व्यक्तिगत सम्पर्क जरूरी था, उसके बगैर राय जाहिर करना सर्वथा किताबी और असलियत से दूर होता। साथ ही, गाधीजी और काग्रेस वर्किंग कमेटी के अपने पुराने साथियों के साथ सब बातो पर चर्चा करने से पहले काग्रेस की नीति के सम्बन्ध मे कुछ निश्चित राय जाहिर करना, मुझे उनके प्रति अन्याय मालूम हुआ। जो कुछ हो चुका था उसपर मेरे मन मे बहुत-सी आलोचना भरी हुई थी, लेकिन मै कुछ निश्चित सूचनाए देने के लिए तैयार न था। जेल से बाहर आने का कोई ख़याल न होने के कारण उस दिशा मे मैने सोचा ही न था।

इसके साथ ही एक ख़याल यह भी था कि सरकार ने मुझे अपनी पत्नी के पास आने देने की जो शिष्टता दिखाई है, उसको ध्यान मे रखते हुए मेरे लिए यह मुनासिब न होगा कि इस मौके का मै राजनैतिक बातो के लिए उपयोग करू। हालाकि ऐसे कामो से दूर रहने की मैने कोई शर्त या वादा नही किया था, फिर भी इस ख़याल का मुझपर बराबर असर होता रहा।

मैने कमला की हालत के बारे मे गांधीजी को लिखा, क्योंकि मेरा ख़याल था कि मै जल्दी ही वापस जेल चला जाऊगा और मुमकिन है कि अपने दिल की बात जाहिर करने का फिर दूसरा मौका न मिले, इसलिए मेरे दिमाग मे जो बाते घूम रही थी उनकी भी कुछ-कुछ झलक उन्हे दे दी। हाल की घटनाओ ने मुझे बहुत अधिक सन्तप्त और परेशान कर दिया था और मेरे पत्र मे उसकी एक हल्की-सी छाप थी। मैने यह निश्चित करने की कोशिश नही की थी कि क्या करना चाहिए और क्या नही? मैने जो कुछ भी लिखा वह तो इधर की घटनाओ से मेरे दिल पर जो कुछ भी प्रतिक्रिया हुई थी उसका खुलासा भर था। वह पत्र क्या था, गोया दर्द भरे जोश का उबाल था और बाद मे मुझे मालूम हुआ कि गांधीजी को उससे बहुत दुःख पहुचा।

दिन-पर-दिन निकलते जाते थे और मैं जेल की तलबी या सरकार से किसी दूसरी इत्तिला मिलने का इन्तजार कर रहा था। समय-समय पर मुझसे यह कहा जाता कि आगे के लिए कल या परसों हिदायत जारी होने वाली हैं। इस बीच डाक्टरो से यह कह दिया गया कि वे सरकार को कमला की हालत की रोजाना सूचना देते रहे। मेरे आने के बाद से कमला की हालत कुछ सुधर गई थी।

यह आम विश्वास था, यहा तक कि जो लोग साधारणतया सरकार के विश्वास-पात्र होने के कारण उसकी बातो की जानकारी रखते है उनका भी यह खयाल था कि अगर दो बातो—एक तो अक्तूबर मे बम्बई मे काग्रेस का अधिवेशन और दूसरे नवम्बर मे असेम्बली का चुनाव—होनेवाला न होता तो मैं पूरी तरह रिहा कर दिया गया होता। जेल से बाहर रहने पर सम्भव है कि मैं इन कामो मे बाधा डालू, इसलिए सम्भवत मैं तीन महीने के लिए वापस जेल भेज दिया जाऊगा और उसके बाद छोड़ दिया जाऊंगा। मेरे जेल वापस न भेजे जाने की भी सम्भावना थी और जैसे-जैसे दिन निकलते जाते थे, यह सम्भावना बढती जाती थी। मैंने करीब-क़रीब काम मे लग जाने का निश्चय किया।

२३ अगस्त का दिन मेरे छुटकारे का ग्यारहवां दिन था। पुलिस की मोटर आई। पुलिस अफ़सर मेरे पास पहुचा और मुझसे कहा कि मेरी अवधि समाप्त हो गई और मुझे उसके साथ नैनी-जेल के लिए रवाना होना होगा। मैंने अपने मित्रो से विदाई ली। जैसे ही मैं पुलिस की मोटर मे बैठ रहा था, मेरी बीमार मां बाहें फैलाये हुए दौडी हुई आई। उसकी वह मुखमुद्रा एक अर्से तक रह-रहकर मेरी नजरो मे घूमती रही।

: ४७ :

फिर जेल में

मै फिर नैनी-जेल के अन्दर दाखिल हो गया। मुझे ऐसा जान पडने लगा,जैसे मै एक नई सजा की मियाद शुरू कर रहा हू। कभी जेल के भीतर, कभी जेल के वाहर—मै एक खिलौना-सा वना हुआ था। घडी मे छूटना, घडी मे पकडा जाना—यह आना-जाना हृदय को झकझोर डालती है और अपने-आपको वारम्वार नये परिवर्तनो के अनुकूल कर लेना वडा कठिन काम है। मै आशा कर रहा था कि इस वार भी मुझे नैनी की उसी पुरानी कोठरी मे रखा जायगा, जिसमे मै अपनी पिछली लम्वी सजा काट चुका था। वहा थोडे-से फूल के पेड थे,जिन्हे मेरे वहनोई रणजीत पडित ने शुरू मे लगाया था और एक वरामदा भी था। लेकिन नम्वर ६ की उस पुरानी वैरक मे, एक नजरवन्द को, जिसपर न तो कोई मुकदमा चलाया गया था, न कोई सजा दी गई थी, रख दिया गया था। यह उचित नही समझा गया कि मै उसके सम्पर्क मे आऊ, इसलिए मुझे जेल के दूसरे हिस्से मे रखा गया, वह और भी अधिक अन्दर की तरफ था और उसमे फूल या हरियाली कुछ भी नही थी।

लेकिन मुझे अपने इस स्थान की इतनी चिन्ता नही थी, मेरा मन तो दूसरे स्थान पर था। मुझे डर था कि कमला की हालत मे जो थोडा-सा सुधार आया है, वह मेरे दुबारा गिरफ्तार होने के समाचार से रुक जायगा। हुआ भी ऐसा ही। कुछ दिनो तक ऐसी व्यवस्था रही कि कमला की हालत के बारे मे मुझे हर रोज डाक्टर का एक मुख्तसिर-सा बुलेटिन मिल जाया करता था। वह भी घूम-फिरकर मेरे पास पहुचता था। डाक्टर टेलीफोन से पुलिस के सदर दफ्तर को सूचना देता और पुलिस उसे जेल तक पहुचा देती। डाक्टरो और जेल के कर्मचारियो मे सीधा सम्बन्ध मुनासिब नही समझा गया। दो सप्ताह तक तो मुझे यह सूचना नियमित और

कभी-कभी अनियमित रूप से मिलती रही और उसके बाद रोक दी गई, हालांकि कमला की हालत दिन-पर-दिन गिरती ही जा रही थी।

इन बुरे समाचारो तथा समाचारो की ऐसी प्रतीक्षा के कारण दिन काटे नही कटता था और रात और भी भीषण मालूम पडती थी। समय की गति मानो बिलकुल रुक गई हो या अत्यन्त सुस्ती से सरक रही हो, हरएक घण्टा बोझ और आतक-सा जान पडता था। इतनी तीव्र उद्विग्नता मैंने कभी महसूस नही की थी । उस समय मै समझता था कि इन दो महीनो के अन्दर, बम्बई-कांग्रेस के अधिवेशन के बाद ही मै शायद छूट जाऊंगा, लेकिन वे दो महीने भी अनन्तकाल के समान मालूम पड़ रहे थे।

मेरी दुबारा गिरफ्तारी के ठीक एक महीने बाद एक पुलिस-अफसर मुझे मेरी पत्नी से थोडी-सी देर के लिए मुलाकात कराने ले गया। मुझसे कहा गया था कि मुझे इस तरह हफ्ते मे दो बार उससे मिलने दिया जाया करेगा और उसके लिए समय भी निश्चित हो गया था। मैंने चौथे दिन बाट देखी—कोई मुझे लेने नही आया, इसी तरह पांचवा, छठा और सातवा दिन बीता, मै इन्तजार करते-करते थक गया। मेरे पास समाचार पहुचा कि उसकी हालत फिर चिन्ताजनक होती जा रही है। मैंने सोचा कि मुझसे सप्ताह मे दो बार कमला से मिल सकने की बात कहना कैसा अजीब मजाक था।

सितम्बर का महीना भी किसी तरह खत्म हुआ। मेरी जिंदगी मे वे तीस दिन सबसे लम्बे और सबसे अधिक दुखदाई थे।

कई व्यक्तियो के द्वारा मुझे यह सूचना दी गई कि अगर मै अपनी मियाद के बाकी दिनो के लिए राजनीति मे भाग न लेने का आश्वासन—चाहे वह लिखित भले ही न हो—दे दू तो मुझे कमला की सेवा-शुश्रूषा के लिए छोड़ा जा सकेगा। राजनीति उस समय मेरे विचारों से दूर की चीज थी और बाहर जाकर ग्यारह दिनो मे मैंने राजनीति की जो दशा देखी थी, उससे तो मुझे

घृणा-सी हो गई थी, पर आश्वासन की तो कल्पना भी नही की जा सकती थी। उसका अर्थ होता, अपनी प्रतिज्ञाओ, अपने कार्यो, अपने साथियो और खुद अपने साथ विश्वासघात करना। परिणाम कुछ भी होता, यह तो एक असम्भव शर्त थी। ऐसा करने का अर्थ होता अपने अस्तित्व के मूल पर मर्माघात और उन सब चीजों को, जो मेरी दृष्टि मे पवित्र थी, अपने हाथो कुचल डालना। मुझसे कहा गया कि कमला की हालत दिन-पर-दिन बिगडती जा रही है और मेरे उसके पास रहने से उसके जीवन की थोडी सम्भावना हो सकती है। तो मेरा व्यक्तिगत दम्भ या अहकार क्या कमला के जीवन से बडी चीज थी ? मेरे लिए यह एक भयकर समस्या बन जाती, पर भाग्यवश कम-से-कम इस रूप मे, वह मेरे सामने उपस्थित नही हुई। मै जानता था कि इस प्रकार के किसी भी आश्वासन को खुद कमला नापसन्द करेगी और अगर मै कोई ऐसा काम कर बैठता, तो उसे आघात लगता और उसकी तबीयत को नुकसान भी पहुचता।

अक्तूबर के शुरू मे मुझे फिर उससे भेट करने के लिए ले जाया गया। वह करीब-करीब गाफिल-सी पडी हुई थी, बुखार बहुत तेज था। मुझे अपने निकट रखने की उसकी इच्छा बडी तीव्र थी, पर जब मै जेल लौट जाने के लिए उससे विदा होकर चला तो उसने साहसपूर्ण मुस्कराहट मे मेरी ओर देखा और मुझे नीचे झुकने का इशारा किया। मै जब उसके नजदीक जाकर झुका, उसने मेरे कान मे कहा, "सरकार को आश्वासन देने की यह क्या बात है ? ऐसा हरगिज न करना।"

कुछ ग्यारह दिन मै जेल के बाहर था। हम लोगो ने इन दिनो निश्चय कर लिया था कि कमला के स्वास्थ्य मे थोडा-सा सुधार होने पर उसे इलाज के लिए किसी अधिक उपयुक्त जगह पर भेज देगे। तभी से हम उसके कुछ अच्छा होने की बाट देख रहे थे, पर इसके बजाय उसकी हालत दिन-दिन गिरती ही जा रही थी और

अव छह हफ्ते वाद तो, यह गिरावट वहुत साफ दिखने लगी थी। इसलिए अव इन्तजार करते रहना वेकार समझा गया, और यह निश्चय किया कि उसे ऐसी ही हालत मे भुवाली की पहाडी पर भेज दिया जाय।

जिस दिन कमला भुवाली जानेवाली थी, उसके एक दिन पहले मुझे उससे मिलने के लिए ले जाया गया। मै सोच रहा था, अव फिर दुवारा कव इससे भेट होगी और भेट होगी भी या नही ? पर, वह उस दिन प्रसन्न और कुछ स्वस्थ दिखाई दे रही थी। इससे मुझे इतनी खुशी हुई कि कुछ पूछो मत।

करीव तीन हफ्ते वाद, मुझे नैनी-जेल से अलमोडा डिस्ट्रिक्ट जेल मे भेज दिया गया, जिससे मै कमला के ज्यादा नजदीक रह सकू। भुवाली रास्ते मे ही पड़ता था, पुलिस की गारद के साथ मैंने कुछ घण्टे वही विताये। मुझे कमला की हालत मे थोड़ा सुधार देखकर वडी प्रसन्नता हुई और उससे विदा लेकर मै आनन्दपूर्वक, अपनी अलमोडा तक की यात्रा पूरी कर सका। सच तो यह है कि कमला तक पहुचने के पहले ही पहाड़ो ने मुझे प्रफुल्लित कर दिया था।

मुझे वापस इन पहाड़ो मे पहुच जाने की वडी खुशी थी। ज्यों-ज्यो हमारी मोटर चक्करदार सडक पर तेजी से आगे बढती जा रही थी, सवेरे की ठडी हवा और धीरे-धीरे खुलता जानेवाला प्रकृति का सौन्दर्य मुझे एक विचित्र हर्ष से भर रहा था। हम ऊपर-ऊपर चढते जा रहे थे, घाटिया गहरी होती जा रही थी, पर्वत की चोटिया वादलो मे छिपती जा रही थी। हरियाली भी रग वदलती गई और चारो ओर की पहाडिया देवदार से घिरी हुई दिखाई देने लगी। कभी सडक के किसी मोड को पार करते ही, अचानक हमारे सामने पर्वत-श्रेणियो का एक नया विस्तार और कहीं घाटियों की गहराई मे एक छोटी नदी कलकल करती हुई दिखाई देती। उस दृश्य को देखते मेरा जी नही अघाता था, उसे पूरा ही

घृणा-सी हो गई थी, पर आश्वासन की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। उसका अर्थ होता, अपनी प्रतिज्ञाओ, अपने कार्यो, अपने साथियो और खुद अपने साथ विश्वासघात करना। परिणाम कुछ भी होता, यह तो एक असम्भव शर्त थी। ऐसा करने का अर्थ होता अपने अस्तित्व के मूल पर मर्माघात और उन सब चीजो को, जो मेरी दृष्टि मे पवित्र थी, अपने हाथो कुचल डालना। मुझसे कहा गया कि कमला की हालत दिन-पर-दिन विगडती जा रही है और मेरे उसके पास रहने से उसके जीवन की थोडी सम्भावना हो सकती है। तो मेरा व्यक्तिगत दम्भ या अहकार क्या कमला के जीवन से वडी चीज थी? मेरे लिए यह एक भयकर समस्या वन जाती, पर भाग्यवश कम-से-कम इस रूप मे, वह मेरे सामने उपस्थित नही हुई। मै जानता था कि इस प्रकार के किसी भी आश्वासन को खुद कमला नापसन्द करेगी और अगर मै कोई ऐसा काम कर वठता, तो उसे आघात लगता और उसकी तवीयत को नुकसान भी पहुचता।

अक्तूबर के शुरू मे मुझे फिर उससे भेट करने के लिए ले जाया गया। वह करीब-करीब गाफिल-सी पडी हुई थी, बुखार वहुत तेज था। मुझे अपने निकट रखने की उसकी इच्छा वडी तीव्र थी, पर जब मै जेल लौट जाने के लिए उससे विदा होकर चला तो उसने साहसपूर्ण मुस्कराहट से मेरी ओर देखा और मुझे नीचे झुकने का इशारा किया। मै जब उसके नजदीक जाकर झुका उसने मेरे कान मे कहा, "सरकार को आश्वासन देने की यह क्या बात है? ऐसा हरगिज न करना।"

कुल ग्यारह दिन मै जेल के बाहर था। हम लोगो ने इन दिनो निश्चय कर लिया था कि कमला के स्वास्थ्य मे थोडा-सा सुधार होने पर, उसे इलाज के लिए किसी अधिक उपयुक्त जगह पर भेज देगे। तभी से हम उसके कुछ अच्छा होने की वाट देख रहे थे, पर इसके वजाय उसकी हालत दिन-दिन गिरती ही जा रही थी और

मुसाफिर एकात मार्ग पर चलता हुआ काप उठता है और अपने चारो ओर विरोधी शक्तियो की उपस्थिति का अनुभव करता है। पवन की सनसनाहट भी मखौल-सा उडाती और उपेक्षा-सी करती दिखाई देती है। कभी पवन का निश्वास भरना बन्द हो जाता है, दूसरी कोई ध्वनि भी नही होती और चारो ओर पूर्ण शान्ति होती है, जिसकी प्रचण्डता ही डरावनी लगने लगती है। केवल टेलीग्राफ के तार धीमे-धीमे गुनगुनाते रहते है और तारे अधिक चमकदार और अधिक समीप दिखाई देने लगते है। पर्वत-श्रेणिया गम्भीरता से नीचे की ओर देखती रहती है और ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई भयावना रहस्य उस ओर को घूर रहा हो। पास्कल के समान ही मनुष्य सोचता है, "मुझे अनन्त आकाश की इस अनन्त शान्ति से भय लगता है।" मैदानो मे रात कभी इतनी सुनसान नही होती, प्राणो का कम्पन वहा तब भी सुनाई देता रहता है और कई प्रकार के प्राणियो और जन्तुओ की आवाजे रात के सन्नाटे को चीरती रहती है।

लेकिन जब हम मोटर मे बैठे अलमोडा जा रहे थे, रात अपने ठड और निस्तब्धता के सन्देश सहित हमसे अब भी दूर थी। हमारी यात्रा का अन्त अब समीप ही आ गया था। सड़क के मोड़ को पार करने और बादलो के एकसाथ हट जाने से मुझे एक नया दृश्य दिखाई दिया, कितना अचरज और हर्ष हुआ मुझे वह देखकर! बीच मे आ जानेवाले जंगल से लदे पहाड़ो के बहुत ऊपर बड़ी दूर पर, हिमालय की बर्फीली चोटिया चमक रही थी। अतीत के सारे बुद्धि-वैभव को लिये, भारतवर्ष के विस्तृत मैदान के ये सन्तरी बडे शान्त और रहस्यमय लगते थे। उनके देखने से ही मन मे एक शान्ति-सी छा जाती थी और उनकी सनातनता के आगे जनपदो और नगरो के हमारे छोटे-छोटे द्वेष और सघर्ष, विकार तथा प्रपच अत्यन्त तुच्छ-से लगते थे।

अलमोडा का छोटा-सा जेल एक ढालू जमीन पर बना हुआ है। मुझे उसीमे एक 'शानदार' बैरक रहने के लिए दी गई। इसमें

पी जाने की इच्छा हो रही थी। मै अपने स्मृति-पात्र को उससे भर लेना चाहता था, जिससे उस समय, जबकि सच्चा दृश्य देखना मुझे नसीब नही होगा, उसीकी मै अपने मन में कल्पना करके आनन्द पा लिया करूगा।

पहाडियो की तलहटी मे छोटी-छोटी झोपडियो के झुण्ड दिखाई देते थे और उनके चारो ओर छोटे-छोटे खेत। जहा कही थोडी-भी ढाल मिल गई, वही कडी मेहनत-मशक्कत करके खेत बना लिये। दूर से वे झरोखो या छज्जो के समान दिखाई देते थे, या ऐसा जान पडता था, मानो बडी-बड़ी सीढिया हो जो घाटी के नीचे से पहाड़ी की चोटी तक सीधी कतारबन्द चली गई हो। इस बिखरी हुई बस्ती के लिए प्रकृति के भडार से थोडा-सा अन्न निक-लवाने के लिए कितनी कडी मेहनत करनी पडती है! इस लगातार परिश्रम के बाद भी कितनी कठिनाई से उनकी जरूरते पूरी हो पाती है। इन सीढीनुमा खेतो के कारण पहाडियो मे एक तरह की बस्ती का-सा बोध होता था और उनके सामने वनस्पतिशून्य या जगलो से ढकी ढालू जमीन बड़ी विचित्र लगती थी।

दिन मे यह सारा दृश्य बडा मनोहर दिखाई देता है और ज्यो-ज्यो सूर्य आकाश मे ऊचा चढता जाता है, उसकी बढती हुई गरमी मे पहाडो मे एक नया जीवन दिखाई देने लगता है और वे अपना अजनबीपन भूलकर हमारे मित्र और साथी-से मालूम होने लगते है। लेकिन दिन डूब जाने पर उनका सारा रूप कैसा बदल जाता है! जब रात अपने लम्बे-चौडे डग भरती हुई विश्व को अक में भर लेती है और उच्छृखल प्रकृति को पूरी आजादी देकर जीवन अपने बचाव के लिए छिपने का मार्ग ढूढता है, तब ये जीवन-शून्य पर्वत कैसे ठडे और गम्भीर बन जाते है। चादनी या तारो की रोशनी मे पर्वतो की श्रेणिया रहस्यमयी, भयानक, विराट और फिर भी आकार-हीन-सी मालूम पडती है और घाटियो के बीच मे वायु की कराहट सुनाई पडती है। गरीब

५१ × १७ फुट का एक बडा-सा कमरा था, जिसका फर्श कच्चा और बड़ा ऊचा-नीचा था, छत कीडो की खाई हुई थी, जिसमे से टुकडे टूट-टूटकर बराबर नीचे गिरा करते थे। उसमे पन्द्रह खिडकिया और एक दरवाजा था, या यो कहना चाहिये कि इतने सीखचो से जडे हुए बड़े-छोटे झरोखे थे, क्योकि असल मे किसी पर पल्ले तो थे नही। इस प्रकार ताजी हवा की तो कमी हो ही नही सकती थी। जब सरदी बढ गई तो कुछ खिडकियो को नारियल की चटाइयो से बन्द कर दिया गया। इस बडे कमरे मे (जो देहरादून के जेल के किसी भी कमरे से बडा था) मै अपने एकान्त वैभव का भोग करता था। लेकिन मै बिलकुल अकेला भी नही था, क्योकि कम-से-कम दो दर्जन चिडियो ने उस टूटी छत मे अपना घर बना रक्खा था। कभी-कभी कोई भटकता हुआ बादल, कई खिडकियो मे से प्रवेश करता हुआ, मुझसे भेट करने आ जाता और सारी जगह पर नमी फैला देता।

यहा रोज शाम को साढे चार बजे के आखिरी भोजन, अर्थात् एक प्रकार के जलपान के बाद, पाच बजे मुझे बन्द कर दिया जाता था और फिर सवेरे सात बजे मेरा सीखचोवाला दरवाजा खुलता था। दिन के समय या तो बैरक मे या उसके बाहर एक पास के दालान मे, धूप लिया करता था। मेरी चहार-दीवारी मे एक-डेढ मील दूर एक पहाड की चोटी दिखाई देती थी और मेरे सिर पर नीले आकाश का अनन्त वितान तना रहता था, जिसपर बादल छिटके रहते थे। ये बादल चित्र-विचित्र रूप धारण करते रहते, जिन्हे देखते-देखते मै कभी थकता न था। कभी उन्हे देखकर मन मे तरह-तरह के जानवरो के रूप की कल्पना उठती और कभी-कभी वे मिलकर एक भारी महासागर के समान दिखाई देने लगते। कभी वे समुद्र के किनारे-से लगते और देवदार के पेडो के बीच मे आनेवाली वायु की मर्मरनाद समुद्र के ज्वारभाटे की-सी आवाज करती। कभी-कभी कोई बादल बडे साहस के साथ

हर तीसरे हफ़्ते उससे मिलता रहा। इन मुलाकातों के फलस्वरूप हम एक-दूसरे के और भी नजदीक आते गये, और उससे विदा होते समय एक असहनीय पीड़ा होती। हम केवल विदा होने के लिए ही मिलते थे। कभी-कभी तो मैं बड़े वेदना-भरे हृदय से सोचता था कि एक ऐसा दिन आ सकता है, जब यह विदा शायद आखिरी विदा हो।

मेरी मा बीमारी से उठ न पाई थी, इसलिए इलाज के लिए बम्बई गई थी। वहा उनकी हालत मे सुधार होता दिखाई दे रहा था। जनवरी का आधा महीना बीतने के करीब, एक दिन सवेरे ही तार के जरिए दिल को चोट पहुंचानेवाली ऐसी खबर मिली जिसकी कल्पना भी नही थी। उन्हे लकवा मार गया था। इसलिए मेरे बम्बई-जेल मे भेजे जाने की सम्भावना थी, ताकि जरूरत पड़ने पर मै उन्हे देख सकू। लेकिन उनकी हालत मे थोडा सुधार हो जाने के कारण मुझे वहा नही भेजा गया।

जनवरी ने अपना स्थान अब फरवरी को दे दिया है और वायुमण्डल मे वसन्त के आगमन की आहट सुनाई दे रही है। बुलबुल और दूसरी चिडिया फिर दिखाई और सुनाई देने लगी है और जमीन मे जगह-जगह छोटे-छोटे कल्ले फूटकर इस विचित्र दुनिया पर अपनी अचरज-भरी नजर डाल रहे है। सदाबहार के फूल पहाड़ियों मे स्थान-स्थान पर रक्त के-से लाल धब्बे बनाते जा रहे है और शान्तिपूर्ण वातावरण मे बेर के फूल बाहर झाक रहे है। दिन बीतते जा रहे है, और ज्यों-ज्यों वे समाप्त होते जा रहे है, मै उन्हें गिनता रहता हू और अपनी अगली भुवाली-यात्रा की बात सोचता रहता हू। मुझे आश्चर्य होता है कि इस कहावत मे कहा तक सचाई है कि जीवन के बड़े-बड़े पुरस्कार निराशा, निःसंगता और वियोग के बाद ही मिलते है। अगर ऐसा न हो तो शायद इन पुरस्कारों का मूल्य ठीक-ठीक न आंका जा सके।

अपने मानसिक विकास को अंकित करना था। मैंने जो कुछ लिखा है, वह मैं कभी कैसा था, इस बात का शायद इतना वर्णन नही है, जितना इस बात का कि कभी-कभी मै कैसा होना चाहता था, या कैसा होने की कल्पना करता था।

मै पूर्व और पश्चिम का एक अजीब-सा सम्मिश्रण बन गया हूं, हर जगह बे-मौजू, कही भी अपनेको अपने घर मे होने-जैसा अनुभव नही करता। शायद मेरे विचार और मेरी जीवन-दृष्टि पूर्वी की अपेक्षा पश्चिमी अधिक है, लेकिन भारतमाता अनेक रूपो मे अपने अन्य बालको की भाति, मेरे हृदय मे भी विराजमान है और अन्तर के किसी अनजान कोने मे, कोई सौ (या संख्या कुछ भी हो) पीढियो के ब्राह्मणत्व के संस्कार छिपे हुए है। मै अपने पिछले सस्कार और नूतन ज्ञान से मुक्त हो नही सकता। यह दोनों मेरे अग हो गये है और जहां वे मुझे पूर्व और पश्चिम दोनों से मिलने मे सहायता करते है, वहा साथ ही न केवल सार्वजनिक जीवन मे, बल्कि समग्र जीवन मे एक मानसिक एकाकीपन का भाव पैदा करते है। पश्चिम मे मै विदेशी हू—अजनबी हू। मै उसका हो नही सकता। लेकिन अपने देश मे भी मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है मानो मै देश-निर्वासित हू।

सुदूरवर्ती पर्वत सुगम्य और उसपर चढ़ना सरल मालूम होता है। उसका शिखर आवाहन करता दिखाई देता है, लेकिन ज्यो-ज्यों हम उसके नजदीक पहुचते है, कठिनाइया दिखाई देने लगती है, जैसे-जैसे ऊचे चढ़ते जाते है, चढ़ाई अधिकाधिक मालूम होने लगती है और शिखर बादलों मे छिपता दिखाई पड़ने लगता है। फिर भी चढाई के प्रयत्न का एक अनोखा मूल्य रहता है और उसमे एक विचित्र आनन्द और एक विचित्र संतोष मिलता है। शायद जीवन का मूल्य पुरुषार्थ मे है, फल मे नही। अक्सर यह जानना मुश्किल होता है कि सही रास्ता कौन-सा है? कभी-कभी यह जानना ज्यादा आसान होता है कि कौन-सा रास्ता सही नही है और उससे बचे रहना भी श्रेयस्कर होता

हम सबका संयुक्त वर्णन है। मै जन-समूह का ही एक व्यक्ति रहा हू, उसके साथ काम करता रहा हू, कभी उसका नेतृत्व करके उसे आगे बढ़ाता रहा हू, कभी उससे प्रभावित होता रहा हू, और फिर भी अन्य दूसरे व्यक्तियो की तरह एक-दूसरे से अलग, जन-समूह के बीच मे अपना पृथक् जीवन व्यतीत करता रहा हू। अनेक बार हमने रूपक बाधा है और नाटक किया है, लेकिन हमने जो कुछ किया, उसमे बहुत सत्य वस्तु तथा तीव्र निष्ठा रही है और इसने हमे अपनी क्षुद्र अहता से ऊचा उठा दिया, हमे अधिक बल दिया और इतना महत्त्व दे दिया जो अन्यथा हमे मिल नही सकता था। कभी-कभी हमे जीवन की उस पूर्णता को अनुभव करने का सौभाग्य मिला जो आदर्शो को कार्यरूप मे परिणत करने से होती है। हमने समझ लिया कि इससे भिन्न कोई भी दूसरा जीवन, जिसमे इन आदर्शो का परित्याग करके, पशुबल के सामने दीनता ग्रहण करनी होती, व्यर्थ, सन्तोषहीन तथा अन्तर्वेदना से भरा होता।

इन वर्षों मे मुझे बहुत-से लाभो के साथ-साथ एक अनमोल लाभ यह भी हुआ है। मै जीवन को अधिकाधिक रसमय महत्त्व का एक प्रयोग समझने लगा हू। इसमे बहुत-कुछ सीखने को मिलता है, बहुत-कुछ करने को रहता है। कर्मोन्नति की भावना मुझमे हमेशा रही है और अब भी मुझमे है। इसने मुझे अपनी विविध प्रवृत्तियो मे, पुस्तको के पठन-पाठन मे, रस मिलता है और जीवन जीने योग्य बनता है।

अपनी इस कहानी मे मैने हरेक घटना के समय अपने मनोभावो और विचारो का चित्र खीचने का, यथासम्भव उस क्षण की अपनी अनुभूतियो के बयान करने का प्रयत्न किया है। भूतकाल की मनोदशा स्मृति मे जागृत करना कठिन है और बाद मे होनेवाली घटनाओ को भुलाना सहज नही है। इस तरह मेरे आरम्भिक दिनो के वर्णन पर पिछले विचारो का प्रभाव जरूर पड़ा होगा, लेकिन मेरा उद्देश्य, खासकर अपने ही लाभ के लिए,

अपने मानसिक विकास को अकित करना था। मैने जो कुछ लिखा है, वह मै कभी कैसा था, इस बात का शायद इतना वर्णन नही है, जितना इस बात का कि कभी-कभी मै कैसा होना चाहता था, या कैसा होने की कल्पना करता था।

मै पूर्व और पश्चिम का एक अजीब-सा सम्मिश्रण बन गया हू, हर जगह बे-मौजू, कही भी अपनेको अपने घर मे होने-जैसा अनुभव नही करता। शायद मेरे विचार और मेरी जीवन-दृष्टि पूर्वी की अपेक्षा पश्चिमी अधिक है, लेकिन भारतमाता अनेक रूपो मे अपने अन्य बालको की भाति, मेरे हृदय मे भी विराजमान है और अन्तर के किसी अनजान कोने मे, कोई सौ (या सख्या कुछ भी हो) पीढियो के ब्राह्मणत्व के संस्कार छिपे हुए है। मै अपने पिछले सस्कार और नूतन ज्ञान से मुक्त हो नही सकता। यह दोनों मेरे अग हो गये है और जहां वे मुझे पूर्व और पश्चिम दोनों से मिलने मे सहायता करते है, वहा साथ ही न केवल सार्वजनिक जीवन मे, बल्कि समग्र जीवन मे एक मानसिक एकाकीपन का भाव पैदा करते है। पश्चिम मे मै विदेशी हू—अजनबी हूं। मै उसका हो नही सकता। लेकिन अपने देश मे भी मुझे कभी-कभी ऐसा लगता है मानो मै देश-निर्वासित हू।

सुदूरवर्ती पर्वत सुगम्य और उसपर चढ़ना सरल मालूम होता है। उसका शिखर आवाहन करता दिखाई देता है, लेकिन ज्यों-ज्यो हम उसके नजदीक पहुचते है, कठिनाइयां दिखाई देने लगती है; जैसे-जैसे ऊचे चढ़ते जाते है, चढ़ाई अधिकाधिक मालूम होने लगती है और शिखर बादलों मे छिपता दिखाई पडने लगता है। फिर भी चढाई के प्रयत्न का एक अनोखा मूल्य रहता है और उसमे एक विचित्र आनन्द और एक विचित्र सतोष मिलता है। शायद जीवन का मूल्य पुरुषार्थ मे है, फल मे नही। अक्सर यह जानना मुश्किल होता है कि सही रास्ता कौन-सा है? कभी-कभी यह जानना ज्यादा आसान होता है कि कौन-सा रास्ता सही नही है और उससे बचे रहना भी श्रेयस्कर होता

है। अत्यन्त नम्रता के साथ मैं महान् सुकरात के अन्तिम शब्दों का उल्लेख करना पसन्द करूंगा। उसने कहा था--

"मैं नही जानता कि मृत्यु क्या चीज है—वह कोई अच्छी चीज हो सकती है और मुझे उसका कोई भय नही है। लेकिन मैं यह जानता हू कि मनुष्य का अपने भूतकर्मों से भागना बुरा है, इसलिए जिसके बारे मे मै जानता हूं कि वह खराब है उसकी अपेक्षा जो अच्छा हो सकता है वह काम करना पसन्द करता हू।"

बरसो मैने जेल मे बिता दिये! अकेले बैठे हुए, अपने विचारो मे डूबे हुए, कितनी ऋतुओ को मैंने एक-दूसरे के पीछे आते-जाते और अन्त मे विस्मृति के गर्भ मे लीन होते देखा है! कितने चन्द्रमाओ को मैंने पूर्ण विकसित और क्षीण होते देखा है और कितने झिल-मिल करते तारामडल को अबाध, अनवरत गति और भव्यता के साथ घूमते देखा है! मेरे यौवन के कितने बीते दिवसो की यहा चिता-भस्म बनी हुई है और कभी-कभी मै इन बीते दिवसो की प्रेतात्माओ को उठते हुए, दुखद स्मृतियो को जगाते हुए, कान के पास आकर यह कहते हुए सुनता हू "क्या उनमे कुछ भलाई थी?" और इसका जवाब देने मे मेरे मन मे कोई शका नही है। अगर अपने मौजूदा ज्ञान और अनुभव के साथ मुझे अपने जीवन को फिर से दुहराने का मौका मिले तो इसमे कोई शक नही कि मै अपने व्यक्तिगत जीवन मे अनेक फेरफार करने की कोशिश करूंगा। जो-कुछ मै पहले कर चुका हू, उसको कई तरह से सुधारने का प्रयत्न करूंगा, लेकिन सार्वजनिक विषयो मे मेरे प्रमुख निर्णय ज्यो-के-त्यो बने रहेगे। निस्सन्देह मै उन्हे बदल नही सकता, क्योकि वे मेरी अपेक्षा कही अधिक बलवान है और मेरे ऊपर रहनेवाली एक शक्ति ने मुझे उनकी ओर ढकेला था।

मेरी सजा को आज पूरा एक बरस हो गया। सजा के दो बरसो मे से एक बरस बीत गया है। इसका पूरा एक बरस बाकी है, क्योंकि इस बार रिआयती दिन न रहेंगे—सादी सजा म इस

तरह दिन नही कटते । इतना ही नही, पिछली अगस्त मे जो ग्यारह दिन मै बाहर रहा था, वे भी मेरी सजा की अवधि मे बढा दिये गये है । लेकिन यह साल भी बीत जायगा और मै जेल से बाहर हो जाऊगा---मगर इसके बाद ? मै नही जानता, लेकिन मन मे ऐसा भाव उठता है कि मेरे जीवन का एक अध्याय समाप्त हो गया है, और दूसरा आरम्भ होगा । वह क्या होगा, इसका मै स्पष्ट अनुमान नही कर सकता । मेरी जीवन-कथा के---'मेरी कहानी' के ये पन्ने अब समाप्त होते है ।

कुछ और

बीडनवीलर, स्वार्ट्‌स्वाल्ड
२५ अक्तूबर, १९३५

पिछले मई महीने मे कमला भुवाली से यूरोप इलाज कराने के लिए गई। उसके यूरोप चले जाने से मेरा मुलाकात करने के लिए भुवाली जाना बन्द हो गया, पहाडी सडको पर मेरा हर पखवाडे मोटर पर यात्रा करना बन्द हो गया। अब अलमोडा-जेल मेरे लिए पहले से भी ज्यादा सुनसान हो गया।

क्वेटा मे भूकम्प की खबर मिली, जिसने कुछ समय के लिए दूसरी सब बाते भुला दी, लेकिन अधिक समय के लिए नही, क्योकि भारत सरकार अपने को या अपने विचित्र तरीको को, हमे भूलने नही देती। फौरन ही मालूम हुआ कि काग्रेस के सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद को, जोकि भूकम्प-सहायता का काम हिन्दुस्तान के प्राय किसी भी अन्य मनुष्य से अधिक जानते है, क्वेटा जाने और पीडितो को सहायता करने की इजाजत नही दी गई । न गाधीजी या अन्य किसी प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्त्ता को ही वहा जाने दिया। क्वेटा-भूकम्प के बारे मे लेख लिखने के कारण कई भारतीय समाचार-पत्रो की जमानते जब्त कर ली गई ।

जिधर देखिए उधर---सब ओर फौजी मनोवृत्ति, पुलिस-दृष्टिकोण दिखाई देता था---असेम्बली मे, सिविल शासन मे,

सीमान्त पर बम बरसाये जाने मे, सब मे, इसी का बोलबाला था। ज्यादातर ऐसा मालूम होता था, मानो हिन्दुस्तान मे अंग्रेजी सरकार हिन्दुस्तानी जनता के एक बड़े समुदाय से निरन्तर लड़ाई लड रही है।

पुलिस एक काम की और आवश्यक शक्ति है, लेकिन वह दुनिया, जो पुलिस के सिपाहियो और उनके डण्डो से भरी हो, शायद रहने के लिए ठीक जगह न होगी। अक्सर यह कहा गया है कि शक्ति का अनियन्त्रित प्रयोग प्रयोग-कर्त्ता को गिरा देता है, और साथ ही जिसके विरुद्ध इसका प्रयोग किया जाता है उसको भी अपमानित तथा पतित कर देता है। इस समय हिन्दुस्तान मे ऊंची नौकरियो मे, खासकर भारतीय सिविल-सर्विस में, अधिकारियो के दिन-पर-दिन बढते जानेवाले नैतिक और बौद्धिक पतन के सिवा शायद ही कोई बात मार्के की दिखाई देती हो। खासतौर पर ऊचे अफसरो मे सबसे अधिक पतन दिखाई देता है, लेकिन आमतौर पर सभी नौकरियो मे यह फैला हुआ है। जब कभी किसी ऊचे पद पर नए आदमी की नियुक्ति का समय आता है, तब निश्चित रूप से वही आदमी पसन्द किया जाता है, जो इस नई (अधम) मनोवृत्ति का सबसे अच्छा परिचायक होता है।

गत ४ सितम्बर को एकाएक मै अल्मोड़ा-जेल से छोड दिया गया, क्योकि यह समाचार मिला था कि मेरी पत्नी की हालत नाजुक हो गई है। श्वार्ट्स्वाल्ड (जर्मनी) के बाडनवीलर स्थान पर उसका इलाज हो रहा है। मुझसे कहा गया कि मेरी सजा मुल्तवी कर दी गई है, और मै अपनी रिहाई के साढे पाच महीने पहले छोड दिया गया। मै फौरन हवाई जहाज से यूरोप को रवाना हुआ।

'मंडल' द्वारा प्रकाशित प्राप्य साहित्य

गांधीजी लिखित

१ प्रार्थना प्रवचन (भाग १) ३)
२ " " (भाग २) २॥)
३ गीता-माता ४)
४ पद्रह अगस्त के बाद १॥),२)
५ धर्मनीति १॥),२)
६ द० अफ्रीका का सत्याग्रह ३॥)
७ मेरे समकालीन ५)
८ आत्मकथा ५)
९ आत्म सयम ३)
१० गीता-बोध ॥)
११ अनासक्तियोग १॥)
१२ ग्राम-सेवा ।=)
१३ मगल-प्रभात ।=)
१४ सर्वोदय ।=)
१५ नीति-धर्म ।=)
१६ आश्रमवासियो से ।=)
१७ हमारी माग १)
१८ सत्यवीर की कथा ।)
१९ सक्षिप्त आत्मकथा १॥)
२० हिंद-स्वराज्य ॥।)
२१ अनीति की राह पर १)
२२ बापू की सीख ॥)
२३ गाधी-शिक्षा (तीन भाग) १=)
२४ आज का विचार ।=)
२५ ब्रह्मचर्य (दो भाग) १॥।)
२६ अगर मैं डिक्टेटर होता ।)
२७ शराबबदी करे ।)
२८ स्वराज मे अछूत कोई नही ।)

विनोबाजी की लिखी

२९ विनोबा-विचार : २ भाग ३)
३० गीता-प्रवचन १), १॥।)
३१ शान्ति-यात्रा १॥)
३२ जीवन और शिक्षण २)
३३ स्थितप्रज्ञ-दर्शन १)
३४ ईशावास्यवृत्ति ॥।)
३५ ईशावास्योपनिषद =)
३६ सर्वोदय-विचार १=)
३७ स्वराज्य-शास्त्र ॥।)
३८ भू-दान-यज्ञ ।)
३९ गाधीजी को श्रद्धाजलि ।=)
४० राजघाट की सनिधि में ।=)
४१ विचार-पोथी १)
४२ सर्वोदय का घोषणा-पत्र ।)
४३ जमाने की माग =)

नेहरूजी की लिखी

४४ मेरी कहानी ८)
४५ हिन्दुस्तान की समस्याएं २॥)
४६ लडखडाती दुनिया २)
४७ राष्ट्रपिता २)
४८ राजनीति से दूर २)
४९ हमारी समस्याये (२ भाग) १)
५० विश्व-इतिहास की झलक २१)
५१ हिन्दुस्तान की कहानी सं० ५)
५२ नया भारत ।)

अन्य लेखकों की

५३ गाधीजी की देन १॥)
५४ गांधी-मार्ग =)
५५ महाभारत-कथा (राजाजी) ५)
५६ कुब्जा सुन्दरी " २)
५७ शिशु-पालन " ॥)
५८ मै भूल नही सकता (काटजू) २॥)
५९ कारावास-कहानी (सु.नै) १०)
६० गाधी की कहानी (लु. फि) ४)
६१ भारत-विभाजन की कहानी ४)
६२ बापू के चरणो में २॥)
६३ इंग्लैंड में गाधीजी २)
६४ बा, बापू और भाई ॥)
६५ गांधी-विचार-दोहन १॥)

६६ अहिंसा की शक्ति (ग्रेग) १॥)
६७ सर्वोदय-तत्व-दर्शन ७)
६८ सत्याग्रह-मीमांसा ३॥)
६९ बुद्धवाणी (वियोगी हरि) १)
७० सन्त सुधासार (वि०हरि) ११)
७१ संतवाणी „ १॥)
७२ श्रद्धाकण „ १)
७३ प्रार्थना (वियोगी हरि) ॥)
७४ अयोध्याकाण्ड „ १)
७५ भागवत-धर्म (ह उ) ६॥)
७६ श्रेयार्थी जमनालालजी „ ६॥)
७७ स्वतन्त्रता की ओर „ ४)
७८ बापू के आश्रम में „ १)
७९ मानवता के झरने (माव) १॥)
८० बापू (घ० बिडला) २)
८१ रूप और स्वरूप „ ॥=)
८२ डायरी के पन्ने „ १)
८३ धर्मोपाख्यान „ ।)
८४ स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय) १)
८५ मेरी मुक्ति की कहानी „ १॥)
८६ प्रेम में भगवान „ २)
८७ जीवन-साधना „ १।)
८८ कलवार की करतूत „ ।)
८९ हमारे जमाने की गुलामी „ ।॥)
९० बुराई कैसे मिटे ? „ १)
९१ बालकों का विवेक „ ।॥)
९२ हम करें क्या ? „ ३॥)
९३ धर्म और सदाचार „ १।)
९४ अंधेरे में उजाला „ १॥)
९५ कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल) २)
९६ लोक-जीवन (काकासाहब) ३॥)
९७ हिमालय की गोद में २)
९८ साहित्य और जीवन २)
९९ कब्ज (म० प्र० पोद्दार) १॥)
१०० राजनीति प्रवेशिका १)
१०१ जीवन-संदेश (ख० जिब्रान) १।)
१०२ अशोक के फूल ३)
१०३ जीवन-प्रभात ५)
१०४ कां० का इतिहास ३ भाग ३०)
१०५ पचदशी (स० य० जैन) १॥)
१०६ सप्तदशी २)
१०७ रीढ की हड्डी १॥)
१०८ अमिट रेखायें ३)
१०९ एक आदर्श महिला १)
११० राष्ट्रीय गीत ।)
१११ तामिल-वेद (तिरुकुरल) १॥)
११२ आत्म-रहस्य ३)
११३ थेरी-गाथाए १॥)
११४ बुद्ध और बौद्ध साधक १॥)
११५ जातक-कथा (आनद कौ.) २॥)
११६ हमारे गाव की कहानी १॥)
११७ साग-भाजी की खेती ३)
११८ पशुओं का इलाज (प प्र.) ॥)
११९ रामतीर्थ-सदेश (३ भाग) १=)
१२० रोटी का सवाल (क्रोपा०) ३)
१२१ नवयुवको से दो बातें „ ।=)
१२२ पुरुषार्थ (डा० भगवानदास) ६)
१२३ काश्मीर पर हमला २)
१२४ शिष्टाचार ॥)
१२५ भारतीय संस्कृति ३॥)
१२६ आधुनिक भारत ५)
१२७ फलों की खेती २॥)
१२८ मैं तन्दुरुस्त हूँ या बीमार ।॥)
१२९ नवजागरण का इतिहास ३)
१३० गांधीजी की छत्रछाया में १॥), २॥)
१३१ भागवत-धर्म ३॥)
१३२ [illegible] १॥)
१३३ संस्कृत-साहित्य-सौरभ (२० पुस्तकें) ७॥)
१३४ समाज-विकास-माला (६१ पुस्तकें) १५।=)